

सुलभ साहित्य-माला ❀ ❀ बाईसवाँ पुष्प

शरत्-साहित्य

श्रीकान्त

(चतुर्थ पर्व)



अनुवादकर्ता—

कमल जोशी

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

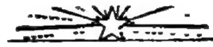
प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, बम्बई नं० ४.

पहली बार
अप्रैल, १९४२

मूल्य बारह आने

मुद्रक—
रघुनाथ दिपाजी देसाई
न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,
६ केळेवाडी, बम्बई न. ४.

श्रीकान्त



चतुर्थ पर्व

अब तकका मेरा जीवन एक उपग्रहकी तरह ही कटा, जिसको केंद्र बनाकर घूमता रहा हूँ उसके निकट तक न तो मिला पहुँचनेका अधिकार और न मिली दूर जानेकी अनुमति। अधीन नहीं हूँ, लेकिन अपनेको स्वाधीन कहनेकी शक्ति भी मुझमें नहीं। काशीसे लौटती हुई ट्रेनमें बैठा हुआ बार बार यही सोच रहा था। सोच रहा था कि मेरी ही किस्मतमें बार बार यह क्यों घटित होता है? मरते दम तक अपना कहने लायक क्या किसीको भी न पा सकूँगा? क्या इसी तरह जिन्दगी काट दूँगा? बचपनकी याद आई। दूसरेकी इच्छासे दूसरेके घरमें वर्षके बाद वर्ष रह कर इस शरीरको कैशोरसे यौवनकी ओर आगे बढ़ाता रहा, लेकिन, मनको न जाने किस रसातलकी ओर खदेड़ता रहा। आज बार बार पुकारनेपर भी उस विदा हुए मनकी कोई आहट नहीं मिलती, हालाँ कि कभी कभी किसी क्षीण कण्ठका अनुसरण कानमें आ लगता है, फिर भी, बिना संशयके नहीं पहचान पाता कि वह अपना ही है,—विश्वास करते डर लगता है।

यह समझकर ही यहाँ आया हूँ कि आज मेरे जीवनमे राजलक्ष्मी मृत है। नदी किनारे खडे होकर विसर्जित प्रतिमाके अंतिम चिह्न तकको अपनी ऑखोसे देखकर लौटा हूँ,—आशा करनेका, कल्पना करनेका, अपनेको धोखा देनेका कोई भी सूत्र शेष रख कर नही आया हूँ। उस तरफ सब शेष हो गया है, निश्चिन्त हो गया हूँ, पर यह शेष कितना शेष है, यह किससे कहूँ, और कहूँ ही क्यो ?

पर कुछ दिनका ही तो जिक्र है। कुमार साहबके साथ शिकार खेलने गय दैवात् पियारीका गाना सुननेके लिए बैठा, बैठते ही भाग्यमे कुछ ऐसा मि जो जितना आकस्मिक था उतना ही अपरसीम। न अपने गुणसे पा और न अपनी गलतीसे खोया ही, फिर भी आज स्वीकार करना पडा मैने उसे खो दिया,—मेरे ससारमे सब मिलाकर क्षति ही शेष रही। जा र हूँ कलकत्ते, पर वासना फिर एक दिन बर्मा पहुँचायगी। लेकिन यह मा जुआरीका घर लौटना है। घरका चित्र अस्पष्ट, अप्रकृत है,—सिर्फ पथ ह सत्य है। ऐसा लगता है मानो इस पथपर चलनेका कोई अन्त नही।

" अरे, यह तो श्रीकात है ! "

यह ख्याल ही न था कि गाडी स्टेशनपर ठहरी है। देखता हूँ कि हमारे गॉवके बाबा, रॉगा दीदी तथा सतरह-अठारह सालकी एक लड़की, —तीनों गर्दन, सिर और कन्धोपर गठरी-पोटली लादे प्लेटफॉर्मपर दौड़ लगाते आये और खिडकीके सामने आकर एकाएक थम गये। बाबा बोले, " उफ कैसी भीड है ! जहाँ एक सुईके जानेकी भी गुँजाइश नहीं वहाँ तीन ती आदमी हैं ! तुम्हारा डब्बा तो काफी खाली है, चढ आवे ?" "आइए", कहक दरवाजा खोल दिया। वे तीनो जने हॉफते हॉफते ऊपर आये और जितन सामान था नीचे रख दिया। बाबाने कहा, " यह शायद ज्यादा किरायेक डब्बा है, दड तो नहीं देना पडेगा ? "

मैंने कहा, " नहीं, मै गार्डसे कह आता हूँ। "

गार्डको इत्तिला दे अपना कर्तव्य पूराकर जब लौटा, तब वे लोग निश्चिन्त हो आरामसे बैठे थे। गाडीके छूटनेपर रॉगा दीदीने मेरी ओर नजर डाली और चौककर कहा, "तुम्हारा यह कैसा शरीर हो गया है श्रीकान्त ? सारा दे सूखकर एकदम रस्सी जैसा हो गया है, कहाँ थे इतने दिन ? कुछ भी . -

तुम अच्छे तो हो ? जबसे गये एक चिट्ठी तक नहीं दी ? घरवाले सब सोच-फिक्रमें मरे जाते है । ”

इस तरहके प्रश्नोंके उत्तरकी कोई आशा नहीं करता, जवाब न मिलनेपर बुरा भी नही मानता ।

बाबाने बताया कि तीर्थ करनेके लिए वह सपत्नीक गया-धाम आये थे और यह लडकी उनकी बड़ी सालीकी नातिनी है,—बाप हजार रुपये गिन देनेको तैयार है, लेकिन फिर भी अबतक कोई योग्य पात्र नही जुटा। मानती ही न थी इसलिए साथ लाना पडा। “पूँटू, पेडेकी हाँडी तो खोल बेटी ?–क्योंजी, पूछता हूँ कि दहीका बर्तन भूल तो नही आई।––हाँ तो पत्तेपर रख दो,––दो-चार पेडे, थोड़ा दही,––ऐसा दही तुमने कभी न खाया होगा भैया, कसम खाकर कह सकता हूँ । नहीं नही, लुटियाके पानीसे पहले हाथ धो डालो, पूँटू, किसी ऐरे-गैरेको तो नही दे रही हो,––ऐसे लोगोंको कैसे देना चाहिए यह सीखो। ”

पूँटूने यथा-आदेश कर्तव्यका सयत्न पालन किया। अतएव, ट्रेनमें ही असमयमें अयाचित दही-पेडे मिल गये। खाते हुए सोचने लगा कि मेरे ही भाग्यमे सारी अनहोनी हुआ करती है, सो इस बार कही पूँटूके लिए मै ही हजार रुपयेकी कीमतका पात्र न चुन लिया जाऊँ ! यह खबर उन्हे पहली बार ही मिल गई थी कि मै बर्मामें अच्छी नौकरी करने लगा हूँ ।

रॉगा दीदी बहुत ज्यादा स्नेह करने लगी, और आत्मीय ज्ञानकी वजहसे पूँटू भी घटेभरमे ही घनिष्ठ हो गई, क्योंकि, मै कोई दूसरा तो था नही !

लडकी अच्छी है । साधारण भद्र गृहस्थ-घरानेकी, रग गोरा तो नही था लेकिन देखनेमें सुन्दर थी । हालत यह हुई कि बाबा उसके गुणोंका बखान खत्म न कर पा रहे थे । लिखने-पढनेके बारेमे रॉगा दीदीने कहा, “ वह ऐसी सुन्दर चिट्ठी लिख सकती है कि आजकलके तुम्हारे नाटक और नॉविल भी हार मान जाये । उस मकानकी नन्दरानीको एक ऐसी चिट्ठी लिख दी थी कि जमाई महाशय सात दिनके बजाय पन्द्रह दिनकी छुट्टी लेकर आ पहुँचे !”

राजलक्ष्मीका उल्लेख किसीने इगितसे भी नही किया जैसे उस तरहकी कभी कोई बात हुई थी, यह किसीको याद तक नहीं !

दूसरे दिन गॉवके स्टेशनपर गाडी ठहरी तो मुझे भी उतरना पड़ा। उस वक्त करीब दस बजे थे। ठीक वक्तपर स्नानाहार न होनेपर पित्त भड़क जानेकी

आशंकासे वे दोनो जने चिन्तित हो उठे। मकान पहुँचनेपर मेरी खातिर-दारीकी सीमा न रही। पाँच-सात दिनके अंदर ही गाँव-भरमे किसीको यह सदेह न रहा कि पूँटूका वर मै ही हूँ। यहाँ तक कि पूँटूको भी सदेह न रहा।

बाबाजीने चाहा कि यह शुभकार्य आगामी वैशाख महीनेमें ही सपन्न हो जाय। पूँटूके रिश्तेदार जो जहाँ थे उन्हें बुला लेनेकी बात भी उठी। रॉगा दीदीने पुलकित हृदयसे कहा, "देखते हो, किसके भाग्यमें कौन बदा है, यह पहलेसे कोई भी नही बता सकता!"

मैं पहले उदासीन था, फिर चिन्तित हुआ, और उसके बाद डरा। क्रमशः अपने ऊपर ही सदेह होने लगा कि कही मैंने मंजूर तो नही दे दी! मामला ऐसा बेढब हो गया कि कही पीछे कोई बुरी घटना न घट जाय इसलिए ना कहनेका साहस ही न रहा। पूँटूकी माँ यही थी। एक दिन रविवारको एकाएक उसके पिताके भी दर्शन हो गये। मुझे कोई नहीं जाने देता, आमोद-प्रमोद और हँसी-मजाक भी होने लगा,—पूँटू मेरे ही सिर पड़ेगी, सिर्फ थोड़े दिनोंकी देर है,—शनैः शनै. ऐसे लक्षण ही चारो ओर स्पष्ट नजर आने लगे। जालमे फँसा जा रहा हूँ, मनको शाति नही मिलती,—जाल तोड़कर बाहर भी नही निकल पाता। ऐसे वक्त अचानक एक सुयोग मिला। बाबाने पूछा. "तुम्हारी कोई जन्मपत्री भी है या नही? उसकी तो जरूरत है।"

जोर लगाकर सारे सकोचोको दूर करके कह बैठा, "आप लोगोने पूँटूके साथ मेरा विवाह करना क्या सचमुच स्थिर कर लिया है?"

बाबा मुँह फाड़कर थोड़ी देर तक अचभेसे देखते रहे, फिर बोले, "वाकई? सुन लो इनकी बात!"

"पर मै तो अभी तक स्थिर नही कर पाया हूँ।"

"नहीं कर पाये तो अब कर लो। लड़कीकी उम्र मै चाहे बारह-तेरह वर्षकी बताऊँ या और कुछ, लेकिन असलमे वह सतरह-अठारह सालकी है। इसके बाद हम इस लडकीकी शादी कैसे करेगे?"

"पर यह मेरा दोष तो नही है?"

"तो फिर किसका है? शायद मेरा?"

इसके बाद लड़कीकी माँ और रॉगा दीदीसे शुरू करके पास-पड़ौसकी लड़कियाँ तक आ गई। रोना-धोना, अनुयोग-अभियोगोका अंत नही रहा।

मुहल्लेके पुरुषोंने कहा, "ऐसा शैतान आज तक नहीं देखा, इसे अच्छा सबक देना चाहिए।"

पर दंड देना और बात है और लड़कीकी शादी करना दूसरी बात है। फलतः बाबा चुप हो रहे। इसके बाद अनुनय-विनयकी पारी आई। पूँटूको अब नहीं देखता हूँ। शायद वह गरीब शर्मसे मुँह छिपाये कहीं पड़ी है। क्लेश होने लगा। कैसा दुर्भाग्य लेकर ये हमारे घरोंमें पैदा होती हैं। सुना कि ठीक यही बात उसकी माँ भी कह रही है,—ओ अभागिन, हम सबको खानेके बाद जायेगी। इसकी ऐसी तकदीर है कि यदि समुद्रपर दृष्टि डाले तो समुद्र तक सूख जाय और जली हुई शोल मछली भी पानीमें भाग जाय। इसका ऐसा हाल न होगा तो किसका होगा!

कलकत्ते जानेके पहले बाबाको बुलाकर अपने घरका पता बता दिया। कहा, "मेरे लिए एक व्यक्तिकी राय लेना जरूरी है, उनके कहनेपर मैं राजी हो जाऊँगा।" बाबा मेरा हाथ पकड़कर गद्‌गद् कंठसे बोले, "देखो भाई, लड़कीको मत मारो। उन्हें जरा समझा-बुझाकर कहना कि वे अपनी असम्मति न दें।" मैं बोला "मेरा विश्वास है कि वे असम्मति प्रकट न करेंगे। बल्कि खुश होकर ही सम्मति देंगे।"

बाबाने आशीर्वाद दिया, "तुम्हारे मकानपर कब आऊँ, भैया?"

"पाँच-छः दिन बाद ही आइए।"

पूँटूकी माँ और राँगा दीदीने रास्ते तक आकर आँसुओंके साथ मुझे बिदा किया।

मन ही मन कहा, तकदीर! किन्तु यह अच्छा ही हुआ कि एक प्रकारसे वचन दे आया। मैंने इस बातपर निःसंशय विश्वास कर लिया कि इस विवाहमें राजलक्ष्मी लेशमात्र भी आपत्ति न करेगी।

२

स्टेशनपर पहुँचते ही ट्रेन छूट गई। दूसरी ट्रेन आनेमें दो घंटेकी देर है। समय काटनेका उपाय खोज रहा था कि एक मित्र मिल गये। एक मुसलमान युवकने कुछ देरतक मेरी ओर देखते रह कर पूछा, "आप श्रीकांत हैं?"

"हाँ।"

" मुझे नही पहचान सके ? मै गौहर हूँ, " कहकर उसने मेरा हाथ जोरसे दबा दिया, पीठपर सशब्द चपत लगाई और जोरसे गले लिपटकर कहा, " चलो, हमारे घर चलो। कहाँ जा रहे थे,—कलकत्ते ? अब जानेकी जरूरत नहीं,—चलो। "

यह मेरा पाठशालाका मित्र है, उम्रमे कोई चार साल बडा होगा, हमेशासे ही कुछ आधा पागल जैसा। ऐसा लगा कि उम्र बढनेके साथ साथ उसका वह पागलपन कम होनेकी बजाय बढ गया है। पहले भी उसकी जबर्दस्तीसे बचनेका उपाय न था, अत: यह ख्याल कर मेरी दुश्चिन्ताकी सीमा न रही कि कमसे कम आज रातके वह मुझे किसी तरह नही छोडेगा। यह कहना व्यर्थ है कि उसकी आत्मीयता और उल्लासमे हिस्सा बँटानेकी शक्ति आज मुझमे नही है। पर वह छोडनेवाला जीव नहीं था। मेरा बैग उसने खुद उठा लिया, और कुली बुलाकर उसके सिरपर बिछौना रख दिया। फिर जबरदस्ती खींचता हुआ बाहर लाया और गाडीका भाडा ठीक कर मुझसे बोला, " चलो। "

बचनेका कोई उपाय नही है, तर्क करना फिजूल है।

यह कह चुका हूँ कि गौहर मेरा पाठशालाका साथी है। हमारे गाँवसे उसका मकान एक कोस दूर था, एक ही नदीके किनारे। बचपनमे बन्दूक चलाना उसीसे सीखा था। उसके पिताकी एक पुरानी बन्दूक थी, उसीको लेकर नदी किनारे, आमके बगीचोंमे और झाड-झखाडोमे घूमकर हम दोनों चिडियोंका शिकार किया करते। बचपनमे अनेक बार उसीके यहाँ रात काटी है,—उसकी माँ चिवडा, गुड, दूध और केला लाकर मुझे फलाहार करा देती थी। उनकी जमीन-जायदाद खेती-बारी बहुत थी। गाडीमे बैठकर गौहरने प्रश्न किया, " इतने दिनोंतक कहाँ थे, श्रीकांत ? "

जहाँ जहाँ था, उसका एक संक्षिप्त विवरण दे दिया। पूछा, " तुम अब क्या करते हो, गौहर ? "

" कुछ भी नहीं। "

" तुम्हारी माँ अच्छी तरह है ? "

" माँ-बाप दोनोंकी मृत्यु हो गई,—मकानमे अकेला मै ही हूँ। "

" शादी नही की ? "

" वह भी मर गई। "

मन ही मन सोचा कि शायद इसीलिए चाहे जिसे पकड़ ले जानेका इतना आग्रह है! जब कोई बात करनेको नही मिली तो पूछा, " तुम्हारी वह पुरानी बन्दूक है? "

गौहरने हँसकर कहा, " देखता हूँ कि तुम्हे उसकी याद है! वह है, उसके सिवाय और भी एक अच्छी बदूक खरीदी थी। तुम शिकार खेलने जाना चाहो तो साथ चला चलूँगा। किन्तु अब मै चिडियाँ नही मारता,—बहुत दुःख होता है।"

" यह क्या गौहर, तब तो तुम दिन-रात इसीके पीछे पागल थे! "

" यह सच है। लेकिन अब बहुत दिनोसे छोड दिया है। "

गौहरका एक परिचय और है कि वह कवि है। उन दिनो वह मुँह-जुबानी अनर्गल ग्राम-गीत बना सकता था,—किसी भी वक्त और किसी भी विषयपर। छन्द, मात्रा और ध्वनि इत्यादि काव्य-शास्त्रके कानून-कायदोको मानता था या नही, इसका ज्ञान मुझे न तब था और न अब है। पर मुझे याद है कि मैं उन दिनो मणिपुरका युद्ध और टिकेंद्रजीतसिंहके वीरत्वकी कहानी उसके मुँहसे सुनकर पुनः पुनः उत्तेजित हो उठता था। पूछा, "गौहर, उन दिनो तुम्हे कृत्तिवाससे भी सुन्दर रामायण लिखनेका शौक था, वह सकल्प अब भी है या गया?—" गोहर क्षण-भरमे गभीर हो गया। बोला, " वह शौक क्या कभी जा सकता है रे? उसीके बलपर तो बचा हुआ हूँ। जब तक जिंदा रहूँगा तब तक उसे लिये रहूँगा। कितना लिखा है, चलो न, आज सारी रात तुम्हे सुनाऊँगा तो भी खत्म न होगा। "

" कहते क्या हो गौहर? "

" नही तो क्या तुमसे झूठ कहता हूँ? "

प्रदीप्त कवि-प्रतिभासे उसकी आँखे और मुँह चमक उठे। सन्देह नही किया था, सिर्फ विस्मय जाहिर किया था। तथापि, कहीं केंचुआ खोजते हुए साँप न निकल आए,—मुझे जबरदस्ती बैठाकर सारी रात काव्य-चर्चा ही न करता रहे,—मेरे भयकी सीमा नही रही।

खुश करनेके लिए कहा, " नहीं गौहर, यह थोडे ही कहता हूँ। तुम्हारी अद्भुत शक्तिको सभी स्वीकार करते है, पर बचपनकी बाते याद है या नही, यही जाननेके लिए पूछा है। तो ठीक,—वह बगालकी एक कीर्ति होकर रहेगी।

"कीर्ति? अपने मुँहसे क्या कहूँ भाई, पहले सुन तो लो, फिर ये सब बातें होंगीं।"

किसी भी तरह छुटकारा नहीं! कुछ देर स्थिर रहकर मानो अपने मनसे ही कहा, "सुबहसे ही तबियत खराब हो रही है। ऐसा लगता है कि अगर नींद आ जाती—"

गौहरने इसपर ध्यान ही न दिया। कहा, "पुष्पक रथपर बैठकर सीताजी जब रोते रोते गहने फेक रही हैं,—इस अंशको जिन जिनने सुना है वे अपने ऑसू नही रोक सके हैं श्रीकात।"

ऑखोंका जल मै भी रोक सकूँगा, इसकी सभावना कम है। कहा, "किन्तु—" गौहरने कहा, "हमारे उस बूढ़े नयनचॉद चक्रवर्तीको तुम्हे याद है न? उसके मारे नाकमे दम है। वक्त-बे-वक्त आकर कहता है,'गौहर, जरा वह अंश पढो न, सुनूँगा।' कहता है,'बेटा, तुम मुसलमानकी सतान कभी नहीं हो। ऐसा लगता है कि तुम्हारे शरीरमे असली ब्राह्मण-रक्त प्रवाहित है।"

'नयनचॉद' नाम हर जगह नही होता, इसीलिए याद आ गया। मकान भी गौहरके गॉवमे ही है। पूछा, "वही बूढा चक्रवर्ती? उसके साथ तो तुम्हारे पिताजीका बड़ा झगड़ा हुआ था,—लाठियॉ चली थी और मामला भी?"

गौहरने कहा, "हॉ। लेकिन पिताजीके सामने उसकी क्या चलती?—उन्होंने उसकी जमीन, बगीचा, तालाब इत्यादि सबको कर्ज-मद्धे नीलाम करवा लिया था। लेकिन मैंने उसका तालाब और मकान लौटा दिया है। बहुत गरीब है। रात-दिन रोता था,—यह क्या अच्छा होता श्रीकात?"

अच्छा तो नही होता, परन्तु चक्रवर्तीके काव्य-प्रेमसे कुछ ऐसा ही अदाज लगा रहा था। कहा, "अब तो रोना बंद हो गया है न?"

गौहरने कहा, "लेकिन आदमी वाकई अच्छा है। कर्जेके मारे उसने उस वक्त जो कुछ किया था, वैसा बहुत लोग करते हैं। उसके मकानके पास ही डेढेक बीघेका आमका बगीचा है, उसके हरेक पेड़को चक्रवर्तीने अपने हाथोंसे लगाया है। नाती-पोते बहुतसे हैं, खरीदकर खानेके लिए पैसे नहीं हैं।—फिर, मेरा ही कौन है, कौन खानेवाला है?"

"यह ठीक है। उसे भी लौटा दो।"

"लौटा देना ही ठीक है, श्रीकात। ऑखोके सामने ही आम पकते हैं,

लडके-बच्चे ठंडी आहें भरते हैं,—मुझे बहुत दुःख होता है भाई ! आमके दिनोंमे मेरे सब बगीचे व्यापारी लोग ले लेते हैं, सिर्फ वह बगीचा नही बेचता। कह दिया है, चक्रवर्ती, तुम्हारे नाती तोड तोड़कर खाये।—क्या कहते हो, ठीक किया न ? ”

“ बिलकुल ठीक। ” मन ही मन कहा, वैकुंठके खातेकी जय हो ! उसकी बदौलत यदि गरीब नयनचॉद यत्किंचित् लाभ उठा सके तो नुकसान ही क्या है ? इसके अलावा गौहर कवि है। कविकी इतनी संपत्ति किस मतलबकी अगर रसग्राही रसिक सुजनोंके काममे न आये !

लगभग चैत्रके बीचोबीचकी बात है, गाडीकी खिड़कीको एकाएक अततक खोलकर गौहरने बाहर सिर निकालते हुए कहा, “ दक्षिणी हवाका अनुभव हो रहा है श्रीकान्त ? ”

“ हो रहा है। ”

गौहरने कहा, “ वसन्तको पुकारते हुए कविने कहा है।

‘ खोल दे आज दक्षिणका द्वार’—”

कच्ची मिट्टीका रास्ता है। मलय पवनके एक झोकेने रास्तेकी सूखी धूलको जमीनपर नही रहने दिया, उससे समस्त मुँह और सिरको भर दिया। मै अप्रसन्न होकर बोला, “ कविने वसन्तको नहीं बुलाया। वह कहता है कि इस वक्त यमका दक्षिण द्वार खुला है,—अतः गाड़ीकी खिडकी बन्द न करोगे, तो शायद वही आकर हाजिर हो जायगा। ”

गौहरने हँसकर कहा, “ चलकर देखोगे एक बार। चकोतरेके दो पेडोंपर फूल खिले हैं, कोई आध कोससे उनकी गन्ध आती है। सामनेवाला जामुनका पेड़ माधवी फूलोंसे भर गया है, उसकी एक डालपर मालतीकी लता है। फूल अभी नही खिले हैं, कलियोके गुच्छेके गुच्छे लटक रहे हैं। हमारे चारो ही ओर आमके बगीचे हैं और अबकी बार मौरसे आमके झाड़ छा गये हैं। कल सुबह मधुमक्खियोका मेला देखना ! कितने नीलकंठ, कितनी बुलबुले और कितनी कोयलोंके गान ! इस वक्त चॉदनी रात है न, इस कारण रातको भी कोयलकी कूक नही रुकती। बाहरके कमरेकी दक्षिणवाली खिड़की यदि खुली रखोगे तो फिर तुम्हारी पलके न झपेगीं। लेकिन इस बार यों ही नही छोड दूँगा भाई, यह पहलेसे कह देता हूँ। इसके अलावा खानेकी भी

कोई फिक्र नहीं, चक्रवर्ती महाशयको एक बार खबर मिलने-भरकी देर है। गुरुकी तरह तुम्हारा आदर करेंगे।"

आमन्त्रणकी अकपट आन्तरिकतासे मुग्ध हो गया। कितनी मुद्दतों बाद मुलाकात हुई है, लेकिन वह ठीक उस दिन जैसा ही गौहर है,—जरा भी नहीं बदला है,—वैसा ही बचपन है, मित्र-मिलनमें वैसा ही अकृत्रिम उल्लास है!

गौहर मुसलमान फकीर-सम्प्रदायका है। सुना गया है कि उसके पितामह बाउल* थे। वे रामप्रसादी और दूसरे गीत गा गाकर भिक्षा माँगते थे। उनकी पाली हुई मारिकाकी अलौकिक संगीत-पारदर्शिताकी कहानी उन दिनों इधर बहुत प्रसिद्ध थी। लेकिन गौहरके पिता पैतृक-वृत्ति छोड़कर तिजारत और पाटका कारबार करने लगे और अपने लड़केके लिए बहुत-सी जायदाद खरीदकर छोड़ गये। परन्तु लड़केमें बाप जैसी व्यापारी बुद्धि नहीं है,—बल्कि बाबाके काव्य और संगीतके प्रति ही उसमें अनुराग है। अतः पिताकी जी-तोड़ मेहनतसे संचित जमीन-जायदाद और खेती-बारीका अंतमें क्या परिणाम होगा, यह शंका और संदेहका विषय है।

खैर जो हो, उन लोगोंका मकान बचपनमें देखा था। ठीकसे याद नहीं। अब वह शायद कविकी वाणी-साधनाके तपोवनमें रूपान्तरित हो गया हो। उसे एक बार आँखोंसे देखनेकी इच्छा हुई।

उसके ग्रामके पथसे मैं परिचित हूँ, उसकी दुर्गमता भी याद आती है। किन्तु थोड़ी ही देर बाद मालूम हो गया कि शैशवकी उस यादके साथ आजकी आँखोंसे देखनेकी कतई तुलना नहीं हो सकती। बादशाही जमानेकी सड़क है अतिशय सनातन। मिट्टी-पत्थरोंकी परिकल्पना यहाँके लिए नहीं है! कोई करेगा, ऐसी दुराशा भी कोई नहीं करता। इतना ही नहीं, संस्कार या मरम्मतकी संभावना भी लोगोंके मनसे बहुत समय पहले ही पुछ गई है। गाँववाले जानते हैं कि शिकायत या अभियोग फिजूल है,—उनके लिए किसी भी दिन राजकोषमें रुपये नहीं होंगे। वे जानते हैं कि पुरुषानुक्रमसे

* बाउल—बंगालमें बैरागी सन्तोंका एक सम्प्रदाय। कबीर, दादू आदि हिन्दीके संत-कवियोंकी वाणी गा गाकर ये घर घर भिक्षा माँगते हैं।

सड़कके लिए सिर्फ सड़क-टैक्स देना पडता है पर वह सड़क कहाँ है और किसके लिए है, यह सब सोचना भी उनके लिए ज्यादती है।

उस सड़कपर बहुकालसे संचित और स्तूपीकृत बालू और मिट्टीकी रुकावटको हटाती हुई हमारी गाडी सिर्फ चाबुकके जोरसे अग्रसर हो रही थी। ऐसे ही वक्त गौहर एकाएक बडे जोरसे चिल्ला उठा, "गाडीवान!—और नही,—और नही,—ठहरो, ठहरो,—एकदम रोको!"

उसने यह इस तरह कहा जैसे पजाब मेलका मामला हो,—जैसे पल-भरमे ही सब वैक्युम ब्रेक अगर बद न किये जा सके तो सर्वनाशकी सभावना हो।

गाडी रुक गई। बॉये हाथवाला रास्ता उनके गॉव जानेका है। उतरकर गौहरने कहा, "श्रीकात, उतर आओ। मैं बैग ले लेता हूँ, तुम बिछौना उठाओ, चलो।"

"शायद गाडी और आगे नही जायगी?"

"नही। देखो न, रास्ता नही है।"

यह सही है। दक्षिण और बॉयी ओर कॉटेदार पेड और बेत-कुजकी घनी तथा सम्मिलित शाखा-प्रशाखाओके कारण गॉवकी वह गली अतिशय सकीर्ण हो गई है। गाडीको अदर घुमानेका तो प्रश्न ही अवैध था, क्योकि अगर आदमी भी होशियारीके साथ झुककर न घुसे तो कॉटोमे फॅसकर उसके कपडोका फटना अनिवार्य है,—अतएव, कविके कथनानुसार वहॉका प्राकृतिक सौन्दर्य अनिर्वचनीय था। उसने बैगको कधेपर रखा और मैंने बिछौनेको बगलमें दबाया। इस तरह हम लोग गोधूलिकी बेलामे गाडीसे उतरे। कवि-गृहमे जब पहुँचा तो शाम हो चुकी थी। अंदाज लगाया कि आकाशमे बसन्त-रात्रिका चन्द्रमा भी निकल आया है। शायद पूर्णिमाके आस-पासकी तिथि थी, अतएव इस आशामे था कि गम्भीर निशीथमे चन्द्रदेव सिरके ऊपर आ जायॅ तो तिथिके बारेमे निःसशय हो जाऊँ। मकानके चारो ओर बॉसोका घना वन है, बहुत सम्भव है कि इसी जगलमे उसकी कोयल, नीलकण्ठ और बुलबुलोका झुण्ड रहता हो और उन्हींकी अहर्निश पुकार तथा गाना कविको व्याकुल बना देता हो। बॉसके पके सूखे हुए असख्य पत्तोंने झड झड़ कर ऑगन और चबूतरेको चारों ओरसे परिव्याप्त कर रखा है। इनपर नजर पडते ही इस प्रेरणासे सारा मन क्षण-

भरमें ही गर्जन कर उठता है कि झडे हुए पत्तोका गीत गाया जाय। नौकरने आकर बाहरकी बैठक खोल दी और बत्ती जला दी। गौहरने तख्त दिखाते हुए कहा, " तुम इसी कमरेमे रहो। देखना, कैसी सुन्दर हवा आती है। "

असम्भव नहीं है। देखा, कि दक्षिणकी हवाकी वजहसे देशभरकी सूखी हुई लताओ और पत्तोंने गवाक्ष-पथसे भीतर घुसकर कमरेको भर दिया है, तख्तको भी छा दिया है। फर्शपर पैर पडते ही शरीर सनसना उठा। खाटके पायेके पास चूहेने अपना बिल बनाकर मिट्टी जमा कर रखी है। मैने उसे दिखाकर कहा, " गौहर, इस कमरेमे तुम लोग क्या कभी झॉकते भी नही ? "

गौहरने जवाब दिया, " नहीं, जरूरत ही नही पडती। मै अंदर ही रहता हूँ। कल सब साफ करा दूँगा। "

" साफ तो हो जायगा, लेकिन इस बिलमे सॉप भी तो रह सकते हैं ?"

नौकरने कहा, " दो थे, लेकिन अब नही हैं। ऐसे दिनोमें वे नही रहते, हवा खानेके लिए बाहर चले जाते हैं। "

पूछा, " यह कैसे माल्म हुआ मियॉ ? "

गौहरने हँसते हुए कहा, " वह मियॉ नही है, अपना नवीन है। पिताजीके जमानेका आदमी है। गाय-भैस, खेती-बारी देखता है और मकानकी हिफाजत भी करता है। हमारे यहॉ कहॉ क्या है, और क्या नहीं है, इसे सब पता है। " नवीन बगाली हिन्दू है और पिताके जमानेका आदमी। इस घरकी गाय-भैसे, खेती-बारीसे लेकर मकान तकका सारा हाल जानना उसके लिए असम्भव नही है। तथापि सॉपके बारेमे उसकी बातोंसे निश्चिन्त न हो सका। यहॉ तो मकान-भरको दक्षिणी हवा लग गई है! सोचा, इसमे शक नही कि हवाके लोभमे सर्प-युगल बाहर जा सकते हैं, परन्तु, उन्हें लौटते भी कितनी देर लग सकती है ?

गौहरने ताड़ लिया कि मुझे तसल्ली नही हुई है। कहा, " तुम तो खाटपर रहोगे, फिर तुम्हें डर किस बातका ? इसके अलावा वे कहॉ नही रहते ? भाग्यमे लिखा था, इससे राजा परीक्षितको भी रिहाई नहीं मिली, फिर हम तो तुच्छ हैं।—नवीन, कमरेमे झाड़ू लगाकर एक ईटसे बिलको ढक देना, भूलना नहीं।—पर श्रीकात, कहो तो, तुम खाओगे क्या ? "

मैंने कहा, " जो कुछ मिल जाय । "

नवीन बोला, "दूध, चिवड़ा और अच्छी ईखका गुड़ है। आजके लायक–"

मैंने कहा, " ठीक है, ठीक है । इस मकानमें ये ही चीजे खानेकी मुझे आदत है, और कुछ जुटानेकी जरूरत नहीं, भाई । बल्कि, तुम कहींसे एक हल्की ईंट ले आओ । बिलको मजबूतीसे ढक दो, जिससे दक्षिणकी हवासे पेट भरकर जब वे घर लौटे तो फिर एकाएक इसमे न घुस सके।"

हाथमे रोशनी लेकर नवीन कुछ देरतक तख्तके नीचे झाँकता रहा । फिर बोला, " नही, नहीं हो सकता । "

" क्या नहीं हो सकता जी ? "

उसने सिर हिलाकर कहा, " नहीं, यह नही हो सकता । बिलका मुँह क्या अकेला है बाबू ? पजावा-भर ईंटे चाहिए । चूहोंने जमीनको एकबारगी पोला कर डाला है। "

गौहर विशेष विचलित न हुआ । उसने आदमी लगाकर कल अवश्य मरम्मत करा देनेका हुक्म दे दिया ।

नवीन हाथ-पैर धोनेके लिए पानी देकर फलाहारका आयोजन करने जब भीतर चला गया तो मैने पूछा, " और तुम क्या खाओगे गौहर ? "

" मै ? मेरी एक बूढी मौसी हैं, वे ही खाना बनाती हैं । खैर, यह खाना-पीना खत्म हो जाय तो अपनी रचनायें तुम्हे सुनाऊँगा। " वह अपने काव्यके ध्यानमे ही मग्न था । अतिथिके आराम और सुविधाका ख्याल शायद उसने किया ही नहीं । बोला, " बिछौना बिछा दूँ, क्या कहते हो ? रातको हम दोनों एक साथ ही रहेगे,—क्यो ! "

यह एक और आफत आई ! कहा, " नही भाई गौहर, तुम अपने कमरेमे जाकर सोओ । आज मैं बहुत थका हुआ हूँ, कल सुबह ही तुम्हारी रचना सुनूँगा । "

" कल सुबह ? तब क्या वक्त रहेगा ? "

" अवश्य रहेगा । "

गौहर चुप होकर कुछ सोचता रहा । बोला, " अच्छा श्रीकांत, एक काम किया जाय वो कैसा हो ! मैं पढता हूँ और तुम लेटे लेटे सुनते रहना । नींद आनेपर मैं चला जाऊँगा । क्या कहते हो ? यह ठीक है न,—क्यो ? "

मैंने विनती करते हुए कहा, "नहीं भाई गौहर, इससे तुम्हारी किताबकी मर्यादा नष्ट होगी। कल मैं पूरा ध्यान लगाकर सुनूँगा।"

गौहरने क्षुब्ध चेहरेसे बिदा ली, पर बिदा करके मेरा मन भी प्रसन्न नहीं हुआ।

यह एक ही पागल है। पहले इसके इशारोंसे तो मैंने यही समझा था कि अपने काव्य-ग्रथको वह प्रकाशित करना चाहता है और उसे आशा है कि उससे ससारमें एक धूम मच जायगी। वह ज्यादा पढा-लिखा नही है। पाठशाला और स्कूलमें उसने सिर्फ थोडी-सी बगला और अँग्रेजी सीखी थी। इच्छा भी नहीं थी, और शायद समय भी नही मिला। शैशवमे न जाने कब और कैसे वह कवितासे प्रेम कर बैठा। सभव है कि वह प्रेम उसकी शिराओंके खूनमें ही बह रहा हो,—इसके बाद ससारका सब कुछ उसकी नजरोंमे अर्थहीन हो गया है। अपनी अनेक रचनायें उसे याद हैं। गाडीमें बैठा हुआ बीच बीचमें वह गुनगुनाकर आवृत्ति भी करता था। उस वक्त सुनकर यह नही सोचा था कि इस अक्षम भक्तको भी वाग्देवी अपने स्वर्ण-पद्मकी एक पखुडी देकर किसी दिन पुरस्कृत करेगी। पर अक्लान्त आराधनाके एकाग्र आत्म-निवेदनमे इस बेचारेको विराम नहीं, विश्राम नही। बिछौनेपर लेटा हुआ सोचने लगा कि बारह साल बाद मुलाकात हुई है। इन बारह वर्षोंसे उसने सब पार्थिव स्वार्थोंको जलाजलि देकर और एक रचनाके बाद दूसरी गूँथकरके श्लोकोंका पहाड जमा कर लिया है। पर यह सब किस काममे आयेगा? जानता हूँ कि काममे नहीं आयेगा। गौहर आज नहीं है। पर उसकी दुश्चर तपस्याकी अकृतार्थताका स्मरण कर आज भी मन दुखी होता है। सोचता हूँ कि न जाने कितने शोभाहीन, गंधहीन फूल लोक-चक्षुओंके अंतरालमे खिलते हैं और फिर अपने आप ही मुरझा जाते हैं। परन्तु, विश्व-विधानमे यदि उनकी कोई सार्थकता है, तो शायद गौहरकी साधना भी व्यर्थ नही हुई होगी।

गौहरने बहुत सबेरे ही पुकारकर मेरी नींद खोल दी। तब शायद सात बजे थे, या न भी बजे हों। उसकी इच्छा थी कि वसतके दिनोंमे बगालके निभृत गाँवोंके लोकोत्तर शोभा-सौन्दर्यको अपनी आँखोंसे देखकर धन्य होऊँ। उसका भाव कुछ ऐसा था कि मानों मैं विलायतसे लौटकर आया

हूँ। उसका आग्रह पागलों जैसा था। अनुरोध टालनेका उपाय नहीं था। अतएव हाथ-मुँह धोकर तैयार होना पडा। दीवारके सहारे एक अधमरे जामुनके पेडमे आधी माधवी और आधी मालती लताऍ थीं। यह कविकी अपनी योजना है। अत्यंत निर्जीव शकल,—तथापि, एकमें थोड़ेसे फूल खिले हैं और दूसरेमें अभी अभी कलियाँ फूटी हैं। उसकी इच्छा थी कि थोडेसे फूल मुझे उपहार दे, पर पेडमे इतने लाल चींटे थे कि छूनेका कोई उपाय नहीं सूझा। उसने मुझे यह कहकर सान्त्वना दी कि कुछ देर बाद उन्हे ऑकड़ीसे अनायास ही झडा दिया जायगा।—अच्छा, चलो।

प्रातःक्रिया ठीक तौरसे निष्पन्न हो सके, (अर्थात् कब्ज न रहे,) इसके उद्योग-पर्वमे चिलम हाथमे लिये दम लगाकर नवीन बड़े जोरसे खॉस रहा था। थूककर, खखारकर और बहुत कुछ सँभालकर हाथ हिलाकर उसने मना किया। कहा,“ जगलमें कही गायब मत हो जाइएगा, कहे देता हूँ।”

गौहरने नाराजीसे कहा, “ क्यो रे ?”

नवीनने जवाब दिया, “ कोई दो-तीन सियार पागल हो गये हैं; ढोर,—आदमियोंको काटते डोल रहे हैं।”

मैं डरके मारे पीछे हट गया।

“ कहॉ रे नवीन ? ”

“ यह क्या मैने देखा है कि कहॉ हैं ? कही न कही झाडी-आडीमें छिपे होंगे। अगर जाते हो तो ऑखे खोलकर जाना। ”

“ तो भाई, जानेका काम नही गौहर। ”

“ वाह—रे ! इस वक्त कुत्ते और सियार जरा पागल हो ही जाते हैं,—सिर्फ इसी वजहसे क्या लोग रास्ता चलना बद कर देगे ? खूब कहा !”

यह भी दक्षिणकी हवाका मामला है। अतएव, प्रकृतिकी शोभा देखने साथमे जाना ही पड़ा। रास्तेके दोनों ओर आमके बगीचे हैं। करीब पहुँचते ही असख्य छोटे छोटे कीड़े-मकोड़े चड-चड पट-पट आवाज़ करते हुए आम्र-मुकुलोंको छोड़कर ऑख, नाक, मुँह और कपड़ोंके भीतर घुस गये। सूखे पत्तोंपर आमका मधु गिरकर चिपकनी लेईकी तरह हो गया था, वह जूतेके तलोंमे चिपकने लगा। सकरे रास्तेका बहुत-सा हिस्सा बेदखल कर विराज-

मान मुकलित-विकसित फूलोंके भारसे लदी घनी करौंदेकी झाड़ियाँ,—इसी समय याद आ गई नवीनकी चेतावनी। गौहरके मतानुसार यह वक्त पागल होने लायक ही है, इसलिए करौंदेके फूलोंकी शोभा और किसी दिन समयके अनुसार उपभोग की जायगी। आज गौहर और मै,—यानी नवीनके 'ढोर आदमी' ने जरा तेज कदमसे ही स्थान त्याग किया।

मै कह चुका हूँ कि हमारे गॉवकी नदी इस गॉवकी सीमामे भी होकर बहती है। वर्षाकी चौडी जलधारा वसंतके समागमसे पतली शीर्ण हो गई है। उस समय धारके साथ बहकर आई हुई अपरिमेय सिवार और काई शुष्क तट-भूमिपर फैल गई है और शिशिर और धूपमें सड़ कर उसने सारी जगहको दुर्गंधसे नरक-कुण्ड बना दिया है। नदीके उस पार कुछ दूर सेमरके पेड़मे सैकड़ों लाल फूल खिले हुए थे। उनपर नजर पड़ी, लेकिन इस वक्त कविको भी उस ओर दृष्टि आकर्षित करना ठीक नही लगा। उसने कहा, " चलो, घर लौट चले। "

" अच्छा, चलो। "

" मेरा ख्याल था कि ये सब चीजे तुम्हे अच्छी लगेगी। "

कहा, " अच्छी लगेगी भाई, लगेगीं। अच्छे अच्छे शब्दोंमे तुम इनको कवितामे लिखो, मैं पढकर खुश हूँगा। "

" शायद इसीलिए गॉवके आदमी एक बार भूलकर भी इन्हे नही देखते। "

" नही। देखते देखते उन्हे अरुचि हो गई है। भाई, ऑखोंकी रुचि और कानोकी रुचि एक नहीं है। जो यह सोचते हैं कि कविके वर्णनको अपनी ऑखोंसे देखनेपर लोग मोहित हो जाते हैं, वह नहीं जानते सत्य क्या है। दुनियाके हर काममे यह बात लागू है। ऑखोंके लिए जो एक साधारण घटना या बहुत मामूली-सी वस्तु है वही कविकी भाषामे 'नयी सृष्टि' हो जाती है। तुम जो देखते हो वह भी सत्य है, और जो मै नहीं देख सका वह भी सत्य है। इसके लिए तुम दुखी मत होना गौहर। "

तो भी लौटते समय रास्तेमें उसने न जाने कितनी और क्या क्या वस्तुएँ दिखानेकी चेष्टा की। पथका प्रत्येक वृक्ष, प्रत्येक लता-पौधा तक मानो उसका पहचाना हुआ है। न जाने कब एक पेड़की छाल ओषधिके लिए

कोई छीलकर ले गया था और उससे चिपकनेवाला पदार्थ अब भी झर रहा था। सहसा उसे देखकर गौहर सिहर-सा उठा। उसकी आँखें छलछला आईं,—मैं उसके मुँहकी ओर देखकर यह स्पष्टतया समझ गया कि अन्तरमें उसने कितनी वेदनाका अनुभव किया है। चक्रवर्ती जो अपनी सब खोई हुई चीजें पुनः वापस प्राप्त कर रहा था, सो केवल अपनी होशियारीके कारण नहीं,—इसका कारण तो गौहरके स्वभावमे ही है। ब्राह्मणके प्रति मेरा क्रोध बहुत कुछ अपने आप ही कम हो गया। चक्रवर्तीसे मुलाकात नहीं हुई, क्योंकि सुना गया कि उसके घरमे उसके दो नातियोंपर शीतला-माताकी कृपा हुई है। गॉव गॉवमे अबतक विसूचिका-माताके दर्शन नहीं हुए हैं,—वे सडी हुए तलैयोके पानीके थोड़ा और सूख जानेकी राह देख रही हैं।

खैर, घर पहुँचकर गौहरने अपना पोथा मेरे सामने हाजिर कर दिया। ऐसा आदमी ससारमे बिरला ही होगा जिसे उसका परिमाण देखकर भय न लगता। बोला, "बिना पढे छुट्टी नही मिलेगी श्रीकात, और तुम्हें अपनी सच सच राय देनी होगी।"

यह आशका तो थी ही। साफ साफ राजी हो सकूँ, इतना साहस नही था, तो भी कविकी वाटिकामे इस यात्राके, एकके बाद एक, मेरे सात दिन काव्या-लोचनामे ही कट गये। काव्यकी बात जाने दो, किन्तु सघन साहचर्यमे इस मनुष्यका जो परिचय मिला, वह जितना सुन्दर था उतना ही विस्मयकारक।

एक दिन गौहरने कहा, "श्रीकात, तुम्हे बर्मा जानेकी क्या जरूरत है? हम दोनोंके ही अपना कहने लायक कोई नहीं है, तो आओ न हम दोनों भाई यही एक साथ जीवन बिता दे!"

हँसकर कहा, "मैं तो तुम्हारी तरह कवि नही हूँ भाई, न मैं पेड-पौधोंकी भाषा ही समझता हूँ, और न उनसे बातचीत ही कर सकता हूँ, फिर इस जंगलमें कैसे रह सकूँगा? दो दिनमे ही हाँफ जाऊँगा!"

गौहरने गंभीर होकर कहा, "किन्तु मैं उनकी भाषा वाकई समझता हूँ वे सचमुच बोलते हैं,—क्या तुम लोग विश्वास नहीं करते?"

मैंने कहा, "यह तो तुम भी समझते हो कि विश्वास करना मुश्किल है?"
गौहरने सरलतासे स्वीकार कर लिया, कहा, "हॉ, हॉ, यह तो समझता हूँ।"

२

एक दिन सुबह अपनी रामायणका अशोक-वनवाला अध्याय कुछ देर तक पढ़नेके बाद उसने हठात् किताब बद कर दी और मेरी ओर घूमकर प्रश्न किया, "अच्छा श्रीकान्त, तुमने कभी किसीको प्यार किया है ?"

कल बहुत रात तक जागकर राजलक्ष्मीको वह शायद अपनी अंतिम चिट्ठी लिखी थी। उसमे बाबाकी बाते, पूँटूकी कथा और उसके दुर्भाग्यका समस्त विवरण था। उन लोगोको वचन दिया था कि एक आदमीकी अनुमति माँग लूँगा,—सो वह भिक्षा भी उसमे माँगी थी। चिट्ठी भेजी नहीं थी, उस वक्त पाकेटमे ही पडी हुई थी। गौहरके प्रश्नके उत्तरमे हँसकर कहा, "नहीं।"

गौहरने कहा, "यदि कभी प्यार करो, यदि कभी ऐसा दिन आये तो मुझे जताना श्रीकान्त।"

"जानकर क्या करोगे ?"

"कुछ भी नही। तब सिर्फ तुम लोगोंके बीच जाकर कुछ दिन काट आऊँगा।"

"अच्छा।"

"और अगर उस वक्त रुपयोंकी जरूरत हो तो मुझे खबर दे देना। बाबूजी बहुत रुपया छोड गये हैं, वह मेरे काममें तो लगा नही,—किन्तु शायद तुम लोगोंके काममे लग जाय।"

उसके कहनेका तरीका कुछ ऐसा था कि सुनते ही आँखोंके अश्रु निकल पड़े। कहा, "अच्छा, यह भी खबर दूँगा। पर आशीर्वाद दो कि इसकी कभी जरूरत न पड़े।"

मेरे जानेके दिन गौहर फिर मेरा बैग उठाकर प्रस्तुत हो गया। इसकी जरूरत न थी, नवीन तो शर्मसे प्राय: अधमरा हो गया, पर उसने एक न सुनी। ट्रेनमें बैठाकर वह औरतोंकी तरह रो उठा, बोला, "मेरे सिरकी कसम है श्रीकान्त, चले जानेके पहले एक दिन फिर आना ताकि फिर एक बार मुलाकात हो जाय।"

आवेदनकी उपेक्षा नही कर सका, वचन दिया कि मिलनेके लिए फिर एक बार आऊँगा।

"कलकत्ता पहुँचकर कुशल-सवाद दोगे न ?"

यह वचन भी दिया। मानो न जाने कितनी दूर चला जा रहा हूँ !

कलकत्तेके मकानमें जब पहुँचा, तब प्रायः सन्ध्या हो गई थी। चौखट-पर पैर रखते ही जिसके दर्शन हुए, वह और कोई नहीं स्वयं रतन था।

" यह क्या रे, तू है ?"

" हाँ, मैं ही हूँ और कलसे बैठा हूँ। एक चिट्ठी है।" समझ गया कि उसी प्रार्थनाका उत्तर है। कहा, " डाकसे भेजनेपर भी तो चिट्ठी मिल जाती ?"

रतनने कहा, " यह व्यवस्था किसान, मज़दूर और साधारण गृहस्थके लिए है। माँकी चिट्ठी अगर एक आदमी बिना खाये-पिये और सोये पाँच सौ मीलसे हाथमें लिये दौड़ता हुआ न लाये, तो खो न जायगी ? आप तो सब जानते हैं, क्यो झूठ-मूठ पूछ रहे हैं ?"

बादमे सुना कि रतनका यह अभियोग झूठा है। क्योंकि खुद ही उद्यत होकर वह यह चिट्ठी अपने हाथ लाया है। मालूम हुआ कि ट्रेनकी भीड और आहार वगैरहकी अव्यवस्थाके कारण उसका मिजाज बिगड़ गया है। हँसकर कहा, " ऊपर आ। चिट्ठी पीछे पढ़ूँगा, चल, पहले तेरे खानेका इतिजाम कर दूँ।"

रतनने पैरोंकी धूल लेकर प्रणाम किया और कहा, " चलिए।"

२

डकारसे चौंकाता हुआ रतन दाखिल हुआ।

" कह रतन, पेट भर गया ?"

" जी हाँ। पर आप चाहे कुछ भी कहें बाबू, लेकिन हमारे कलकत्तेके बंगाली ब्राह्मणोंके अलावा और कोई रसोई बनाना नहीं जानता। उनके आगे तो इन मारवाड़ी महाराजोंको जानवर ही कहा जा सकता है।"

मुझे याद नही कि दोनो प्रांतोंकी रसोईकी अच्छाई-बुराई या रसोइयेकी कलाके बारेमे रतनसे कभी मैंने बहस की हो, पर रतनको जितना जानता हूँ उससे यही ख्याल हुआ कि सुप्रचुर भोजनसे वह खूब संतुष्ट हुआ है। अगर यह बात न होती तो वह पश्चिमी रसोइयोंके बारेमे ऐसी निरपेक्ष राय न दे सकता। उसने कहा, " गाड़ीमें धक्के तो कम नहीं लगे, हाथ-पैर फैलाकर लेटे बिना—"

"तो अच्छा है रतन, चाहे कमरेमें चाहे बरामदेमें बिछौना बिछाकर सो जा, कल सब बातें होंगीं।"

न जाने क्यों चिट्ठीके लिए उत्कंठा न थी। ऐसा लग रहा था कि उसमें जो कुछ लिखा होगा वह तो मालूम ही है।

रतनने फतूईकी जेबसे एक लिफाफा निकालकर मेरे हाथमें दे दिया। चपड़ेसे सील-मोहर किया हुआ था। बोला, "बरामदेकी इस दक्षिणवाली खिड़कीके बगलमें बिछौना बिछा लूँ? मसहरी लगानेकी झंझट नहीं होगी। कलकत्तेके अलावा ऐसा सुख और कहाँ है! जाता हूँ—"

"किंतु सब खबर अच्छी है न रतन?"

रतनने मुँह गंभीर कर कहा, "ऐसा ही तो लगता है। गुरुदेवकी कृपासे मकानका बाहरी हिस्सा गुलजार है। भीतर दास-दासियाँ, बंकू बाबू,—नयी बहूने आकर घरद्वार रौशन कर दिया है, और सबके ऊपर स्वयं माँ हैं जो मकानकी मालकिन हैं,—ऐसी गृहस्थीकी बुराई कौन करेगा? लेकिन मैं बहुत पुराना नौकर हूँ, जातिसे नाई हूँ,—रतनको इतनी जल्दी नहीं भुलावा नहीं दिया जा सकता बाबू। इसीलिये तो उस दिन स्टेशनपर आँखोंके अश्रु न रोक सका। यह निवेदन किया था कि परदेशमें नोकरोंकी कमी होनेपर रतनको एक बार खबर जरूर दे दे। जानता हूँ कि आपकी सेवा करनेपर भी उसी माँकी सेवा होगी। धर्मका पतन नही होगा।"

मैं कुछ भी नहीं समझा, सिर्फ चुपचाप ताकता रहा। वह कहने लगा, "बंकू बाबूकी अब उम्र भी हो गई, थोड़ा-बहुत पढ-लिखकर आदमी भी बन गये हैं। शायद सोचते हैं कि दूसरेके अधीन किसलिए रहा जाय? दानपत्रके जोरसे सब मार तो लिया ही है। मानता हूँ कि मोटे तौरपर उन्होंने काफी हाथ साफ किया है, पर वह कितने दिनोंका है बाबू?"

बात अब भी साफ न हुई, पर एक धुँधली छाया आँखोंके सामने तैर गई। वह फिर कहने लगा, "आपने तो खुद अपनी आँखोंसे देखा है कि महीनेमें कमसे कम दो दफे मेरी नौकरी छूट जाती है। हालत बुरी नहीं है, नाराज़ होकर जा भी सकता हूँ, लेकिन क्यों नहीं जाता? जा नहीं सकता। इतना जानता हूँ कि जिसकी दयासे सब कुछ हुआ है, उसके एक निःश्वाससे ही आश्विनके मेघकी तरह सब लोप हो जायगा, वह पलक मारनेकी भी फ़ुर्सत नहीं देगा।

यह माँकी नाराज़गी नहीं है, यह तो मेरे देवताका आशीर्वाद है।"

यहाँ पाठकोंको यह स्मरण करा देना आवश्यक है कि बचपनमें रतन थोड़े दिनों तक प्रायमरी स्कूलमे शिक्षा प्राप्त कर चुका है।

कुछ रुककर कहा, "माँने मना कर दिया है, इसीलिए कभी कहता नहीं। घरमे जो कुछ था बाबाने ले लिया, यजमानोंका एक घर तक नही दिया। एक छोटा लड़का और लड़की और उनकी माँको छोडकर पेटके लिए एक दिन गाँव छोड़कर बाहर निकल पड़ा। पर पहले जन्मकी तपस्या थी, मेरी नौकरी इन माँके ही घर लग गई। सारा दुखड़ा उन्होंने सुना, लेकिन उस वक्त कुछ नहीं कहा। एक वर्षके बाद मैने निवेदन किया, 'माँ, बच्चोंको देखनेकी इच्छा है, अगर कुछ दिनोंकी छुट्टी मिल जाती—'। हँसकर बोली, 'फिर आओगे न?' जानेके दिन हाथमे एक पोटली देते हुए कहा 'रतन, बाबासे लड़ाई-झगड़ा मत करना भैया, जो कुछ तुम्हारा चला गया है उसे इसके द्वारा फेर लेना।' गठरी खोलकर देखता हूँ कि पाँच-सौ रुपये हैं! पहले तो अपनी आँखोंपर विश्वास नहीं हुआ। ऐसा लगा, मानो मैं जाग्रत अवस्थामे स्वप्न देख रहा हूँ। मेरी उसी माँसे बकू बाबू अब उल्टी-सीधी बाते कहते हैं, आडमे खड़े होकर फुस फुस करते हैं, सोचता हूँ कि अब इनके ज्यादा दिन नहीं हैं, क्योंकि अब माँ-लक्ष्मी जानेहीवाली हैं!"

मैने यह आशंका नही की थी, चुपचाप सुनने लगा।

ऐसा लगा कि कुछ दिनोंसे क्रोध और क्षोभमे रतन फूल रहा है। बोला, "माँ जब देती हैं तो दोनो हाथोंसे उड़ेल देती हैं। बकूको भी दिया है, इसीलिए उसने यह सोच लिया है कि मधु निचोडे हुए छत्तेकी क्या कीमत? —इस वक्त तो ज्यादासे ज्यादा उसे जलाया ही जा सकता है। इसीलिए उसको वे इतनी अप्रिय हो रही हैं। मूरख यह नहीं जानता कि आज भी माँका एक गहना बेचनेपर ऐसे पाँच मकान तैयार हो सकते हैं।"

मैं भी यह न जानता था। हँसकर कहा, "ऐसी बात है? पर वह सब हैं कहाँ?"

रतन भी हँसा। बोला, "उन्हींके पास हैं। माँ ऐसी बेवकूफ नहीं हैं। सिर्फ आपहीके चरणोंपर सर्वस्व लुटाकर वे भिखारिणी हो सकती हैं, किन्तु और किसीके भी लिए नहीं। बकू नहीं जानता है कि आपके ज़िन्दा रहते माँको

आश्रयकी कमी न होगी, और जबतक रतन जीवित है तबतक उन्हे नौकरके लिए भी सोचनेकी जरूरत नहीं। उस दिन काशीसे आपके इस तरह चले आनेकी वजहसे मॉके हृदयमे कैसा तीर चुभा है, इसकी खबर क्या बकू बाबू रखते हैं ? गुरु महाराजको भी उनकी खोज-खबर कहॉसे मिल सकती है ?"

"पर मुझे तो उन्होने ही खुद विदा किया था, इसकी खबर तो रतन, तुम्हे है ?"

जीभ निकालकर रतन शर्मसे गड़ गया। उसमे इतनी विनय इसके पहले कभी न देखी थी। कहा, "बाबू, हम तो नौकर-चाकर हैं, ये सब बाते हमारे कानोको नही सुननी चाहिए। यह झूठ है।"

रतन थकावट मिटानेके लिए चला गया। शायद कल आठ बजेके पहले उसके शरीरमे स्फूर्ति नही आयेगी।

दो बड़ी खबरे मिली। एक तो यह कि बकू अब बड़ा हो गया है। पटनेमे जब पहली बार मैने उसे देखा था तो उस वक्त उसकी उम्र सोलह-सतरह थी। अब इक्कीस वर्षका युवक है। बल्कि इन पॉच-छह वर्षोंमे पढ-लिखकर वह आदमी बन गया है। अतः शैशवका वह मक्तज्ञ स्नेह यदि आज यौवनके आत्मसम्मान-बोधमे सामजस्य न रख पाता हो तो इसमे विस्मयकी कौन-सी बात है ?

दूसरी खबर राजलक्ष्मीकी गभीर वेदनाका पता न तो बकूको और न गुरुदेवको ही आजतक मिला है।

मेरे मनमे ये ही दो बाते बहुत देरतक घूमती रहीं।

बडे यत्नसे अंकित चपड़ेकी सील-मोहरको देखकर चिट्ठी खोली। उसके हाथकी लिखावट ज्यादा देखनेका मौका नही मिला है, पर, यह ख्याल आया कि अक्षर ऐसे तो नही हैं कि पढनेमे तकलीफ हो, लेकिन फिर भी अच्छे नही हैं। पर यह पत्र उसने बहुत सावधानीसे लिखा है। शायद उसे डर था कि मैं चिढकर फेक न दूँ। बल्कि शुरूसे आखिर तक सब कुछ आसानीसे पढ़ जा सकूँ।

आचार और आचरणमे राजलक्ष्मी उस युगकी प्राणी है। प्रणय-निवेदनकी अधिकता तो दूरकी बात है, बल्कि यह भी याद नही आता कि उसने मेरे सामने कभी कहा हो कि 'प्रेम करती हूँ।' उसने चिट्ठी लिखी है—मेरी

प्रार्थनाके अनुकूल अनुमति देकर। तो भी, न जाने क्या है, पढनेमे जाने क्यो डर लगने लगा। उसके बाल्य-कालकी याद आ गई। उस दिन गुरु-महाशयकी पाठशालामे उसका पढना लिखना बद हो गया था। बादमें शायद घरपर ही थोडा-बहुत पढ़-लिख लिया होगा। अतएव, भाषाका इन्द्रजाल, शब्दोकी झकार, पद-विन्यासकी मधुरताकी उसके पत्रमे आशा करना अन्याय है। कुछ मामूली प्रचलित बातोंमे ही मनके भाव व्यक्त करनेके अलावा वह और क्या करेगी? अनुमति देकर मामूली शुभकामनाकी दो लाईने होगी,—यही तो? पर लिफाफा खोलकर पढना शुरू करते ही कुछ देरके लिए बाहरका और कुछ भी याद न रहा। पत्र लबा नही है, लेकिन भाषा और भगी जितनी सरल और सहज समझी थी, उतनी नही है। मेरे आवेदनका उत्तर उसने इस तरह दिया है :

काशीधाम

"प्रणामके उपरान्त सेविकाका निवेदन,

"इस बार मिलाकर कुल सौ दफा तुम्हारी चिट्ठी पढी। तो भी यह समझमे नही आया कि तुम पागल हो गये हो या मै। तुमने शायद यह ख्याल किया है कि मैने तुम्हे कही पड़ा हुआ पा लिया था? परन्तु तुम कही पड़े हुए नही थे, तुम बहुत तपस्याके बाद मिले थे, बहुत आराधनाके बाद। इसीलिए, बिदा देनेके मालिक तुम नही हो। मुझे त्याग करनेका मालिकाना स्वत्वाधिकार तुम्हारे हाथोमे नही है।

"तुम्हे याद नही, फूलोके बदले वनसे करोदे तोड़, उनकी माला गूँथकर, किस शैशवमे तुम्हे वरण किया था। हाथोमे कॉटे चुभ जानेकी वजहसे खून बहने लगता था, लाल मालाका वह लाल रग तुम नही पहचान सके। बालिकाकी पूजाका अर्घ्य उस दिन तुम्हारे गलेमे था। परन्तु तुम्हारे हृदयपर रक्त-रेखासे जो लेखा अंकित कर देती थी, वह तुम्हारी नजरोमे नही पड़ी। पर जिसकी नजरोंमे ससारका कुछ भी छिपा नही रह सकता, उनके पाद-पद्मोंमे मेरा वह निवेदन पहुँच गया था।

"उसके बाद आई दुर्योगकी रात। काले मेघोने मेरे आकाशकी ज्योत्स्ना ढँक दी। किन्तु वास्तवमे वह मै हूँ या और कोई, इस जीवनमे यथार्थ रूपमे वे सब बाते हुई थी या सोते सोते स्वप्न देख रही थी,—यह सोचते ही बहुधा

मुझे डर लगता है कि मै पागल हो जाऊँगी। तब सब भूलकर जिसका ध्यान लगाकर बैठती हूँ, उसका नाम नहीं लिया जाता। किसीसे कहनेकी बात नही है। उनकी क्षमा ही मेरे जगदीश्वरकी क्षमा है। इसमे गलती नहीं है, सदेह नहीं। यहाँ मैं निर्भय हूँ।

"हाँ, कहा था कि इसके बाद मेरे बुरे दिनोंकी रात आई, दोनों आँखोंकी सारी रोशनीको कलकने बुझा दिया। पर वही क्या मनुष्यका समस्त परिचय है? उस अखण्ड ग्लानिके घने आवरणके बाहर उसका क्या और कुछ भी बाकी नहीं है?

"है। अव्याहत अपराधके बीच बीच उसे मैंने बार बार देखा है। अगर ऐसा न होता, विगत दिनोका राक्षस यदि मेरे समस्त अनागत मगलको निःशेष ग्रास कर लेता, तो तुम फिर मुझे कैसे मिलते? मेरे ही हाथोंमें लाकर फिर तुम्हे कौन सौंप जाता?

"मुझसे तुम चार-पॉच वर्ष बड़े हो, तो भी तुम्हे जो अच्छा लगता है वह मुझे शोभा नही देता। मै बगाली घरकी लडकी हूँ, जीवनके सत्ताईस वर्ष पार कर चुकनेके बाद यौवनका दावा और नहीं करती। मुझे तुम गलत मत समझना,—चाहे जितनी ही अधम क्यो न होऊँ, अगर वह बात तुम्हारे मनमे क्षणभरके लिए घुणाक्षर न्यायसे भी आये, तो इससे बढकर शर्मकी बात मेरे लिए और कोई नही है। बँकू जिन्दा रहे, वह बडा हो गया है, उसकी बहू आ गई है,—तुम्हारी शादीके बाद उन लोगोके सामने मैं किस मुँहसे निकलूँगी? यह अपमान कैसे सहूँगी?

"यदि तुम कभी बीमार पडो तो सेवा कौन करेगा,—पूँटू? और मैं तुम्हारे मकानके बाहरसे ही नौकरके मुँहसे खबर पूछकर लौट आऊँगी? इसके बाद भी जीवित रहनेके लिए कहते हो?

"शायद प्रश्न करोगे, तो क्या हमेशा ही ऐसा निःसग जीवन काटूँ? पर प्रश्न चाहे कुछ भी हो, उसका जवाब देनेकी जिम्मेदारी मेरे ऊपर नही है, तुम्हारे ऊपर है। फिर भी अगर तुम बिल्कुल ही कुछ न सोच सको,—बुद्धिका इतना क्षय हो गया हो तो मै उधार दे सकती हूँ, वह लौटानी नहीं पड़ेगी,—लेकिन देखो, ऋणको कही अस्वीकार मत करदेना!

"तुम सोचते हो कि गुरुदेवने मुझे मुक्तिका मंत्र दिया है, शास्त्रोंने पथका

सधान दिया है, सुनन्दाने धर्मकी प्रवृत्ति दी है, और तुमने दिया है सिर्फ भार,—बोझा। ऐसे ही अन्धे हो तुम लोग !

"पूछती हूँ, तुम्हे तो मैंने तेईस वर्षकी उम्रमें पा लिया था, पर इसके पहले ये सब कहाँ थे ? तुम इतना ज्यादा सोच सकते हो और यह नही सोच सकते ?

"मुझे आशा थी कि एक दिन मेरे सब पापोंका अन्त हो जायेगा, मैं निष्पाप हो जाऊँगी। यह लोभ क्यों है, जानते हो ? स्वर्गके लिए नहीं,—वह मुझे नही चाहिए। मेरी कामना है कि मरनेके बाद फिर आकर जन्म ले सकूँ। इसके मानी समझ सकते हो ?

"सोचा था कि पानीकी धारामे कीचड़ मिल गई है,—मुझे उसे निर्मल करना ही पड़ेगा। पर आज अगर उसका मूल स्रोत ही सूख जाय तो पड़ा रह जायगा मेरा जप-तप, पूजा-अर्चना, रह जायगी सुनन्दा, पड़े रहेंगे मेरे गुरुदेव।

"स्वेच्छासे मै मरना नही चाहती। पर मेरे अपमान करनेका ही तुम्हारा कूट कौशल अगर हो तो इस विचारको छोड दो। अगर तुम विष दोगे तो मैं पी लूँगी, पर उसे न ले सकूँगी। मुझे जानते हो, इसीलिए यह बता दिया कि जो सूर्य अस्त होगा उसके पुनः उदयकी अपेक्षामे बैठे रहनेका वक्त अब मेरे पास नहीं है। इति।

—राजलक्ष्मी।"

छुटकारा मिला। सुनिश्चित कठोर अनुशासनकी चरम-लिपि भेजकर उसने एक ओरसे मुझे बिल्कुल निश्चिन्त कर दिया। इस जीवनमे उस विषयमे हो गया नेके लिए अब और कुछ नही रहा। पर निःसशयपूर्वक यह तो मालूम हुआ कि क्या नहीं कर सकूँगा। पर इसके बाद मुझे क्या करना होगा, इस बारेमें राजलक्ष्मी बिलकुल चुप है। शायद उपदेशोसे भरी हुई एक चिट्ठी और किसी दिन लिखेगी, अथवा सशरीर मुझे ही तलब करेगी। लेकिन इस वक्त जो व्यवस्था हो गई है वह बहुत ही सुन्दर है। इधर बाबा-महोदय सभवतः कल सुबह ही आकर हाजिर होगे। उन्हें भरोसा दे आया हूँ कि फिक्र करनेकी जरूरत नहीं, अनुमति मिलनेमें कोई विघ्न न होगा। पर जो कुछ आ पहुँचा, वह निर्विघ्न अनुमति ही है ! रतन नाईके हाथ उसने कपडे और मौर-मुकुट नहीं भेजा, यही बहुत है।

दूसरी ओर देशके मकानमें विवाहका आयोजन निश्चय ही अग्रसर हो रहा होगा। पूँटूके आत्मीय स्वजनोमेसे कोई कोई शायद आकर हाजिर हो रहे होंगे, तथा प्राप्त-वयस्का अपराधी लड़कीको इतने दिनोंतक लाछना और भर्त्सनाके बदले अब कुछ आदर मिल रहा होगा। यह जानता हूँ कि बाबासे क्या कहूँगा। पर वह बात कैसे कहूँगा, यही समझमे नही आता। उनके निर्मम तकाजों, लज्जाहीन युक्तियों और वकालतके बारेमें मन ही मन सोच कर एक ओर हृदय जितना तिक्त हो उठा, दूसरी ओर व्यर्थ प्रत्यावर्तनकी निराशासे चिढे हुए परिवारवालोके उस अभागी लड़कीको और भी ज्यादा उत्पीडित करनेकी बात सोचते ही हृदयको उतनी ही व्यथा पहुँची। पर उपाय क्या है? बिछौनेपर लेटा हुआ बहुत राततक जागता रहा। पूँटूकी बात भूलनेमे देर नही लगी, पर गगा-माटीकी याद बराबर आने लगी। जनविरल उस क्षुद्र गॉवकी स्मृति कभी मिट नही सकती। इस जीवनकी गंगा-जमुनाकी धारा एक दिन यही आकर मिली थी, और थोड़े अरसे तक पास पास प्रवाहित हो एक दिन यही फिर अलग हो गई थी। एक साथ रहनेके वे क्षणस्थायी दिन श्रद्धासे गहरे, स्नेहसे मधुर, आनदसे उज्जवल और उनकी ही तरह नि.शब्द वेदनासे अत्यधिक स्तब्ध है। विच्छेदके दिन भी हमने प्रवंचनाकी निदासे एक दूसरेको कलक नही लगाया, नफा-नुकसानके फिजूलके वाद-विवादसे गंगामाटीके शात गृहको हम धूमाच्छन्न करके नहीं आये। वहॉके सब लोग यही जानते हैं कि फिर एक दिन हम लौट आयेंगे, फिर हँसी-खुशी शुरू होगी और फिर आरभ होगी भूस्वामिनीकी दीन-दुखि-योंकी सेवा और सत्कार। पर यह सभावना तो खत्म हो गई है, प्रभातमे विकसित मल्लिका दिनके अतमे हुक्म मानकर चुप हो गई है,—यह बात वे स्वप्नमे भी नही सोचते।

ऑखोमे नीद नही है, निद्राहीन रजनी प्रातःकालकी ओर जितनी आगे बढने लगी, उतनी ही यह इच्छा होने लगी कि यह रात खत्म ही न हो! सिर्फ यही एक चिता मानो मुझे मोहाच्छन्न करके रखे रही।

बीती हुई कहानी घूम फिर कर मनमे आ जाती है। वीरभूम जिलेकी वह तुच्छ कुटिया मनपर भूतकी तरह चढ जाती है, हमेशा घरके कामकाजमे फॅसी हुई राजलक्ष्मीके दोनों स्निग्ध हाथ ऑखोके सामने साफ नज़र आते हैं,

इस जीवनमें परितृप्तिका ऐसा आस्वादन कभी किया है, यह याद नहीं आता!

अभीतक पकड़ा ही गया हूँ, पकड नहीं पाया हूँ। पर राजलक्ष्मीकी सबसे बडी कमजोरी कहाँ है, आज पकड ली। वह जानती है कि मैं नीरोग नही हूँ, किसी भी दिन बीमार पड सकता हूँ। तब न जाने कहाँकी एक पूँटू मुझे घेर कर बैठी है, राजलक्ष्मीका कोई प्रभुत्व ही नहीं है,—इतनी बडी दुर्घटनाको वह अपने मनमे स्थान नही दे सकती। संसारकी सब चीजोंसे वह अपनेको वंचित कर सकती है पर यह वस्तु असम्भव है,—यह उसके लिए असाध्य है। मौत तुच्छ है, इसके निकट एक ओर रह गये गुरुदेव और एक ओर रह गये उसके जप-तप और व्रत-उपवास। चिट्ठीमे उसने मुझे झूठा डर नहीं दिखाया है।

सुबहके वक्त शायद सो गया था। रतनकी पुकार सुनकर जब उठा तो काफी वक्त हो गया था। उसने कहा, " न जाने कौन एक बूढे महाशय घोडा-गाडी करके अभी आये हैं। "

वे बाबा हैं। पर गाड़ी किराये करके? संदेह हुआ।

रतनने कहा, " साथमे एक सतरह-अठारह सालकी लडकी है। "

वह पूँटू है। यह बेशर्म आदमी उसे कलकत्तेके मकानतक घसीट लाया है! सुबहका प्रकाश तिक्ततासे म्लान हो गया। कहा, उन्हे इस कमरेमें लाकर बैठाओ रतन, मै मुँह-हाथ धोकर आता हूँ। यह कहकर मै नीचेके स्नान-घरमें चला गया।

घंटे-भर बाद लौटते ही बाबाने मेरी सादर अभ्यर्थना की, मानों मैं ही उनका अतिथि हूँ, " आओ बेटा, आओ। तबियत अच्छी है न? "

मैने प्रणाम किया। बाबाने पुकार मचाई, " पूँटू, कहाँ गई? "

पूँटू खिडकीके किनारे खड़ी होकर रास्ता देख रही थी, उसने पास आकर मुझे नमस्कार किया।

बाबाने कहा, " इसकी बुआ शादीके पहले एक बार देखना चाहती थी। फूफा तो हाकिम हैं, पाँच सौ रुपया महीना पाते हैं। डायमड हारबरमे तबादला हुआ है,—घर-गृहस्थी छोडकर बाहर जानेकी फुर्सत बुआको नहीं है। इसलिए साथ लेता आया। सोचा कि दूसरेके हाथोंमे सौंपनेके पहले उन्हें एकबार दिखा लाऊँ। इसकी दादी-माँने आशीर्वाद देकर कहा, "पूँटू, ऐसा ही भाग्य तेरा भी हो। "

मेरे कुछ कहनेके पहले ही खुद बोले, " मैं इतनी जल्दी नहीं छोड़ूँगा भैया। हाकिम हों चाहें और कुछ हों, हैं तो रिश्तेदार,—खड़े होकर काम पूरा कराना होगा,—तब उन्हें छुट्टी मिलेगी। जानते तो हो बेटा, कि शुभ कार्यमें बहुत विघ्न होते हैं,—शास्त्रमे कहा ही तो है, 'श्रेयांसि बहु विघ्नानि।' ऐसे एक आदमीके खड़े रहनेपर किसीकी चूँ तक करनेकी मजाल नहीं होगी। हमारे गॉवके लोगोंका तो विश्वास है नहीं,—वे सब कुछ कर सकते हैं। पर वे तो हाकिम हैं, उनकी तो राशि ही न्यारी है।"

पूँटूके फूफा हाकिम हैं। समाचार अवान्तर नहीं है,—मतलबका है।

नया हुक्का खरीदकर रतन सयत्न चिलम सजाकर दे गया। थोड़ी देरतक गौरसे देखनेके बाद बाबाने कहा, " ऐसा लगता है कि इस आदमीको कहीं देखा है ? "

रतनने फौरन ही कहा, " जी हॉ, देखा क्यों नहीं है। देशके मकानमे जब बाबू बीमार थे—"

" ओ, तभी तो कहा कि पहचाना हुआ चेहरा है। "

" जी हॉ। " कहकर रतन चला गया।

बाबाका मुँह अत्यत गम्भीर हो गया। धूर्त्त आदमी ठहरे, शायद उन्हें सारी बाते याद आ गई। चुपचाप चिलमके दम लगाते हुए बोले, " आनेके लिए दिन देखकर आया था। बहुत अच्छा दिन है। मेरी इच्छा है कि आशीर्वादका काम ऐसे ही खत्म कर जाऊँ। नूतन बाजारमें तो सभी चीजें बिकती हैं। नौकरको एक बार भेज नहीं सकते ? क्या कहते हो ? "

जब कुछ भी कहनेको न मिला तो किसी तरह सिर्फ कह दिया, " नहीं। "

" नही ? नही क्यो ? बारह बजेतक दिन बहुत अच्छा है।—पचाग है ? "

मैंने कहा, " पचागकी जरूरत नही। मै विवाह नही कर सकता। "

बाबाने हुक्केको दीवारसे लगाकर रख दिया। चेहरा देखकर मैं ताड़ गया कि वह युद्धके लिए तैयार हो रहे हैं। गलेको बहुत शात और गम्भीर बनाकर कहा, " सारा आयोजन एक तरहसे पूरा हो गया है। लडकीके ब्याहकी बात है, हॅसी-मजाकका मामला तो है नहीं।—वचन दे आनेपर अब ना करनेपर कैसे काम चलेगा ? "

पूँटू पीठ किये खिड़कीके बाहर देख रही है और दरवाजेकी आड़में

रतन कान लगाये खड़ा है, यह अच्छी तरह मालूम हो गया।

मैंने कहा, " वचन देकर तो नहीं आया था, यह आप भी जानते हैं और मैं भी। कहा था कि एक व्यक्तिकी अनुमति मिल जानेपर राजी हो सकता हूँ। "

" अनुमति नहीं मिली ? "

" नहीं। "

बाबा एक क्षण ठहरकर बोले, " पूँटूके पिता कहते हैं कि सब मिलाकर वह एक हजार रुपये देंगे। ज्यादा जोर लगानेपर और भी सौ-दोसौ दे सकते हैं। क्या कहते हो ? "

रतनने कमरेमें घुसकर कहा, " तबाकू क्या एक बार और बदल दूँ ? "

" बदल दो। तुम्हारा नाम क्या है जी ? "

" रतन। "

" रतन ? बड़ा सुन्दर नाम है, कहाँ रहते हो ? "

" काशीमें। "

" काशी ? देवी आजकल शायद काशीमें रहती हैं ? वहाँ क्या करती हैं ? "

रतनने मुँह ऊपर उठाकर कहा " उस समाचारसे आपको मतलब ? "

बाबा जरा हँसकर बोले, "नाराज क्यों होते हो बापू, क्रोध करनेकी तो कोई बात नहीं। गाँवकी लड़की है न, इसीलिए खबर जाननेकी इच्छा होती है। शायद उसके पास भी कभी जा पड़ना पड़े।—खैर, वह अच्छी तरह तो है ? "

रतन बिना कोई जवाब दिये ही चला गया, और कोई दो मिनिट बाद ही चिलमको फूँकता हुआ लौट आया और हुक्का हाथमें थमाकर चला जा रहा था कि बाबा बड़े जोरसे कई दम लगाकर ही उठ खड़े हुए। बोले, " ठहरो तो भई, जरा पाखाना दिखा दो। सुबह ही निकल पड़ा हूँ न ! कहते कहते वे रतनके आगे ही बहुत तेजीके साथ कमरेसे बाहर निकल गये। "

पूँटूने मुँह फिराकर देखा और कहा, " बाबाकी बातोंपर आप एतबार मत कीजिएगा। पिताजीके पास हजार रुपये कहाँ हैं जो देंगे ? किसी तरह दूसरोंके गहने मँगनी माँगकर जीजीकी शादी की थी,—अब वे लोग जीजीको नहीं बुलाते। कहते हैं कि हम लड़केकी दूसरी शादी करेंगे। "

इस लड़कीने इतनी बातें मुझसे पहले नहीं कही थीं। कुछ चकित होकर

पूछा, " तुम्हारे पिताजी वाकई हजार रुपये नहीं दे सकते ? "

पूँटूने सिर हिलाकर कहा, " कभी नही। पिताजीको रेलमें सिर्फ चालीस रुपये मिलते हैं। स्कूलकी फीसकी वजहसे ही मेरे छोटे भाईकी पढ़ाई बन्द हो गई। वह कितना रोता है!" कहते कहते उसकी दोनो ऑखे छलछला आईं।

प्रश्न किया, " सिर्फ रुपयेके कारण ही तुम्हारी शादी नहीं हो रही है ? "

पूँटूने कहा, " हॉ, इसी वजहसे। हमारे गॉवके अमूल्य बाबूके साथ पिताजीने सबन्ध पक्का किया था। उनकी लड़कियॉ भी मुझसे बहुत बडी हैं। इसपर मॉ पानीमे डूब मरनेको गई तो शादी रुक गई। इस बार शायद पिताजी किसीकी कुछ न सुनेगे, वहीं मेरी शादी कर देंगे। "

पूछा, " पूँटू, मै तुम्हे पसन्द हूँ ? "

पूँटूने लज्जासे मुँह नीचा कर जरा सिर हिला दिया।

" पर मै भी तो तुमसे चौदह-पन्द्रह साल बडा हूँ ? "

पूँटूने इस प्रश्नका कोई जवाब नही दिया।

पूछा, " तुम्हारा क्या और कहीं कोई सम्बन्ध नहीं हुआ था ? "

पूँटूने खुश होकर मुँह ऊपर उठाते हुए कहा, " हुआ तो था। आप अपने गॉवके कालिदास बाबूको जानते हैं ? उनके छोटे लड़केने बी० ए० पास किया है। उम्र भी मुझसे थोडी-ही ज्यादा है। उसका नाम शशधर है। "

" वह तुम्हे पसन्द है ? "

पूँटू हठात् हँस पड़ी।

मैने कहा, " पर शशधर अगर तुम्हे पसन्द न करे ? "

पूँटूने कहा, " पसन्द क्यो न करेगा ? हमारे मकानके सामने होकर बार बार आता-जाता रहता है। रॉगा दीदी हँसीमे कहती थी कि वह सिर्फ मेरे लिए ही चक्कर काटता है। "

" तो यह शादी क्यो नही हुई ? "

पूँटूका चेहरा मलीन हो गया। कहा, " उसके पिता हजार रुपये नक़द और हजार रुपयेके गहने मॉगते थे। ऊपरसे शादीमे भी पॉच सौ रुपये खर्च न हो जाते ? इतना तो ज़मीदारके घरकी लडकीके लिए ही हो सकता है। सच है न ? वे बडे आदमी हैं, उनके पास बहुत रुपये हैं। मेरी मॉ उनके यहॉ गई और बहुत हाथ-पैर जोड़े, पर उन्होने एक नहीं सुनी। "

" शशधरने कुछ नहीं कहा ? "

" नहीं, कुछ नही। पर वह भी तो बहुत बड़ा नहीं है,—उसके माँ-बाप जिन्दा हैं न ? "

" यह सही है। शशधरकी शादी हो गई ? "

पूँटूने व्यग्र होकर कहा, " नहीं, अभी नहीं हुई। सुना है कि जल्दी ही होगी। "

" अच्छा, वहाँ तुम्हारी शादी हो जाने पर अगर वे लोग तुमसे प्रेम न करें ? "

" मुझसे ? प्रेम क्यों नही करेंगे ? मैं रसोई बनाना, सिलाई करना और गृहस्थीके सारे काम जानती हूँ। मैं अकेली ही उनका सारा काम कर दूँगी। "

इससे ज्यादा बंगाली घरानेकी लड़की और क्या जानती है ? शारीरिक परिश्रम द्वारा ही वह सब कमियोंकी पूर्ति करना चाहती है। पूछा, " उन लोगोंका सब काम अवश्य करोगी न ? "

" हाँ; निश्चय करूँगी। "

" तो तुम अपनी माँसे जाकर कह दो कि श्रीकान्त दादा ढाई हजार रुपये भेज देंगे। "

" आप देंगे ? तो फिर वायदा कीजिए कि शादीके दिन आयेंगे ? "

" हाँ, अच्छा आऊँगा। "

दरवाजेकी देहलीपर बाबाकी आवाज़ सुनाई दी। लाँगसे मुँह पोंछते पोंछते प्रवेश किया और कहा, " तुम्हारा पायखाना तो बहुत अच्छा है भैया ! सो जानेकी इच्छा होती है। गया कहाँ रतन, और एक चिलम तबाकू सजा दे न। "

४

इस संसारका सबसे बड़ा सत्य यह है कि मनुष्यको सदुपदेश देनेसे कोई फायदा नही होता,—सत् परामर्शपर कोई जरा भी ध्यान नही देता। लेकिन चूँकि यह सत्य है, इसलिए दैवात् इसका व्यतिक्रम भी होता है। इसकी एक घटना सुनाता हूँ :

बाबाने दाँत निकालकर आशीर्वाद दिया और अत्यंत प्रसन्नताके साथ

प्रस्थान किया। पूँटूने भी बहुत सारी पद-धूलि लेकर आदेशका पालन किया। पर उनके चले जानेके बाद मेरे परितापकी सीमा न रही। मन विद्रोही होकर सिर्फ तिरस्कार करने लगा कि ये कौन होते हैं जिन्हे विदेशमे नौकरी कर अनेक कष्टोंसे सचित किया हुआ धन दे दोगे ? सनकीपनमे कुछ कह दिया तो उसका क्या यह मतलब है कि दाता कर्ण बनना ही पड़ेगा ? न जाने कहाँकी इस लड़कीने बिना माँगे ही ट्रेनमे पेडे और दही खिलाकर मुझे तो अच्छा फदेमे फाँसा ! एक फन्देको काटते हुए एक दूसरे फन्देमें फँस गया। बचनेका उपाय सोचते ही दिमाग गर्म हो गया, और उस निरीह लड़कीके प्रति क्रोध और विरक्तिकी सीमा न रही। और यह शैतान बाबा ! मनाने लगा कि वह अब घर न पहुँच सके, रास्तेमे ही सर्दी-गर्मीसे मर जाय। पर यह आशा भित्तिहीन है। अच्छी तरह जानता हूँ कि वह आदमी किसी तरह भी नही मरेगा और जब उसे मेरे मकानका पता एक बार चल गया है तो फिर आयेगा, तथा चाहे जैसे भी हो, रुपये वसूल करेगा। हो सकता है कि इस बार उन्ही हाकिम फूफा महोदयको भी साथ लावे। एक ही उपाय है—यः पलायति स जीवति। टिकिट खरीदने गया, पर जहाजमे स्थानाभाव,—सब टिकिट पहलेसे ही बिक गये है। अतः दूसरी मेलका इन्त-जार करना होगा और उसमे अभी छह-सात दिनकी देर है।

एक उपाय और है, कि मकान बदल दिया जाय, बाबाको खोजनेपर भी न मिले। पर इतनी अच्छी जगह इतनी जल्दी कहाँ मिलेगी ? किन्तु शिका-रीके हाथों प्राण बचानेके सम्बन्धमे हालत ऐसी नाजुक हो गई है कि अच्छे-बुरेका प्रश्न ही गौण है,—यथारण्य तथा गृहम्।

डर था कि मेरा गुप्त उद्वेग कही रतनकी नजरोंमे न आ जाय। पर मुश्किल तो यह है कि वह यहाँसे टलना ही नही चाहता। काशीकी अपेक्षा उसे कलकत्ता ज्यादा पसन्द आ गया है। पूछा, "चिट्ठीका जवाब लेकर क्या तुम कल ही जाना चाहते हो, रतन ?"

रतनने फौरन ही जवाब दिया, "जी नहीं। आज दोपहरको मैंने माँको एक पोस्ट कार्ड डाल दिया है कि लौटनेमे मुझे चार-पाँच दिनकी देर होगी। मृत-सोसायटी (=अजायबघर) और जीवित सोसायटी (=चिड़ियाखाना) बिना देखे नहीं जाऊँगा। अब फिर कब आना हो, इसका तो कोई ठिकाना नहीं।"

मैने कहा, " पर वे तो उद्विग्न हो सकती हैं ? "

" जी नहीं। लिख दिया है कि गाडीमें लगे हुए धक्कोकी थकान अभीतक दूर नहीं हुई है। "

" पर चिट्ठीका जवाब—"

" जी, दीजिए न। कल ही रजिस्ट्रीसे भेज दूँगा। उस मकानमे माँकी चिट्ठी खोलनेका साहस यम भी नहीं करेगा। "

चुपचाप बैठा रहा। नाई-बेटेके सामने एक भी तरकीब नहीं चली। सब प्रस्तावोको रद कर दिया।

जाते वक्त बाबा रुपयोकी बात प्रचार कर गये थे। परन्तु कोई इस बातका भ्रम न कर ले कि उन्होने हृदयकी उदारता या अधिक सरलताके कारण ऐसा किया हो। वे तो ऐसा करके गवाह बना गये हैं !

रतनने ठीक इसी बातका अंदाज लगाया। कहा, " बाबू, अगर आप नाराज़ न हो तो एक बात कहूँ। "

" क्या बात रतन ? "

रतनने कुछ सकोचके साथ कहा, " ढाई हजार रुपये तो कम रकम नही है बाबू, वे कौन होते हैं जिनकी शादीके लिए आपने इतना रुपया खामख्वाह देनेको कहा है ? इसके अलावा वह बूढा बाबा हो या और कोई, लेकिन अच्छा आदमी नही है। उसे देने कहना अच्छा नहीं हुआ बाबू। "

उसका मन्तव्य सुनकर जैसे अनिर्वचनीय आनंद मिला वैसे ही मनको जोर भी मिला और यही मै चाहता था।

तथापि, अपनी आवाजमे किंचित् सदेहका आभास देकर बोला, " कहना ठीक नहीं हुआ,—क्यो रतन ? "

रतन बोला, " हॉ बाबू, निश्चय ठीक नही हुआ। रुपये भी तो कम नहीं हैं, और फिर किस लिए,—कहिए तो ? "

" ठीक तो है ! " मैने कहा, " तो नहीं देगे। "

आश्चर्यसे थोडी देरतक देखनेके बाद रतनने कहा, " वह छोडेगा क्यो ? "

मैंने कहा, " नही छोडेगा तो क्या करेगा ? लिखकर तो दिया ही नहीं है। और फिर, यही कौन जानता है कि उस वक्त मैं यहीं रहूँगा या बर्मा चला जाऊँगा ? "

रतन क्षणभर चुप रहकर हँसा। बोला, "बाबू, आप बूढेको पहचान नहीं सके। उस आदमीको शर्म और मान-अपमान छूतक नही गया है। रो-धोकर, भीख मॉगकर या डरा-धमकाकर वह रुपये किसी न किसी तरह लेगा ही। अगर यहाँ आपसे मुलाकात न होगी तो लडकीको साथ लेकर वह काशी जायगा और मॉसे रुपया वसूल करके छोडेगा। मॉको बहुत शर्म आयेगी बाबू, यह तरीका ठीक नही है।"

यह सुनकर निस्तब्ध हो बैठा रहा। रतन मुझसे बहुत ज्यादा बुद्धिमान् है। अर्थहीन आकस्मिक करुणाकी हठका जुर्माना मुझे देना ही पडेगा, कोई निस्तार नहीं।

रतनने गॉवके बाबाको पहचाननेमे गलती नही की, यह तब समझमे आया जब कि चौथे दिन वे फिर लौटकर आये। आशा थी कि इस बार हाकिम फूफा भी उनके साथ अवश्य आयेंगे,—पर हाजिर हुए अकेले ही। बोले, "बेटा, दस गॉवोमे धन्य धन्य हो रहा है। सब कहते है कि कलियुगमे ऐसा कभी नही सुना। गरीब ब्राह्मणकी कन्याका ऐसा उद्धार कभी किसीने नहीं देखा। आशीर्वाद देता हूँ कि तुम चिरजीवी होओ।"

पूछा, "शादी कब है?"

"इसी महीनेकी पच्चीस तारीख ठीक हुई है, बीचमे दस दिन बाकी हैं। कल देखना पक्का हो जायगा, आशीर्वाद,—करीब तीन बजेके बाद मुहूर्त नही है, इसके भीतर ही सब शुभ कार्य पूरे कर लेने होगे। पर बिना तुम्हारे गये सब बद रहेगा, कुछ भी नही हो सकेगा। यह लो अपनी पूँटूकी चिट्ठी, उसने अपने हाथसे लिखकर भेजी है। पर यह भी कहे देता हूँ बेटा, कि जिस रत्नको तुमने अपनी इच्छासे खो दिया, उसका जोड नही है।" यह कहकर उन्होंने एक पीले रगका मुडा हुआ कागजका टुकडा मेरे हाथोमे दे दिया।

कुतूहलवश चिट्ठी पढनेकी कोशिश की। बाबाने अचानक दीर्घ निःश्वास छोडकर कहा, "कालिदास रुपयेवाला है तो क्या हुआ, बिलकुल नीच है,—चमार। उसके लिए ऑखकी शर्म नामकी कोई चीज ही नहीं। कल ही रुपया-पैसा सब नकद चुकाना होगा,—गहने वगैरह अपने सुनारसे बनवायेगा। वह किसीका विश्वास नहीं करता, यहॉ तक कि मेरा भी नही।"

उस आदमीमें बड़ी खराबी है। बाबा तकका विश्वास नहीं करता!—आश्चर्य!

पूँटूने अपने हाथसे पत्र लिखा है। एक-दो पेज नही, बल्कि ठसाठस भरे हुए चार पेज। चारों पेजोंमे कातरताके साथ विनती है। ट्रेनमे रॉगा दीदीने कहा था कि आजकलके नाटक-नॉविल भी हार मान ले। केवल आजकलके ही क्यों, सर्वकालके नाटक-नॉविल हार मान लेगे,—यह अस्वीकार नहीं करूँगा। इस बातका विश्वास हो गया कि इस लिखनेके प्रभावसे ही नदरानीका पति चौदह दिनकी छुट्टी लेकर सातवे दिन ही आकर हाजिर हो गया था।

अतएव, दूसरे दिन सुबह मै भी चल दिया और बाबाने इसकी जॉच खुद अपनी ऑखोंसे कर ली कि मैने रुपये सचमुच ही अपने साथ ले लिये हैं, तोड़-मरोडकर प्रतारणा तो नही कर रहा हूँ। बोले,—

"रस्ता चलना देख कर, रुपया लेना ठोक कर।"

"अरे भाई, हम देवता तो नहीं हैं, आदमी हैं,—भूल होते क्या देर लगती है?"

ठीक तो है! रतन कल रातको ही काशी चला गया है। उसके हाथों चिट्ठीका जवाब भेज दिया है। लिख दिया है—तथास्तु। पता इस वजहसे न दे सका कि कोई ठीक नही है। इस त्रुटिके लिए अपने गुणसे क्षमा करनेकी भी प्रार्थना कर दी है।

यथासमय गॉव पहुँचा, मकानके सब आदमियोंकी दुश्चिन्ता दूर हुई। जो आदर और सम्मान मिला, उसे बतानेके लिए कोशमे शब्द नही हैं।

सबध पक्का करने और आशीर्वाद देनेके उपलक्ष्यमे कालिदास बाबूसे परिचय हुआ। वह जैसे सूखे मिजाजके हैं वैसे ही दभी भी। यह सबको स्मरण करानेके अलावा कि वे बहुत रुपयेवाले हैं, ऐसा नहीं मालूम पडा कि ससारमें और कोई दूसरा कर्तव्य उनका है। सारा धन खुद उन्हींका कमाया हुआ है। बडे घमडसे कहा, "जनाब, किस्मतको मैं नही मानता, जो कुछ करूँगा वह सब अपने बाहुबलसे। देवी-देवताओंके अनुग्रहकी भिक्षा भी मैं नहीं मॉगता। मैं कहता हूँ कि देवताकी दुहाई कापुरुष देते हैं।"

बड़े आदमी और छोटे-मोटे ताल्लुकेदार होनेके कारण गाँवके प्राय: सब आदमी उपस्थित थे, और शायद अधिकाशके वे महाजन थे और बहुत कड़े

महाजन,—अतएव सबने ही एक स्वरसे उनकी बातें मान लीं। तर्करत्न महाशयने एक सस्कृतका श्लोक सुनाया, और आसपाससे उसके संबधमें दो-एक पुरानी कहानियोंका भी सूत्रपात हुआ।

उन्होंने एक अपरिचित और साधारण व्यक्ति समझकर मेरी ओर असम्मान-पूर्ण दृष्टिसे देखा। उस वक्त रुपयोंके दुःखसे मेरा हृदय जल रहा था। वह दृष्टि मुझे सहन नहीं हुई। मैं एकाएक बोल उठा, " यह तो नहीं जानता कि किस परिमाणमे आपमे बाहुबल है, पर यह मैं स्वीकार करता हूँ, रुपये कमानेका जहाँतक सवाल है, आपका बाहुबल प्रबल है।

" इसके मानी ? "

मैने कहा, " मानी खुद मै। न तो वरको पहचानता हूँ और न कन्याको, फिर भी रुपये मेरे खर्च हो रहे है और आपके सन्दूकमे घुस रहे हैं। इसे तकदीर नहीं कहते तो और क्या कहते हैं? आपने अभी कहा कि आप देवी-देवताओंका अनुग्रह नही लेते, लेकिन आपके लडकेके हाथकी अँगूठीसे लेकर बहूके गलेका हारतक मेरे अनुग्रहके दानसे बनेगा। हो सकता है कि बहू-भातकी दावततकका इतजाम मुझे ही करना पडे। "

कमरेमे वज्रपात होनेपर भी शायद सब लोग इतने व्याकुल और विचलित न होते। बाबाने न जाने क्या कहनेकी कोशिश की, पर कुछ भी सुस्पष्ट या सुव्यक्त न हो सका। क्रोधमे कालिदास बाबूने भीषण मूर्ति धारण कर कहा, " आप रुपये दे रहे हैं, यह मुझे कैसे मालूम हो ? और दे ही क्यों रहे हैं ? "

कहा, " क्यों दे रहा हूँ यह आप नहीं समझ सकते, आपको समझाना भी नही चाहता। पर सारा गॉव सुन चुका है कि मै रुपये दे रहा हूँ, सिर्फ आपने ही नही सुना ? लडकीकी मॉने आपके सब घरवालोंके हाथ-पैर जोडे, पर आप अपने बी० ए० पास लड़केका मूल्य ढाई हजारसे एक पैसा भी कम करनेको राजी नही हुए। लडकीका बाप चालीस रुपये महीनेकी नौकरी करता है, चालीस पैसे देनेकी भी उसमें शक्ति नहीं,—तब आपने यह नहीं सोचा कि आपके लडकेको खरीदनेके लिए अचानक उसके पास इतना रुपया कहॉसे आ गया ? कुछ भी हो, लड़के बेचनेके रुपये बहुत लोग लेते हैं, आप भी ले तो इसमे बुराई नही। पर इसके बाद गॉववालोंको मकानमें बुलाकर रुपयोंका घमड और न कीजिएगा। और यह भी याद रखिएगा कि आपने

एक बाहरके आदमीके भिक्षा-दानसे लड़केकी शादी की है । ”

उद्वेग और डरसे सबका मुँह काला हो गया । शायद सबने यह सोचा कि अब कुछ भयकर होगा और कालिदास बाबू फाटक बद करवाकर लाठियोंसे पीटे बिना किसीको भी घरसे वापस न जाने देंगे । पर, थोड़ी देरतक चुप बैठे रहनेके बाद मुँह ऊपर उठाकर उन्होंने कहा, “ मै रुपये नहीं लूँगा । ”

मैंने कहा, “ इसके मानी यह कि आप लड़केकी शादी यहाँ नहीं करेंगे। ”

कालिदास बाबूने सिर हिलाकर कहा,“ नहीं, यह नहीं । मैंने वचन दिया है कि शादी करूँगा,—इसमे जरा भी फर्क न होगा। कालिदास मुखर्जी कही हुई बातके खिलाफ काम नही करता । आपका नाम क्या है ? ”

बाबाने व्यग्र कठसे मेरा परिचय दिया । कालिदास बाबूने पहचानकर कहा, “ ओ :—ठीक है । इनके बापके साथ एक बार मेरा बहुत जबरदस्त फौजदारी मामला चला था । ”

बाबाने कहा, “ जी हाँ, आप कुछ भी नही भूलते । ये उन्हींके लड़के हैं और रिश्तेमे मेरे नाती होते है । ”

कालिदास बाबूने प्रसन्न कठसे कहा, “ ठीक है । मेरा बड़ा लड़का अगर जिन्दा रहता तो इतना ही बड़ा होता । शशधरकी शादीमे आना, बेटा । हमारी ओरसे उस दिन तुम्हारा निमन्त्रण रहा । ”

शशधर उपस्थित था । उसने एक बार कृतज्ञ नेत्रोंसे मेरी ओर देखा और फौरन ही मुँह नीचा कर लिया ।

मैंने उठकर प्रणाम किया । कहा, “ चाहे जहाँ भी रहूँ लेकिन कमसे कम बहू-भातके दिन आकर नववधूके हाथका अन्न खा जाऊँगा । पर मैंने बहुत-सी अप्रिय बाते कहीं हैं, आप मुझे क्षमा करेंगे । ”

कालिदास बाबू बोले,“ यह सच है कि अप्रिय बाते कहीं हैं, पर मैने क्षमा भी कर दिया है । अभी जानेका काम नहीं श्रीकात, शुभ कार्यके उपलक्षमे मैंने थोडा-सा खानेका भी आयोजन किया है । तुम्हे खाकर जाना होगा । ”

“ जैसा कहेंगे वही होगा,” कहकर फिर बैठ गया ।

उस दिन पात्रको आशीर्वाद देनेसे लेकर उपस्थित अभ्यागतोंके खाने-पीने तकके सारे काम निर्विघ्न सुसपन्न हो गये । इस अध्यायके प्रारम्भमें सदुपदेशके बारेमें जिस नियमका उल्लेख किया था, उसके व्यतिक्रमका

एक उदाहरण पूँटूका विवाह है। संसारमे सिर्फ यही एक उदाहरण अपनी ऑखोंसे देखा है। कारण, निःसम्पर्कीय, अपरिचित, अभागी लड़कीके बापका कान ऐंठते ही जहाँ रुपये वसूल होते हों, वहाँ वैष्णव बनकर हाथ जोडनेपर बाघके ग्राससे निस्तार नही मिलता। निष्ठुर, निर्दय इत्यादि गाली गलौज करके समाज और तकदीरको धिक्कारनेपर किंचित् क्षोभ मिट सकता है, पर प्रतिकार नहीं होता, क्यों कि दूल्हेके बापके हाथमे प्रतीकार नही है, वह तो लड़कीके बापके हाथोंमे ही है।

५

गौहरकी खोजमे आनेपर नवीनसे मुलाकात हुई। वह मुझे देखकर खुश हुआ। लेकिन उसका मिजाज बहुत रूखा था। बोला, "जाकर वैष्णवियोंके आश्रममे देखिए, कलसे तो घर ही नही आये है।"

"यह क्या माजरा है नवीन! यह वैष्णवी फिर कहॉसे आई?"

"एक वैष्णवी नहीं, पूराका पूरा एक दल आ जुटा है!"

"वे कहॉ रहती हैं?"

"यहीं तो मुरारीपुरके अखाडेमे।" कहकर नवीनने एक निश्वास छोडा, फिर कहा, "हाय बाबू, अब न तो वे राम हैं और न वह अयोध्या। बूढे मथुरादास बाबाजीके मरते ही उनकी जगह एक छोकरा वैरागी आ गया है, उसके कोई चार गंडा सेवा-दासी हैं। द्वारिकादास वैरागीसे हमारे बाबूकी बडी मित्रता है,—वही तो प्रायः रहते हैं।"

चकित होकर पूछा, "पर तुम्हारे बाबू तो मुसलमान हैं। वैष्णव-वैरागी अपने आश्रममे उन्हे रहने कैसे देगे?"

नवीनने नाराज होकर कहा, "इन सब बाउल सन्यासियोंको क्या धर्मा-धर्मका ज्ञान है? ये जाति-जन्म कुछ भी नही मानते। जो भी कोई उन्हे मिलता है, वे उसे ही अपने दलमे खीच लेते हैं, सोच-विचार कुछ नहीं करते।"

पूछा, "पर उस बार जब मै तुम्हारे यहॉ छह-सात दिन था, तब तो गौहरने उनके बारेमे कुछ नही कहा?"

नवीन बोला, "कहते तो कमललताके गुण-अवगुण जाहिर नहीं हो जाते! सिर्फ उन कई दिनों ही बाबू अखाड़ेके पास नहीं गये। पर जैसे

ही आप गये वैसे ही कापी और कलम लिये बाबू अखाडेमे जा धमके।"

प्रश्न करनेपर मालूम हुआ कि द्वारिका बाउल गाना गाने और दोहे बनानेमे सिद्धहस्त है। गौहर इस प्रलोभनमे फॅस गया। उसको कविता सुनाता है, उससे अपनी गलतियोका सशोधन करा लेता है और कमललता एक युवती वैष्णवी है,—इसी आश्रममें रहती है। वह देखनेमे अच्छी है, गाना अच्छा गाती है। उसकी बाते सुनकर लोग मुग्ध हो जाते है। कभी कभी वैष्णवोकी सेवाके लिए गौहर रुपये-पैसे भी देता है। अखाडेकी पुरानी दीवार जीर्ण होकर गिर गई थी, गौहरने अपने खर्चेसे उसकी मरम्मत करा दी है। यह काम उसने उस सप्रदायके लोगोके अगोचर चुपचाप ही किया है।"

मुझे याद आया कि बचपनमे इस अखाडेके बारेमे बाते सुनी थीं। पुराने जमानेमे महाप्रभुके एक भक्त शिष्यने इस अखाडेकी प्रतिष्ठा की थी। तबसे शिष्य-परम्पराके अनुसार वैष्णव इसमे वास करते आ रहे हैं। अत्यत कुतूहल पैदा हुआ। कहा, " नवीन, मुझे एक बार अखाडा दिखा सकोगे?"

नवीनने सिर हिलाकर इन्कार किया। बोला, " मुझे बहुत काम है और आप तो इसी देशके आदमी है, खुद ही न खोज सकेगे? आध कोससे ज्यादा नही, इस सामनेवाले रास्तेसे उत्तरकी ओर सीधे जानेपर ही आपको दिखाई दे जायगा, किसीसे पूछना नही पडेगा। सामनेवाले तालाबके नीचे वृन्दावन-लीला हो रही होगी। दूरसे ही कानोमे आवाज पहुँच जायगी,—सोचना नही पडेगा।"

मेरे जानेका प्रस्ताव नवीनने शुरूसे ही पसन्द नही किया। मैने पूछा, "वहाँ क्या होता है,—कीर्तन?"

नवीनने कहा, "हॉ, दिन-रात खजडी और करतालको चैन नहीं मिलती।"

मैने हॅसकर कहा, "यह तो अच्छा ही है नवीन। जाऊॅ, गौहरको पकड लाऊॅ।"

इस बार नवीन भी हॅसा, बोला, "हॉ, जाइए। पर देखिएगा कि वहॉ कमललताका कीर्तन सुनकर कहीं आप खुद ही न अटक जाये।"

" देखूॅ, क्या होता है।" कहकर हॅसता हुआ दोपहरके वक्त कमललता वैष्णवीके अखाडेमे जानेके लिए चल दिया।

अखाडेका पता जब चला तब शायद शाम हो चुकी थी। दूरसे कीर्तन या खंजड़ी-करतालकी ध्वनि तो सुनाई नहीं दी, पर सुप्राचीन बकुलका वृक्ष फौरन

ही नजर आ गया, जिसके नीचे टूटी हुई बेदी है। पर एक भी व्यक्ति दिखाई नही दिया। एक क्षीण पथकी रेखा टेढी-मेढी होकर परकोटेके किनारे किनारे नदीकी ओर चली गई है। अनुमान किया कि उधर शायद किसीसे कुछ खबर मिले, अतएव उधर ही पैर बढाये। गलती नहीं की। शीर्ण-सकीर्ण शैवालसे ढकी हुई नदीके किनारे एक परिष्कृत और गोबरसे पुती हुई कुछ उच्च भूमिपर गौहर और दूसरे एक व्यक्ति बैठे हैं।—अन्दाज लगाया कि ये ही वैरागी द्वारिकादास हैं,—अखाडेके वर्तमान अधिकारी। नदीका किनारा होनेकी वजहसे वहाँ उस वक्त तक सध्याका अन्धकार घना नही हुआ था, बाबाजीको बहुत अच्छी तरहसे देख सका। देखनेमे वह आदमी भद्र और ऊँची जातिका ही जान पडा। वर्ण श्याम, दुबला-पतला होनेके कारण कुछ लम्बा मालूम होता है, माथेके बाल जटाकी तरह सामनेकी ओर बँधे हुए हैं, मूँछ-दाढी ज्यादा नहीं है,—थोडी है। आँखोमे और मुँहपर एक स्वाभाविक हँसीका भाव है। उम्रका ठीक अदाज नही लगा सका, तो भी पैंतीस-छत्तीससे ज्यादा नही जान पडी। दोनोमेसे किसीने भी मेरे आगमन और उपस्थितिपर लक्ष्य नही किया, दोनोंही नदीके उस पार पश्चिम दिगन्तमे ऑखे गडाये स्तब्ध बने रहे। वहाँ नाना रग और नाना आकारके मेघोके टुकडोके बीच तृतीयाका क्षीण पाडुर चन्द्रमा चमक रहा है, मानो उसके कपालके बीचमे अत्युज्वल सान्ध्य-तारा उदित हो रहा है। बहुत नीचे दिखाई देते है दूर ग्रामोके नीले पेड-पौधे,—मानो इनका कही अन्त नही, सीमा नही। काले, सफेद, पीले,—नाना रगोके टूटे-फूटे बादलोपर उस वक्त भी अस्तगत सूर्यकी शेप दीप्ति खेल रही थी,—ठीक वैसे ही जैसे कि किसी दुष्ट लडकेके हाथमे रगकी तूलिका पड जानेसे तसवीरका पूरा श्राद्ध हो रहा हो। यह आनन्द क्षणभर ही रहा,—क्योकि इतनेमे ही चित्रकारने आकर कान मल दिये और हाथसे तूलिका छीन ली।

उस स्वल्पतोया नदीका थोड़ा-सा हिस्सा शायद गॉववालोंने साफ कर लिया है। सामनेके उस स्वच्छ काले और थोड़े पानीपर छोटी छोटी रेखाओंमे चन्द्रमा और सान्ध्य तारेका प्रकाश पास पास ही पडकर झिलमिला रहा है,—मानो सुनार कसौटीपर सोना घिसकर दाम जॉच रहा हो। पास ही कहीं वनमे सैकडो वन-मल्लिकायें खिली हैं और मानों उनकी गन्धसे

सारी वायु भारी हो उठी है। निकटके ही किसी पेडके असख्य चिडियोके घोंमलोंसे उनके बच्चोंकी एक-सी चीची विचित्र मधुरतासे कानोंमे अविराम आ रही है। यह सब ठीक है, और तद्गत-चित्त जो दो आदमी जड-भरतकी तरह बैठे हुए हैं, इसमे सन्देह नही, वे भी कवि हैं। पर शामके वक्त इस जगलमे मैं यह सब देखने नहीं आया हूँ। नवीनने कहा था कि वैष्णवियोका एक दलका दल यहाँ है और उनमे कमललता वैष्णवी सबसे श्रेष्ठ है। वे कहाँ हैं ?

पुकारा, " गौहर ! "

ध्यान भगकर गौहर हतबुद्धिकी तरह मेरी ओर ताकता रह गया।

बाबाजीने उसे जरा हिलाकर कहा, "गुसाई, ये ही तुम्हारे श्रीकान्त हैं न ? "

गौहरने तेजीसे उठकर मुझे बडे जोरसे बाहुपाशमे आबद्ध कर लिया, इस तरह कि जैसे उसका वह आवेग रुकना ही नहीं चाहता हो। किसी तरह मै अपनेको मुक्त कर बैठ गया। बोला, " गुसाईजीने मुझे एकाएक कैसे पहचान लिया ? "

बाबाजीने हाथ हिलाया, " यह नहीं होगा गुसाई, इसमेसे आदरवाचक ' जी ' बाद देना होगा। तब ही तो रस आयेगा। "

मैने कहा, " अच्छा, बाद दे दिया। लेकिन एकाएक मुझे कैसे पहचाना ? "

बाबाजीने कहा, " एकाएक कैसे पहचानूँगा ? तुम तो वृदावनके हमारे पहचाने हुए हो गुसाई, और तुम्हारी दोनो ऑखे तो रसकी समुद्र हैं जो देखते ही ऑंखोमे भर जाती हैं। जिस दिन कमललता आई थी, उसकी दोनों ऑखे भी ऐसी ही थी,—उसे देखते ही पहचान गया और बोल उठा, ' कमललता, कमललता, इतने दिनो कहाँ थी ? ' कमल आकर जो अपनी हो गई तो उसका आदि-अन्त, विरह-विच्छेद नही रहा। यही तो साधना है गुसाई, इसीको तो कहता हूँ रसकी दीक्षा। "

मैने कहा, " कमललता देखने ही तो आया हूँ गुसाई, वह कहाँ है ? "

बाबाजी बहुत खुश हुए। बोले, " उसे देखोगे ? पर गुसाई, तुम उससे अपरिचित नहीं हो, वृन्दावनमे उसे अनेक बार देखा है। शायद भूल गये हो पर देखते ही पहचान जाओगे कि वह कमललता है। गुसाई, उसे एक बार पुकारो न ! " कहकर बाबाजीने गौहरको पुकारनेका इशारा किया। इनके निकट सब 'गुसाई' हैं। बोले, " कहो कि श्रीकात तुम्हे देखने आया है।"

गौहरके चले जानेके बाद पूछा, "गुसाईं, मेरे बारेमे सारी बाते शायद गौहरने तुम्हें बताई हैं?"

बाबाजीने सिर हिलाकर कहा, "हाँ, सब बताया है। जब उससे पूछा कि 'गुसाईं, तुम छह-सात दिन क्यों नहीं आये?' तो उसने कहा कि 'श्रीकात आये थे।' यह भी उसने कहा था कि तुम फिर जल्दी ही आओगे। यह भी मालूम है कि तुम बर्मा जानेवाले हो।"

सुनकर सन्तोषकी साँस छोडकर मन ही मन मैने कहा, रक्षा हुई। डर था कि वास्तवमे किसी अलौकिक आध्यात्मिक शक्ति-बलके कारण तो ये मुझे देखते ही नहीं पहचान गये हैं। कुछ भी हो, यह मानना ही पडेगा कि मेरे बारेमें इस क्षेत्रमे उनका अदाज गलत नहीं है।

बाबाजी अच्छे ही जान पडे। कमसे कम असाधु-प्रकृतिके नही मालूम हुए। बहुत सरल। यह बाबाजीने सरलतासे स्वीकार कर लिया कि न जाने क्यो गौहरने मेरी सब बाते,—अर्थात् जितना वह जानता है, इन लोगोसे कह दी हैं। कविता और वैष्णव रस-चर्चामे वे कुछ कुछ सनकी-से,—कुछ विभ्रान्तसे मालूम हुए।

थोडी देर बाद ही गौहर-गुसाईंके साथ कमललता आकर हाजिर हुई। उम्र तीससे ज्यादा नही होगी,—श्यामवर्ण, इकहरा बदन, हाथमे कुछ चूडियाँ है शायद पीतलकी,—सोनेकी भी हो सकती है। बाल छोटे छोटे नहीं है, गिरह देकर पीटपर झूल रहे हैं। गलेमे तुलसीकी माला और हाथकी थैलीके भीतर भी तुलसीकी जपमाला है। छापे-आपेका बहुत ज्यादा आडम्बर नही है, अथवा सुबहके वक्त तो था, पर इस वक्त कुछ मिट-मिटा गया है। उसके मुँहकी ओर देखकर मै अत्यत आश्चर्यान्वित हो गया। सविस्मय यह ख्याल होने लगा कि इन आँखो और चेहरेका भाव तो जैसे परिचित है, और चलनेका ढग भी जैसे पहले कहीं देखा है।

वैष्णवीने बात शुरू की। फौरन ही समझ गया कि वह नीचेके स्तरकी प्राणी नही है। उसने किसी तरहकी भूमिका नही बाँधी। मेरी ओर सीधे देखकर कहा, "कहो गुसाईं, पहचान सकते हो?"

मैने कहा, "नही। लेकिन ऐसा लगता है कि जैसे कही देखा है।"

वैष्णवीने कहा, "वृन्दावनमे देखा था। बड़े गुसाईजीसे नहीं सुना?"

मैने कहा, " सो सुना है । पर मैं तो जन्म-भर कभी वृंदावन नहीं गया । "

वैष्णवीने कहा, " गये कैसे नहीं ? बहुत पुरानी बात है, इसलिए अचानक याद नहीं आ रही है । वहाँ गाय चराते, फल तोडकर लाते, वन-फूलोकी माला गूँथकर हमारे गलेमे पहनाते,—सब भूल गये ? " यह कहकर वह होठोंको दबाकर धीरे धीरे हँसने लगी ।

मैने यह तो समझा कि मजाक कर रही है पर यह ठीक नहीं कर सका कि मेरा या बडे गुसाईंजीका, बोली, " रात हो रही है, अब जगलमे क्यो बैठे हो ? भीतर चलो । "

मैने कहा, " जंगलके रास्ते हमे बहुत दूर जाना होगा। कल फिर आयेंगे ।"

वैष्णवीने पूछा, " यहॉका पता किसने बताया ? नवीनने ? "

" हॉ, उसीने । "

" कमलल्ताकी बात नही बताई ? "

" हॉं, बताई थी । "

" इस बारेमे तुम्हें सावधान नहीं किया कि वैष्णवीका जाल तोडकर अचानक बाहर नहीं जाया जा सकता ? "

हँसते हुए बोला, " हॉ, यह भी कहा है । "

वैष्णवी हँस पडी । बोली, " नवीन होशियार मॉझी है । उसकी बाते न मानकर अच्छा नहीं किया । "

" क्यो भला ? "

वैष्णवीने इसका जवाब नही दिया । गौहरको दिखाते हुए कहा, "गुसाईंने कहा था कि नौकरी करनेके लिए विदेश जा रहे हो । पर तुम्हारे तो कोई नहीं है, फिर नौकरी क्यो करोगे ? "

" तब क्या करूँ ? "

" हम जो करती हैं । गोविंदजीका प्रसाद तो कोई छीन नहीं सकता । "

" यह जानता हूँ । पर वैरागी-गीरी मेरे लिए नई नही है । "

वैष्णवीने हँसकर कहा, " समझती हूँ । शायद प्रकृति सहन नहीं करती ?"

" नहीं, ज्यादा दिन सहन नहीं करती । "

वैष्णवी होट दबाकर हँसी । बोली, " तुम्हारा काम अच्छा है । भीतर आओ, उन लोगोसे तुम्हारा परिचय करा दूँ । यहाँ कमलोंका वन है । "

" सुना है। पर अँधेरेमे लौटेंगे कैसे ? "

वैष्णवी फिर हँसी, बोली, " अँधेरेमे हम लौटने ही क्यों देंगीं ? अंधकार दूर तो होगा ही। तब जाना। आओ।"

" चलो।"

वैष्णवीने कहा, " गौर ! गौर !" *

" गौर गौर " कहते हुए मैने भी अनुसरण किया।

हालॉ कि धर्माचरणमे मेरी रुचि और विश्वास नहीं है, किंतु जिनका विश्वास है उनको बाधा नही पहुँचाता। मनमे बिना सशयके जानता हूँ कि मै इस गुरुतर विषयका ओर-छोर कभी न खोज पाऊँगा। तथापि, धार्मिकोकी मैं भक्ति करता हूँ। विख्यात स्वामीजी और सुख्यात साधूजी,—किसीको भी छोटा नहीं कहता, दोनोंकी ही वाणी मेरे कानोंमे समान मधुकी वर्षा करती है।

विशेषज्ञोंके मुँहसे सुना है कि बगालकी आध्यात्मिक साधनाका निगूढ रहस्य वैष्णव सम्प्रदायमे ही सुगुप्त है, और यही बगालकी खालिस अपनी चीज है। इसके पहले सन्यासी और साधुओकी थोडी-बहुत सगत की है, फल-लाभका विवरण जाहिर करनेकी इच्छा नहीं है। पर इस दफा अगर दैवात् खालिस चीज नसीब होती हो तो सकल्प किया कि इस मौकेको व्यर्थ नही जाने दूँगा। पूँटूके बहू-भातके निमत्रणमे मुझे जाना ही होगा। कमसे कम कलकत्तेके निःसग मैसके बदले ये कई दिन अगर इस वैष्णवी-अखाडेके आस-पास कहीं काटने पडे तो और चाहे जो हो, जीवनके सचयमे विशेष नुकसान न होगा।

अदर आकर देखा कि कमललताका कहना झूठ नही था। वहॉ वाकई कमलोका ही वन है, पर दलित-विदलित। मत्त हाथियोसे साक्षात् तो नहीं हुआ, पर उनके बहुतसे पदचिह्न विद्यमान् थे। नाना उम्र और तरह तरहके चेहरोंकी वैष्णवियाँ नाना कामोंमे लगी हुई हैं: कोई लड्डू बना रही हैं, कोई मैदा गूँद रही हैं, कोई फल-मूल तराश रही हैं,—यह सब ठाकुरजीके रातके भोगकी तैयारियाँ हैं। एक अपेक्षाकृत छोटी उम्रकी वैष्णवी ध्यानमग्न हो फूलोकी माला गूँथ रही है, और उसीके निकट एक बैठी हुई नाना रगके छपे हुए छोटे छोटे कपड़ोंके टुकडे सावधानीसे कुचित करके ढगसे रख रही है। सम्भवतः

* 'गौर 'का मतलब यहॉ गौरांग-महाप्रभु या चैतन्यदेवसे है।

श्रीगोविंदजी कल स्नानके बाद उन्हे पहनेंगे। कोई भी खाली नहीं है, उनका काममें आग्रह और एकाग्रता देखकर आश्चर्य होता है। सबने मेरी ओर ताका, पर निमेष-मात्रके लिए। कौतूहलका अवसर नहीं है। सबके होठ हिल रहे हैं, शायद मन ही मन जप हो रहा है। इधर समय खत्म हो गया है। एक एक करके दिये जलने शुरू हो गये हैं। कमललताने कहा, " चलो, भगवानको नमस्कार कर आयें। किंतु, अच्छा, यह तो बताओ कि तुम्हे क्या कहकर पुकारूँ? ' नये गुसाई ' कह कर पुकारूँ तो कैसा ? "

मैने कहा, " क्यों नहीं पुकारती? तुम्हारे यहाँ जब गौहर तक ' गौहर गुसाई' हो गया है, तब मैं तो कमसे कम ब्राह्मणका लड़का हूँ। पर मेरे अपने नामने क्या बुराई की है? उसीके साथ 'गुसाई' जोड़ दो न। "

कमललताने होंठ दबाकर हँसते हुए कहा, " यह नहीं होगा ठाकुर, नही होगा। वह नाम मैं नहीं ले सकती,—अपराध होता है। आओ। "

" आता हूँ, पर अपराध किसका? "

" किसका,—यह सुनकर तुम क्या करोगे; तुम तो खूब हो! "

जो वैष्णवी माला गूँथ रही थी वह हँस पड़ी और उसने मुँह नीचा कर लिया। ठाकुरजीके कमरेमें काले पत्थर और पीतलकी राधा-कृष्णकी युगल मूर्तियाँ है। एक नहीं, बहुतसी। यहाँ भी पाँच-छह वैष्णवियाँ काममे लगी हुई हैं। आरतीका वक्त हो रहा है, साँस लेनेकी भी फुर्सत नही है।

भक्तिपूर्वक यथारीति प्रणाम कर बाहर आ गया। ठाकुरजीके कमरेके अलावा और सब कमरे मिट्टीके हैं, पर सँभाल-सफाईकी सीमा नहीं है। बिना आसनके कही भी बैठते सकोच नहीं होता, तथापि कमललताने सामनेके बरामदेमें एक ओर आसन बिछा दिया। कहा, " बैठो, तुम्हारे रहनेका कमरा जरा ठीक कर आऊँ। "

" मुझे क्या आज यहीं रहना पड़ेगा? "

" क्यों, डर क्या है? मेरे रहते तुम्हें तकलीफ नहीं होगी। "

मैंने कहा, " तकलीफके लिए नहीं कहता, पर गौहर जो नाराज होगा। "

वैष्णवीने कहा, " यह भार मेरे ऊपर है। मेरे रखनेपर तुम्हारा मित्र जरा भी नाराज़ न होगा। " कहकर वह हँसती हुई चली गई।

मैं अकेला बैठा हुआ अन्यान्य वैष्णवियोंका काम देखने लगा। सचमुच

ही उनके पास नष्ट करनेको जरा भी वक्त नहीं है। मेरी ओर किसीने घूमकर भी नहीं देखा। करीब दस मिनट बाद जब कमललता लौटकर आई तब काम खत्म कर सब उठ गई थी। पूछा, " तुम इस मठकी अधिकारिणी हो क्या ? "

कमललताने जीभ काटकर कहा, " हम सब गोविंदजीकी दासी हैं,—कोई छोटा-बडा नहीं है। एक एकपर एक एकका भार है। मेरे ऊपर प्रभुने यह भार दिया है। " कहकर उसने मंदिरके उद्देश्यसे हाथ जोडकर सिरसे लगा लिये। कहा, " अब कभी ऐसी बात जबानपर मत लाना। "

मैंने कहा, " ऐसा ही होगा। अच्छा, बडे गुसाई और गौहर गुसाई क्यो नही दिखाई दे रहे है ? "

वैष्णवीने कहा, " वे अभी आते ही होंगे। नदीमे स्नान करने गये है। "

" इतनी रातको ? और इस नदीमे ? "

वैष्णवीने कहा, " हाँ। "

" गौहर भी ? "

" हॉ, गौहर गुसाई भी। "

" पर मुझे ही क्यो नही स्नान कराया ? "

वैष्णवीने हॅसकर कहा, " हम किसीको स्नान नही कराती। वे अपने आप करते हैं। भगवानकी दया होनेपर एक दिन तुम भी करोगे और उस दिन मना करनेपर भी नही मानोगे। "

मैंने कहा, " गौहर भाग्यवान् है। पर मेरे पास तो रुपया नहीं है। मै गरीब आदमी हूँ, इस कारण शायद मेरे प्रति परमात्माकी दया न हो। "

वैष्णवी शायद इशारा समझ गई, और नाराज होकर कुछ कहनेवाली ही थी पर कहा नही। फिर बोली, " गौहर गुसाई कुछ भी हो पर तुम भी गरीब नहीं हो। जो आदमी ढेर रुपया देकर दूसरेकी लडकीका उद्धार करता है, भगवान् उसे गरीब नही मानते। तुम्हारे ऊपर भी दया होना आश्चर्य नही है। "

मैंने कहा, " तब तो वह डरकी बात है। तो भी, किस्मतमे जो लिखा है वह होगा ही, टाला नहीं जा सकता,—पर पूछता हूँ कि कन्याके उद्धारकी खबर तुम्हे कहॉसे मिली ? "

वैष्णवीने कहा, " हमे चार जगहसे भीख माँगनी पडती है, इसलिए हमें सब खबरे मिल जाती हैं । "

" पर यह खबर शायद अभी तक नहीं मिली है कि मुझे रुपये देकर लडकीका उद्धार नहीं करना पड़ा ? "

वैष्णवी कुछ विस्मित हुई । बोली, " नहीं, यह खबर नहीं मिली । पर हुआ क्या, शादी टूट गई ? "

" शादी नही टूटी, लेकिन कालिदास बाबू टूट गये हैं,—खुद दूल्हाके बाप ही। लड़केको बेचकर दूसरेकी भिक्षाके दानसे मिले हुए दहेजको हाथ पसारकर लेनेमे उन्हे शर्म आई । इससे मैं भी बच गया । " कहकर मैंने सारा मामला सक्षेपमे बता दिया। वैष्णवीने सविस्मय कहा, " कहते क्या हो जी, यह तो बिल्कुल अनहोनी बात हुई ! "

" ईश्वरकी दया । सिर्फ गौहर गुसाई ही क्या अंधेरेमें गंदी नदीके पानीमे गोते लगायेगा, ससारमें और कही भी कुछ अनहोनी बात नहीं होगी ? उनकी लीला ही फिर किस तरह जाहिर होगी, बोलो ? " कहकर जैसे ही मैंने वैष्णवीका मुँह देखा वैसे ही समझ गया कि यह ठीक नही हुआ,—सीमा लाँघ गया हूँ । वैष्णवीने किन्तु प्रतिवाद नही किया, मदिरकी ओर हाथ उठाकर उसने सिर्फ निःशब्द नमस्कार कर लिया । मानो अपराधको क्षमा करनेकी भिक्षा माँगी ।

एक वैष्णवी एक बडे थालमे मैदाकी पूरियाँ लिये हुए सामनेसे ठाकुरजीके कमरेकी ओर निकल गई । देखकर कहा, " आज तुम्हारे यहाँ समारोह है । शायद कोई खास त्यौहार है,—नही ? "

वैष्णवीने कहा, " नही, आज कोई त्यौहार नही है । यह हमारे यहाँका रोजका किस्सा है । ठाकुरजीकी दयासे कभी कमी नहीं होती । "

" खुशीकी बात है । पर आयोजन शायद रातको ही ज्यादा होता है ? "

वैष्णवी बोली, "सो भी नहीं । सेवामे सुबह-शामका कोई सवाल ही नहीं है । यदि दया करके दो दिन रह जाओ तो खुद ही सब देख लोगे । हम सब दासीकी दासी हैं, उनकी सेवा करनेके अलावा ससारमे हमारा और कोई काम तो है ही नही । " कहकर उसने मदिरकी ओर हाथ जोड़कर फिर एक बार नमस्कार किया ।

पूछा, " दिनभर तुम लोगोंको क्या करना होता है ? "

वैष्णवीने कहा, " आकर जो देखा, वही । "

" आकर देखा मसाला कूटना, रसोईके लिए तरकारी बनाना, दूध दुहना, माला गूँथना, कपड़े रगना,—ऐसे ही और बहुतसे काम । तुम सब दिनभर क्या सिर्फ यही किया करती हो ? "

वैष्णवीने कहा, " हॉ, दिनभर सिर्फ यही करती हैं । "

" पर यह सब तो केवल घर-गृहस्थीके काम हैं, सभी औरते करती हैं । तुम भजन-साधना कब करती हो ? "

वैष्णवी बोली, " यही हमारी भजन-साधना है । "

" यह रसोई बनाना, पानी भरना, कूटना-फटकना, माला गूँथना, कपडे रगना,—इसीको 'साधना' कहते हैं ? "

वैष्णवीने कहा, "हॉ, इसीको साधना कहते हैं । दास-दासियोंकी इससे बढ कर साधना हमे और कहॉ मिलेगी गुसाई ?" कहते कहते उसकी दोनों सजल ऑखे मानो अनिर्वचनीय मधुरतासे परिपूर्ण हो उठी । एकाएक मुझे ख्याल हुआ कि इस अपरिचिता वैष्णवीका मुँह जितना सुंदर है, उतना सुंदर मुँह मैंने ससारमे कभी नही देखा । कहा, " कमललता, तुम्हारा मकान कहॉ है ?"

वैष्णवीने ऑचलसे आंखे पोंछकर हँसते हुए कहा, " पेडके नीचे । "

" पर पेड़की छाया तो हमेशा न थी ? "

वैष्णवीने कहा, " तब था ईट और काठके बने हुए किसी मकानका एक छोटा-सा कमरा । पर कहानी सुनानेका वक्त तो अब नहीं है गुसाईं । मेरे साथ आओ, तो तुम्हारा नया कमरा दिखा दूँ । "

कमरा बढ़िया है । उसने बॉसकी खूँटीपर टॅगा हुआ एक साफ रेशमका कपड़ा दिखाते हुए कहा, " यह पहनकर ठाकुरजीके कमरेमे आना । देखो, देर न करना । " कहकर वह तेजीसे चली गई ।

एक ओर एक छोटेसे तख्तपर बिछौना बिछा है । निकट ही एक चौकीपर कुछ किताबे और एक थालीमे बकुल-फूल रखे हैं । अभी अभी कोई प्रदीप जलाकर शायद धूप जला गया है, कमरा तब भी उसकी गंध और धुएँसे भरा हुआ था,—बहुत अच्छा लगा । दिनभरकी क्लान्ति तो थी ही,—ठाकुर-देवताओंसे हमेशा दूर दूर रहता आया हूँ ; उधर आकर्षण नही था,—अतः

कपड़े उतारकर धपसे बिछौनेपर लेट गया। न जाने यह किसका कमरा है, एक रातके लिए वैष्णवी न जाने किसकी शय्या मुझे उधार दे गई है,—अथवा शायद यह उसीकी है,—इन सब विचारोंसे मेरा मन स्वभावत: ही बहुत सकोच अनुभव करता है। पर आज कुछ भी ख्याल न हुआ, मानों न जाने कबके परिचित अपने ही आदमियोंके पास आ पहुँचा हूँ। शायद कुछ तंद्रा आ गई थी कि इतनेमे ही जैसे किसीने दरवाजेके बाहरसे आवाज दी, "नये गुसाई, मंदिर नही जाओगे? वे तुम्हें बुला जो रहे हैं।"

चटपट उठ बैठा। मॅजीरेके साथ साथ कीर्तनके गानेकी आवाज भी कानोंमे पहुँची। बहुतसे आदमियोंका समवेत कोलाहल ही नहीं था, गेय वस्तु जितनी मधुर थी उतनी ही स्पष्ट थी। स्त्रीका कण्ठ था,—बिना ऑखोसे देखे ही निस्सन्देह अनुमान किया कि कमललता है। नवीनका विश्वास है कि इस मीठे स्वरने ही उसके मालिकको फॉस लिया है। सोचा कि यह असम्भव नहीं है और बहुत असंगत भी नहीं है।

मंदिरमे घुसकर एक ओर चुपचाप बैठ गया, किसीने फिरकर नही देखा, सबकी दृष्टि राधाकृष्णकी युगल-मूर्तिपर लगी थी। बीचमें खड़ी हुई कमल-लता कीर्तन कर रही है,—

मदनगोपाल जय जय यशोदाके लालकी,
यशोदाके लाल जय जय, जय नंदलालकी।
नंदलाल जय जय गिरिधारीलालकी,
गिरिधारीलाल जय जय गोविंद-गोपालकी॥

इन थोडेसे सहज और साधारण शब्दोंके आलोड़नसे भक्तोंका गम्भीर वक्षःस्थल मथित होकर कौन-सा अमृत तरगित हो उठता है, यह मेरे लिए उपलब्ध करना कठिन है। पर देखा कि उपस्थित व्यक्तियोंमेसे किसीकी भी आँखें शुष्क नही हैं। गायिकाकी दोनों ऑखोंको प्लावित कर झर झर अश्रु बह रहे हैं और भावोंके गुरु भारसे बीच बीचमे उसका कण्ठ-स्वर जैसे टूट जाता है। मैं इन सब रसोंका रसिक नहीं हूँ, लेकिन मेरे मनके भीतर भी एकाएक न जाने कैसा होने लगा। द्वारिकादास बाबाजी ऑखें मूँदे एक दीवारका सहारा लिये बैठे थे। यह पता नहीं चला कि वे सचेत हैं या अचेत। और सिर्फ थोड़ी देर पहलेकी स्निग्ध हास्य-परिहास-चचल कमललता ही नहीं,

बल्कि साधारण गृह-कर्ममे नियुक्ता जो सब वैष्णवियाँ अभी तक साधारण, तुच्छ और कुरूप लगी थीं, वे भी मानो इस धूपके धुएँसे आच्छन्न गृहके अनुज्ज्वल दीपके प्रकाशमें क्षणभरके लिए मेरी नज़रोंमे अत्यन्त सुन्दर हो उठीं। मुझे भी मानों ऐसा लगा कि पत्थरकी यह निकटवर्ती मूर्ति यथार्थमें ऑखें मलकर देख रही है और कान लगाकर कीर्तनका समस्त माधुर्य उपभोग कर रही है।

भावोकी इस विह्वल-मुग्धतासे मैं बहुत डरता हूँ, व्यस्त होकर बाहर चला आया,—किसीने लक्ष्य भी नहीं किया। देखता हूँ कि प्रागणके एक कोनेमे गौहर बैठा है और कहीके प्रकाशकी एक रेखा आकर उसके शरीरपर पड़ रही है। मेरे पैरोंकी आवाजसे उसका ध्यान भग नही हुआ, पर उस एकात समाहित मुँहकी तरफ मै भी न हिल सका, वहीं स्तब्ध हो खडा रहा। ऐसा लगा कि सिर्फ मुझको ही अकेला छोड़कर इस जगहके सब व्यक्ति और किसी दूसरे लोकमे चले गये हैं,—वहाँका पथ मै नही पहचानता। कमरेमे जा, रोशनी बुझाकर लेट गया। यह अच्छी तरहसे जानता हूँ कि ज्ञान, विद्या और बुद्धिमे मै इन सबसे बड़ा हूँ, तथापि न जाने किसकी व्यथासे अंदर ही अंदर मन रोने लगा और वैसे ही अनजान कारणसे ऑखोंके कोनोसे बडी बडी बूँदोंमे पानी गिरने लगा।

पता नहीं कि कितनी देरसे सो रहा था। कानमे भनक पड़ी, "अरे नये गुसाई?"

जगकर उठ बैठा, "कौन?"

"मै हूँ तुम्हारी शामकी बन्धु,—इतना सोते हो?"

अँधेरे कमरेमे चौखटके पास कमललता वैष्णवी खडी थी। बोला, "जागनेसे क्या फायदा होता? सोनेमे समयका कुछ सदुपयोग तो हुआ।"

"यह मालूम है। पर ठाकुरका प्रसाद नहीं लोगे?"

"लूँगा।"

"तो फिर, सो क्यो रहे हो?"

"जानता हूँ कि कोई दिक्कत नहीं होगी, प्रसाद तो मिलेगा ही। मेरी शामकी बन्धु रातको भी परित्याग नहीं करेगी।"

वैष्णवीने सहास्य कहा, "यह अधिकार वैष्णवोंका है, तुम लोगोंका नहीं।"

"आशा मिलनेपर वैष्णव होते क्या देर लगती है? तुमने गौहर तकको

गुसाईं बना डाला, तो मैं ही क्या इतनी इतनी अवहेलनाका पात्र हूँ ? आज्ञा होनेपर वैष्णवोंका दासानुदास होनेको भी राजी हूँ।"

कमललताका कण्ठस्वर कुछ गम्भीर हुआ। कहा, "वैष्णवोंकी हँसी नहीं उड़ानी चाहिए गुसाईं, अपराध होता है। गौहर गुसाईंको भी तुमने गलत समझा है। उनके अपने आदमी उन्हें काफिर कहते हैं, पर नहीं जानते कि वे पक्के मुसलमान हैं, पिता-पितामहके धर्म-विश्वासको उन्होंने नहीं त्यागा है।"

"पर उसका भाव देखनेपर तो यह मालूम नहीं होता।"

वैष्णवीने कहा, "यही तो आश्चर्य है। पर अब देरी मत करो, आओ।" फिर कुछ सोचकर कहा, "या प्रसाद ही तुम्हें यहीं दे जाऊँ,—क्या कहते हो ?"

"आपत्ति नहीं। पर गौहर कहाँ है ? वह हो तो दोनोंको एक साथ ही दो न।"

"उसके साथ बैठकर खाओगे ?"

"हमेशा ही तो खाता हूँ। बचपनमें उसकी माँने मुझको बहुत खिलाया है, और उस वक्त तुम्हारे प्रसादकी अपेक्षा वह कम मीठा नहीं होता था। इसके अलावा गौहर भक्त है, गौहर कवि है,—कविकी जातिकी खोज नहीं की जाती।"

उस अन्धकारमें भी ऐसा लगा कि वैष्णवीने एक साँसको दबा लिया। फिर कहा, "गौहर गुसाईं नहीं हैं। वह कब चले गये, हमें पता नहीं।"

मैंने कहा, "मैंने देखा था कि गौहर आँगनमें बैठा है। उसे क्या तुम भीतर नहीं जाने देती ?"

वैष्णवीने कहा नहीं, "नहीं।"

"गौहरको आज मैंने देखा था। कमललता, मेरे मज़ाकसे तुम नाराज़ हो गईं, किन्तु तुम भी अपने देवताके साथ कम हँसी नहीं कर रही हो। यह बात नहीं कि अपराध सिर्फ एक तरफसे ही होता हो।"

वैष्णवीने इस प्रश्नका कोई जवाब नहीं दिया। वह चुपचाप बाहर चली गई। थोड़ी देर बाद ही उसने एक दूसरी वैष्णवीके हाथों रोशनी और आसन तथा खुद प्रसादका पात्र लेकर प्रवेश किया। कहा, "नये गुसाईं, अतिथि-सेवामें त्रुटि हो सकती है, पर यहाँका सब कुछ ठाकुरजीका प्रसाद है।"

मैंने हँसकर कहा, "ओ संध्याकी बंधु, यह कोई डरकी बात नहीं, वैष्णव

न होते हुए भी तुम्हारे नये गुसाईमें रस-बोध है, आतिथ्यकी त्रुटिके लिए वह रसभंग नहीं करेगा। जो है रख दो,—लौटकर देखोगी कि प्रसादका एक कण भी बाकी नहीं है। "

" ठाकुरजीका प्रसाद ऐसे ही तो खाया जाता है, " यह कह और सिर नीचा कर कमललताने सारी खाद्य सामग्री एक एक कर सिलसिलेवार सजा दी।

दूसरे दिन बहुत सबेरे ही नींद टूट गई। भारी नगाड़ेकी आवाज़के साथ मंगल आरती शुरू हो गई है। प्रभातीके सुरमें कीर्तनका पद कानमें पड़ा :

" कान्ह गले बनमाला विराजे, राधा गले मोती साजैं।
अरुण चरण दोउ नूपुर-शोभित, चख लख खंजन लाजैं। "

इसके बाद दिनभर ठाकुरकी सेवा होती रही। पूजा-पाठ, कीर्तन, नहलाना, खाना-खिलाना, बदन पोंछना, चंदन लगाना, माला पहनाना,—इसमें जरा भी विराम और विच्छेद नहीं पड़ा। सब व्यस्त हैं, सब नियुक्त हैं। ऐसा लगा कि ये पत्थरके देवता ही यह अष्टप्रहरव्यापी अनन्त सेवा सह सकते हैं, और कोई होता तो ऐसे जबरदस्त उपद्रवके मारे कभीका क्षीण होकर नष्ट हो जाता।

कल वैष्णवीसे पूछा था कि ' तुम भजन कब करती हो ? ' उसने जवाबमें कहा था, 'यही तो साधना और भजन है। ' सविस्मय प्रश्न किया था, ' यह रसोई बनाना, फूल चुनना, माला गूँथना, दूध ओंटाना—क्या इसीको साधना कहती हो ? ' उसने उसी वक्त सिर हिलाकर जवाब देते हुए कहा था, ' हाँ, हम इसीको साधना कहती हैं,—हमारी और कोई साधना-भजन नहीं है। '

आज पूरे दिनका हाल देखकर समझ गया कि उसकी बातका एक एक अक्षर सच है। कहीं भी अतिरंजन या अत्युक्ति नहीं। दोपहरको जरा मौका पाकर बोला, "मै जानता हूँ कमललता, कि तुम और सब जैसी नहीं हो। सच तो कहो, भगवानकी प्रतीक यह पत्थरकी मूर्ति—"

वैष्णवीने हाथ उठाकर मुझे रोक दिया और कहा, " प्रतीक क्या जी,—वे तो साक्षात् भगवान् हैं !—ऐसी बात कभी ज़बानपर भी न लाना नये गुसाई—" मेरी बातोंसे उसे जैसे बहुत शर्म आई, न जाने मैं भी क्यों एक तरहसे झेंप गया, फिर भी आहिस्ता आहिस्ता बोला, "मैं तो नहीं जानता, इसी-

लिए पूछा था कि क्या वाकई तुम सब यह सोचती हो कि इस पत्थरकी मूर्तिमें ही भगवानकी शक्ति और चेतना है, उसका—"

मेरी यह बात भी पूरी न हो सकी। वह बोल उठी, "सोचने जायँगी ही क्यों जी, यह तो हमारे लिए प्रत्यक्ष है। तुम लोग सस्कारोंके मोह नहीं तोड़ सके हो इसीलिए यह सोचते हो कि रक्त-मासके शरीरको छोड़कर और कहीं चैतन्यके रहनेके लिए जगह नहीं है। पर यह क्यों ? और यह भी कहती हूँ कि शक्ति और चैतन्यका तत्त्व क्या तुम लोग ही सब हजम कर चुके हो, जो यह कहोगे कि पत्थरमें उसके लिए जगह नहीं है ? होती है जी, होती है, भगवानको कहीं भी रहनेमे रुकावट नहीं होती, नहीं तो बताओ उन्हें भगवान् ही क्यों कहेंगे ?"

तर्ककी दृष्टिसे ये बातें स्पष्ट भी नहीं और पूर्ण भी नहीं हैं। पर यह और कुछ तो है नही, यह तो उसका जीवन्त विश्वास है। उसके इस जोर और अकपट उक्तिके सामने मैं एकाएक न जाने कैसा सिटपिटा-सा गया, बहस करने—प्रतिवाद करनेका साहस ही नही हुआ, इच्छा भी नहीं हुई। बल्कि सोचा, सच तो है, पत्थर हो या और कुछ लेकिन इतने परिपूर्ण विश्वाससे वह अपनेको अगर पूर्णतः समर्पित न कर पाती तो वर्षके बाद वर्ष, और दिनके बाद दिन यह अविच्छिन्न सेवा करते रहनेकी शक्ति उसे मिलती कैसे ? इस तरह सीधे, निश्चिन्त और निर्भय होकर खड़े होनेका अवलम्बन कहाँसे मिलता ? ये शिशु तो हैं नहीं, बच्चोंके खेलके इस मिथ्या अभिनयसे दुविधा-ग्रस्त मन दो दिनमे ही थककर गिर न जाता ? पर ऐसा तो नहीं हुआ, बल्कि भक्ति और प्रेमकी अखण्ड एकाग्रतामे इनके आत्मनिवेदनका आनन्दोत्सव बढता ही जा रहा है। इस जीवनमे पानेकी दृष्टिसे यह क्या सब कुछ शून्य या सब कुछ भूल है,—सब अपनेको ठगना है ?

वैष्णवीने कहा, "क्यों गुसाई, बात क्यो नहीं करते ?"

मैंने कहा, "सोच रहा हूँ।"

"किसका सोच कर रहे हो ?"

"तुम्हारे बारेमे ही सोच रहा हूँ।"

"यह तो मेरा बडा सौभाग्य है।" कुछ देर बाद कहा, "फिर भी यहाँ रहना नहीं चाहते, न जाने कहाँ किस बर्मा देशमें नौकरी करने जाना

चाहते हो। नौकरी क्यों करोगे ?"

मैंने कहा, "मेरे पास मठकी जमीन-जायदाद तो है नहीं,—अन्ध भक्तोंका दल भी नहीं,—खाऊँगा क्या ?"

"भगवान् देंगे।"

मैंने कहा, "यह अत्यन्त दुराशा है। पर ऐसा तो नहीं लगता कि तुम सबका भी भगवानपर बहुत भरोसा है, नहीं तो भिक्षाके लिए क्यों जाती।"

वैष्णवीने कहा, "जाती हूँ इसलिए कि देनेके लिए वे हाथ बढ़ाये दरवाजे दरवाजे खड़े हैं। नहीं तो हमारी गरज नहीं है। अगर होती तो नहीं जाती। बिना खाये ही सूख सूख कर मर जाती, तो भी न जाती।"

"कमललता, तुम्हारा देश कहाँ है ?"

"कल ही तो कहा था गुसाई, मेरा घर पेड़के नीचे है, मेरा देश गली गलीमें है।"

"तो पेड़के नीचे और गली गलीमे न रहकर मठमें किस लिए रहती हो?"

"बहुत दिनोंतक गली गलीमे ही थी गुसाई, अगर कोई सगी मिल जाय तो फिर एक बार गलीको सबल बना लूँ।"

मैंने कहा, "इस बातपर तो विश्वास नहीं होता। तुम्हे सगी-साथीकी क्या कमी है कमललता ? जिससे कहोगी वही राजी हो जायगा।"

वैष्णवीने हँसते हुए कहा, "तुम्हींसे कहती हूँ नये गुसाई,—राजी होगे?"

मैं भी हँसा। कहा, "हाँ, राजी हूँ। नाबालिग उम्रमे जो यात्राके दलसे नहीं डरा, बालिग अवस्थामे उसे वैष्णवीका क्या डर ?"

"यात्राके दलमे भी रहे थे ?"

"हाँ।"

"तो गाना भी गा सकते हो ?"

"नहीं। मालिकने इतनी दूर आगे बढ़ने ही नहीं दिया, इसके पहले ही जवाब दे दिया। यह नहीं कहा जा सकता कि तुम मालिक होतीं तो क्या करती।"

वैष्णवी हँसने लगी। बोली, "मैं भी जवाब दे देती। इसे छोड़ो, अब हममेंसे एकके भी जाननेपर काम चल जायगा। इस देशमें चाहे जैसे भी भगवानका नाम लेनेपर भिक्षाका अभाव नहीं होता। चलो न गुसाई,

निकल पड़े। कह रहे थे कि वृंदावनधाम कभी नहीं देखा है, चलो तुम्हें दिखला लाऊँ। बहुत दिन घरमें बैठे बैठे कटे, रास्तेका नशा जैसे फिर अपनी ओर खींचना चाहता है। सच, चलोगे नये गुसाई ?"

अचानक उसके मुँहकी ओर देखकर बहुत विस्मय हुआ। कहा, "हमारा परिचय हुए तो अभी चौबीस घंटे भी नहीं हुए, मुझपर इतना विश्वास कैसे हो गया ?" वैष्णवीने कहा," ये चौबीस घंटे सिर्फ एक पक्षके लिए ही तो नहीं हैं गुसाई, दोनों पक्षोंके लिए हैं। मेरा विश्वास है कि रास्तेमें प्रवासमें भी तुमपर मेरा अविश्वास न होगा। कल पचमी है, जानेका बडा अच्छा शुभ दिन है,—चलो। और रास्तेके किनारे रेलका पथ तो है ही,—अच्छा नहीं लगे तो लौट आना। मैं मना नहीं करूँगी।"

एक वैष्णवीने आकर खबर दी, 'ठाकुरजीका प्रसाद कमरेमें रख दिया गया है।' कमललताने कहा, "चलो तुम्हारे कमरेमें चलकर बैठे।"

"मेरे कमरेमे ? अच्छी बात है।"

और एक बार उसके मुँहकी तरफ देखा। इस बार लेशमात्र भी सदेह न रहा कि वह हँसी नही कर रही है। यह भी निश्चित है कि मैं उपलक्ष-मात्र हूँ, पर चाहे जिस कारणसे हो, उसकी ऐसी हालत मालूम हुई कि वह चाहे जिस कारणसे हो, यदि यहाँके बधन तोडकर भाग सके तो मानो उसकी जानमें जान आ जाय,—उसे एक क्षणका भी विलंब सहन नहीं हो रहा है।

कमरेमें आकर खाने बैठा। बहुत बढ़िया प्रसाद है। भागनेका षड्यत्र अच्छी तरह जम जाता पर एक बहुत जरूरी कामसे कोई कमललताको बुला ले गया। अतः अकेले ही मुँह बद किये हुए सेवा समाप्त करनी पड़ी। बाहर निकलनेपर कोई भी नजर नहीं आया, द्वारकादास बाबाजी भी न जाने कहाँ चले गये। दो-तीन पुरानी वैष्णवियाँ घूम-फिर रही हैं,—कल शामको ठाकुरजीके कमरेके धुएँमे शायद ये ही अप्सरा जैसी लगी थीं, किन्तु आज दिनकी तेज रोशनीमे कलका वह अध्यात्म-सौन्दर्य-बोध उतना अटूट नही रहा। मन न जाने कैसा हो गया, सीधा आश्रमके बाहर चला आया। वही शैवालाच्छन्न शीर्णकाया मदस्रोता सुपरिचिता नदी और वही लतागुल्म-कटकाकीर्ण तटभूमि, वही सर्पसकुल सुदृढ बेतोंका कुज और सुविस्तृत बेणुवन।

बहुत दिनोंके अनभ्यासके कारण शरीर सनसनाने लगा, कहीं दूसरी जगह

जानेकी सोच ही रहा था कि एक आदमी जो कहीं छिपा बैठा था, अब उठा और नजदीक आकर खड़ा हो गया। पहले तो आश्चर्य हुआ कि इस जगह भी आदमी हो सकता है। उसकी उम्र मेरे बराबर ही होगी, और दस वर्ष ज्यादा होना भी असभव नही है। ठिगना, दुबला-पतला, शरीरका रंग बहुत ज्यादा काला नहीं है, पर मुँहका नीचेका हिस्सा जैसे बहुत ही छोटा है। आँखों-की दोनो भौंहे भी वैसी ही अस्वाभाविक रूपमे विस्तीर्ण हैं। वस्तुतः, इतनी बड़ी, घनी और मोटी भौंहे भी मनुष्यकी होती हैं, यह ज्ञान मुझे इसके पहले न था। दूरसे ही सदेह हुआ कि प्रकृतिने मज़ाकमे होठोंके बदले कपालमे एक जोड़ी मोटी मूँछे तो नहीं चिपका दी हैं। गलेमे तुलसीकी मोटी माला है, वेश-भूषादि भी बहुत कुछ वैष्णवो जैसी है, पर जितनी मैली है उतनी ही जीर्ण।

"महाशयजी!"

चौंककर खड़े होते हुए मैंने पूछा, "क्या आज्ञा है?"

"क्या यह जान सकता हूँ कि आप यहाँ कब आये हैं?"

"जान सकते हैं। कल शामको आया हूँ।"

"रातको अखाड़ेमे शायद थे?"

"हाँ, था।"

"ओ!"

नीरवतामें ही कुछ क्षण कटे। पैर बढ़ानेकी कोशिश करते ही उस आदमीने कहा, "आप तो वैष्णव नहीं हैं, भले आदमी हैं—अखाड़ेमे आपको रहने दिया!"

मैंने कहा, "यह तो वे ही जानें। उन्हींसे पूछिए।"

"ओ! शायद कमललताने रहनेके लिए कहा होगा?"

"हाँ।"

"ओः, जानते हैं उसका असली नाम क्या है?—उषागिनी। मकान सिलहटमें है किन्तु दिखती है कलकत्ते जैसी। मेरा घर भी सिलहटमें है। गाँवका नाम है महमूदपुर। उसके स्वभाव-चरित्रके बारेमें कुछ सुनेंगे?"

मैंने कहा, "नही।" पर उस आदमीके हाव-भाव देखकर इस बार सचमुच ही विस्मित हो उठा। प्रश्न किया, "कमललताके साथ आपका कोई सम्बन्ध है?"

" है क्यों नहीं ? "

" वह क्या ? "

क्षणभर इधर-उधर कर वह आदमी एकाएक गरज उठा, " क्यों, क्या झूठ है ? वह मेरी घरवाली होती है। उसके बापने खुद हमारी कठी-बदली की थी। इसके गवाह हैं। "

न जाने क्यों मुझे विश्वास नही हुआ। पूछा, " आपकी जाति क्या है ? "

" हम द्वादश-तेली हैं। "

" और कमललताकी ? "

प्रत्युतरमे वह अपनी वही मोटी भौंहोंकी जोडी घृणासे कुचित कर बोला, " वह कलवार है,—उनके पानीसे हम पैर भी नहीं धोते। एक बार उसे बुला सकते हैं ? "

" नहीं। अखाड़ेमे सब जा सकते हैं, इच्छा हो तो आप भी जा सकते हैं। " कुछ नाराज होकर वह बोला, " जाऊँगा साहब, जाऊँगा। दरोगाको पैसे खिला दिये हैं, प्यादे साथ लेकर झोटा पकडकर बाहर खीच लाऊँगा। बाबाजीके बाबा भी उसे नहीं बचा सकेगे ! साला, रास्कल कहींका ! "

मैं और वाक्य व्यय न करके आगे चलने लगा। वह पीछेसे कर्कश कठसे बोला, " इसमें आपका क्या नुकसान था ? जाकर अगर एक बार बुला देते तो क्या शरीरका कुछ क्षय हो जाता ? ओह,—भले आदमी ! "

अब पीछे घूमकर देखनेका भरोसा नही हुआ। पीछे कहीं गुस्सा न रोक पाऊँ और इस अति दुर्बल आदमीके शरीरपर हाथ न छोड बैठूँ, इस डरसे कुछ तेजीके साथ ही मैने प्रस्थान किया। ऐसा लगने लगा कि वैष्णवीके भाग जानेका हेतु शायद यही कहीं सम्बद्ध है।

मन खराब हो गया था। ठाकुरजीके कमरेमे न तो खुद गया और न कोई बुलाने ही आया। कमरेके भीतर एक चौकीपर कई-एक वैष्णव-ग्रथावलियॉ बडे यत्नसे रखी थीं। उन्हींमेसे एकको हाथमें लेकर और प्रदीपको सिरहाने रखकर बिछौनेपर लेट गया। वैष्णव-धर्मशास्त्रके अध्ययनके लिए नहीं, सिर्फ वक्त गुजारनेके लिए। बार बार क्षोमके साथ सिर्फ एक ही बातका ख्याल आने लगा, कमललता जो गई तो फिर लौटकर नहीं आई ! ठाकुरजीकी सध्या-आरती यथारीति शुरू हुई, उसका मधुर कण्ठ

बार बार कानोंमें सुनाई पड़ने लगा और घूम-फिरकर यही ख्याल मनमें आने लगा कि उस वक्तसे कमललताने मेरी कोई खोज-खबर ही नहीं ली ! और वह मोटी भौंहोंवाला आदमी ? क्या उसकी शिकायतमे कुछ भी सत्य नहीं है ?

और भी एक बात है। गौहर कहाँ है ? उसने भी तो आज मेरी कोई खोज नहीं ली। सोचा था कि कुछ दिन,—पूँटूके विवाहवाले दिनतक यहीं गुजारूँगा, पर अब यह नहीं होगा। शायद कल ही कलकत्ते रवाना हो जाना पड़े।

शनैः शनैः आरती और कीर्तन समाप्त हो गया। कलवाली वही वैष्णवी आकर बड़े यत्नसे प्रसाद रख गई, पर जिसकी राह देख रहा था उसके दर्शन नहीं मिले। बाहर लोगोंकी बातचीत और आने-जानेकी आवाज भी क्रमशः शात हो गई। यह सोचकर कि अब उसके आनेकी कोई भी समावना नही है, भोजन किया और हाथ-मुँह धोकर दीप बुझा सो गया।

शायद उस वक्त बहुत रात थी, कानोंमे भनक पड़ी, "नये गुसाई !"

जागकर उठ बैठा। अंधकारमे खड़ी थी कमललता। आहिस्ता आहिस्ता बोली, "आई नहीं, इसलिए शायद मन ही मन बहुत दुखी हो रहे हैं,—क्यों न गुसाई ?"

कहा, "हॉ, दुखी हुआ हूँ।"

क्षणभरके लिए वैष्णवी चुप रही, फिर बोली, "जंगलमे वह आदमी तुमसे क्या कह रहा था ?"

"तुमने देखा था क्या ?"

"हॉ।"

"कह रहा था कि वह तुम्हारा पति है,—अर्थात्, तुम्हारे सामाजिक आचारोंके मुताबिक तुम्हारी उसकी कंठी-बदल हुई है।"

"तुमने विश्वास किया ?"

"नही, नहीं किया।"

क्षणभरके लिए फिर मौन रहकर वैष्णवीने कहा, "उसने मेरे स्वभाव और चरित्रके बारेमे कुछ इशारा नहीं किया ?"

"किया था।"

"और मेरी जातिका ?"

" हाँ, उसका भी । "

वैष्णवीने कुछ ठहरकर कहा, " सुनोगे मेरे बचपनका इतिहास ? शायद तुम्हें घृणा हो जाय । "

" तो रहने दो, मैं नहीं सुनना चाहता । "

" क्यों ? "

" उससे क्या फायदा कमललता ? तुम मुझे बहुत भली लगी हो। यहाँसे कल चला जाऊँगा और शायद फिर कभी हम लोगोंकी मुलाकात ही न हो, तब मेरे इस भले लगनेको निरर्थक ही नष्ट करनेसे क्या फायदा होगा, बताओ ? "

इस बार वैष्णवी बहुत देरतक मौन रही । यह समझमें न आया कि अंधकारमें चुपचाप खड़ी वह क्या कर रही है । पूछा, " क्या सोच रही हो ?"

" सोच रही हूँ कि कल तुम्हें नही जाने दूँगी । "

" तो फिर कब जाने दोगी ? "

" जाने कभी न दूँगी । पर अब बहुत रात हो गई, सो जाओ । मसहरी अच्छी तरहसे लगी हुई है न ? "

" क्या पता, शायद लगी है । "

वैष्णवीने हँसकर कहा, " शायद लगी है ? वाह, खूब हो ! " यह कह उसने करीब आकर अंधकारमे ही हाथ बढाकर बिछौनेके चारों ओरकी परीक्षा कर ली और कहा, " सोओ गुसाईं, मै जाती हूँ । " यह कहकर वह दबे पैरों बाहर निकल गई और बाहरसे बहुत ही सावधानीके साथ दरवाजा भी बंद कर गई ।

७

वैष्णवीने आज मुझसे बार बार शपथ करा ली कि उसका पूर्व विवरण सुनकर मैं घृणा नही करूँगा ।

" सुनना मैं चाहता नहीं, पर अगर सुनूँ तो घृणा न करूँगा । "

वैष्णवीने सवाल किया, " पर क्यों नहीं करोगे ? सुनकर औरत-मर्द सब ही तो घृणा करते हैं । "

" मैं नहीं जानता कि तुम क्या कहोगी, तो भी अन्दाज लगा सकता हूँ । यह जानता हूँ कि उसे सुनकर औरतें ही औरतोंसे सबसे ज्यादा घृणा

करती हैं, और इसका कारण भी जानता हूँ, पर तुम्हें वह नहीं बताना चाहता। पुरुष भी करते हैं, किन्तु बहुत बार वह छल होता है, और बहुत बार आत्मवंचना। तुम जो कुछ कहोगी उससे भी बहुत ज्यादा भद्दी बातें मैंने खुद तुम लोगोंके मुँहसे सुनी हैं, और अपनी आँखों भी देखी हैं। पर तो भी मुझे घृणा नहीं होती। "

" क्यों नहीं होती ? "

" शायद यह मेरा स्वभाव है। पर कल ही तो तुमसे कहा है कि इसकी जरूरत नहीं। सुननेके लिए मैं जरा भी उत्सुक नहीं।—इसके अलावा कौन कहाँका है,—यह सब कहानी मुझसे नहीं भी कहो तो क्या हर्ज है ? "

वैष्णवी काफी देर तक चुप हो कुछ सोचती रही। इसके बाद अचानक पूछ बैठी, " अच्छा गुसाईं, तुम पूर्व जन्म और अगले जन्मपर विश्वास करते हो ? "

" नही। "

" नहीं क्यों ? क्या तुम सोचते हो कि ये सब बातें सचमुच नहीं हैं ? "

" मेरे सोचनेके लिए दूसरी बहुत बाते है, शायद ये सब सोचनेके लिए मुझे समय ही नही मिलता। "

वैष्णवी फिर क्षणभर मौन रहकर बोली, " एक घटना तुम्हे बताऊँगी, विश्वास करोगे ? ठाकुरजीकी ओर मुँह करके कहती हूँ कि तुमसे झूठ नहीं कहूँगी। "

मैंने हँसकर कहा, " करूँगा। "

" तो कहती हूँ। एक दिन गौहर गुसाईंके मुँहसे सुना कि उसकी पाठ-शालाका एक मित्र उसके घर आया है। सोचा कि जो आदमी एक दिन भी यहाँ आये बिना नहीं रह सकता, वह अपने बचपनके मित्रके साथ छह-सात दिन कैसे भूला रहा ? फिर सोचा कि यह कैसा ब्राह्मण मित्र है जो अनायास ही मुसलमानके घर पड़ा रहा, किसीसे भी नहीं डरा ! उसका क्या कही भी कोई नहीं है ? पूछनेपर गौहर गुसाईंने भी ठीक यही बात कही। कहा कि ससारमे उसका अपना कहने लायक कोई नहीं है, इसीलिए उसे डर नहीं है, चिंता भी नहीं है। मन ही मन ख्याल किया कि ऐसा ही होगा। पूछा, गुसाईं, तुम्हारे मित्रका क्या नाम है ? नाम सुनकर

जैसे चौंक गई। जानते तो हो गुसाई, यह नाम मुझे नहीं लेना चाहिए।

हँसकर बोला, "जानता हूँ। तुम्हारे मुँहसे ही सुना है।"

वैष्णवीने कहा, "पूछा, तुम्हारा मित्र देखनेमें कैसा है? उम्र क्या है? गुसाईंने जो कुछ कहा उसका कुछ हिस्सा तो कानोंमे गया, और कुछ नहीं। पर हृदयके भीतर धड़कन होने लगी। तुम ख्याल करते होगे कि ऐसा आदमी तो नहीं देखा जो नाम सुनकर ही पागल हो जाय। पर यह सच है। सिर्फ नाम सुनकर ही औरते पागल हो जाती हैं गुसाई!"

"इसके बाद?"

वैष्णवीने कहा, "इसके बाद खुद भी हँसने लगी पर भूल न सकी। सब काम-काजोंमें मुझे केवल एक ही बात याद आने लगी कि तुम कब आओगे, तुम्हे अपनी आँखोंसे कब देख सकूँगी।"

सुनकर चुप रहा, पर उसके चेहरेकी ओर देखकर हँस न सका।

वैष्णवीने कहा, "अभी तो कल शामको ही तुम आये हो, पर आज इस ससारमे मुझसे ज्यादा तुम्हे कोई प्रेम नही करता। पूर्वजन्म अगर सत्य न होता तो क्या एक दिनमें यह असंभव बात संभव हो सकती?"

कुछ ठहरकर उसने फिर कहा, "मै जानती हूँ कि तुम रहने नहीं आये हो और रहोगे भी नहीं। चाहे जितनी भी प्रार्थना क्यों न करूँ, तुम दो-एक दिन बाद चले ही जाओगे। पर मैं केवल यही सोचती हूँ कि इस व्यथाको मैं कबतक संभाले रहूँगी।" यह कहकर उसने सहसा आँचलसे आँखे पोंछ डालीं।

मैं चुप हो रहा। इतने थोडेसे समयमें, इतनी स्पष्ट और प्राजल भाषामें रमणीके प्रणय-निवेदनकी कहानी इसके पहले न तो कभी किताबमें पढी थी और न लोगोंकी जुबानी सुनी ही थी। और अपनी आँखोंसे ही देख रहा हूँ कि यह अभिनय भी नहीं है। कमललता देखनेमे सुन्दर है, निरक्षर मूर्ख भी नहीं है, उसकी बात-चीत, उसका गाना, उसका आदर और उसकी अतिथि-सेवाकी आन्तरिकताके कारण वह मुझे अच्छी लगी है, और इस अच्छे लगनेका प्रशंसा और रसिकताकी अत्युक्तिसे फैलाव करनेमें मैंने कंजूसी भी नहीं की है। पर देखते ही देखते यह परिणति इतनी गहरी हो जायगी, वैष्णवीके आवेदनसे, अश्रुमोचनसे और माधुर्यके अकुण्ठित आत्मप्रकाशसे सारा मन

ऐसी तिक्ततासे परिपूर्ण हो जायगा,—यह क्या क्षणभर भी पहले जानता था ? मानो मै हतबुद्धि हो गया। यही नहीं कि सिर्फ लज्जासे ही सारा शरीर रोमाचित हो गया हो, बल्कि एक प्रकारकी अनजान विपदकी आशंकासे हृदयमे अब कतई शान्ति और निराकुलता न रही। पता नहीं कि किस अशुभ मुहुर्तमे काशीसे चला था जो एक खूँटेका जाल तोडकर दूसरी खूँटके फन्देमे बुरी तरह फँस गया ! इधर उम्र यौवनकी सीमा लॉघ रही है, ऐसे असमयमे अयाचित नारी-प्रेमकी ऐसी बाढ आ गई कि सोच ही न सका कि कहाँ भागकर आत्मरक्षा करूँ ! कल्पना भी न की थी कि पुरुषके लिए युवती-रमणीकी प्रणयभिक्षा इतनी अरुचिकर हो सकती है। सोचा, एकाएक मेरा मूल्य इतना कैसे बढ गया ? आज राजलक्ष्मीका प्रयोजन भी मुझसे शेष नही होना चाहता,—यही मीमासा हुई है कि वह अपनी वज्रमुष्टिको जरा भी ढीला कर मुझे निष्कृति नही देगी। पर अब यहाँ और नहीं रहना चाहिए। साधु-सग सिर-माथे, यही स्थिर किया कि इस स्थानको कल ही छोड़ दूँगा।

एकाएक वैष्णवी चकित हो उठी, “ अरे वाह ! तुम्हारे लिए चाय जो मँगाई है, गुसाईं।”

“ कहती क्या हो ? कहाँ मिली ? ”

“ आदमीको शहर भेजा था। जाऊँ, तैयार करके ले आऊँ, देखो, कही भाग न जाना।”

“ नही, लेकिन बनाना जानती हो ? ”

वैष्णवीने जवाब नहीं दिया, सिर्फ सिर हिलाकर हँसती हुई चली गई। उसके चले जानेके बाद उस ओर देखनेपर हृदयमे न जाने कैसी एक चोट-सी लगी। चाय-पान आश्रमकी व्यवस्था नही है, शायद मनाही ही है, तो भी उसे यह खबर लग गई कि यह चीज मुझे अच्छी लगती है और शहरमे आदमी भेजकर उसने मँगवा भी ली। उसके विगत जीवनका इतिहास नहीं जानता, और वर्तमानका भी नहीं। केवल यह आभास मिला है कि वह अच्छा नहीं है, वह निन्दाके योग्य है,—सुनने पर लोगोंको घृणा होती है। तथापि, वह उस कहानीको मुझसे छिपाना नहीं चाहती, सुनानेके लिए बार बार जिद कर रही है, सिर्फ मै ही सुननेको राजी नही हूँ। मुझे कुतूहल नही है, क्योंकि प्रयोजन नहीं है। प्रयोजन उसीका है। अकेले बैठे हुए इस

प्रयोजनके सम्बन्धमे सोचते हुए स्पष्टतः देखा कि मुझे बताये वगैर उसके हृदयकी ग्लानि नहीं मिटेगी,—मनमे वह किसी तरह भी बल नहीं पा रही है। सुना है कि मेरा ' श्रीकान्त ' नाम कमललता उच्चारण नहीं कर सकती। पता नहीं कि कौन यह उसका परमपूज्य गुरुजन है और उसने कब इस लोकसे बिदा ले ली है। हमारे नामकी इस दैवी एकताने ही शायद इस विपत्तिकी सृष्टि की है और उसने तबसे ही कल्पनामें गतजन्मके स्वप्नसागरमे डुबकी लगाकर ससारकी सब यथार्थताओंको तिलाजलि दे दी है।

तो भी ऐसा लगता है कि इसमे विस्मयकी कोई बात नहीं। रसकी आराधनामे आकण्ठ-मग्न रहते हुए भी उसकी एकान्त नारी-प्रकृति आज भी शायद रसका तत्त्व नही पा सकी है, वह असहाय अपरितृप्त प्रवृत्ति इस निरवच्छिन्न भाव-विलासके उपकरणोंको सग्रह करनेमे शायद आज क्लान्त है,—दुबिधासे पीडित है। उसका वह पथभ्रष्ट विभ्रान्त मन अपने अनजानमें ही न जाने कहाँ अवलंब खोजनेमे प्राणपणसे जुटा हुआ है,—वैष्णवी उसका पता नही जानती, इसीलिए आज वह बार बार चौंककर अपने विगत-जन्मके रुद्ध-द्वारपर हाथ फैलाकर अपराधकी सात्वना माँग रही है। उसकी बातें सुनकर समझ सकता हूँ कि मेरे नाम ' श्रीकान्त'को ही पाथेय बनाकर आज वह अपनी नाव छोड देना चाहती है।

वैष्णवी चाह ले आई। सब नयी व्यवस्था है, पीकर बहुत आनद मिला। मनुष्यका मन कितनी आसानीसे परिवर्तित हो जाता है!—अब मानों उसके खिलाफ कोई शिकायत नही है!

पूछा, " कमललता, तुम क्या कलवार हो?"

कमललताने हँसकर कहा, " नही सुनार-बनियाँ। पर तुम्हारे निकट तो कोई प्रभेद नहीं है,—वे दोनों ही एक हैं।"

" कमसे कम मेरे निकट तो एक ही हैं। दोनों ही एक क्यों, बल्कि सबके एक हो जानेपर भी कोई नुकसान नहीं।"

वैष्णवीने कहा, " ऐसा ही तो लगता है। तुमने तो गौहरकी माँके हाथका भी खाया है।"

" उन्हे तुम नहीं जानतीं। गौहर बापकी तरह नहीं हुआ है, उसे अपनी माँका स्वभाव मिला है। इतना शान्त, अपनेको भूला हुआ, ऐसा अच्छा

मनुष्य कभी देखा है ? उसकी माँ ऐसी ही थीं। एक बार बचपनमें गौहरके पिताके साथ उनके झगड़ेकी बात मुझे याद है। उन्होने किसीको छिपाकर बहुतसे रुपये दे दिये थे। इसी वजहसे झगडा खड़ा हुआ। गौहरके पिता बदमिजाज आदमी थे। हम तो डरके मारे भाग गये। कुछ घण्टे बाद धीरे धीरे आकर देखा कि गौहरकी माँ चुपचाप बैठी हैं। गौहरके पिताके बारेमे पूछनेपर पहले तो उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया। पर हमारे मुँहकी ओर ताकते हुए वे एक बार खिलखिला कर हँस पडी। आँखोसे पानीकी कुछ बूँदें नीचे गिर पड़ीं। यह उनकी आदत थी।"

वैष्णवीने प्रश्न किया, "इसमें हँसनेकी कौन सी बात हुई ?"

"हमने भी तो यही सोचा। पर जब हँसी रुक गई तो वे धोतीसे आँखे पोछ कर बोलीं, 'मैं कैसी मूरख औरत हूँ बेटा! वे तो मज़ेसे पेट भर कर खुर्राटे ले रहे हैं, और मै बिना खाये उपवास कर गुस्सेमें जल-भुन रही हूँ! *बताओ, इसकी क्या जरूरत है!' और इस कहनेके साथ ही उनका सारा* अभिमान और क्रोध धुल-पुँछकर साफ हो गया। यह भुक्तभोगीके अलावा और कोई नही जानता कि औरतोंका यह कितना बडा गुण है!"

वैष्णवीने प्रश्न किया, "तुम क्या भुक्तभोगी हो, गुसाईं ?"

मैं कुछ सिटपिटा गया। यह नहीं सोचा था कि उसको छोडकर यह प्रश्न मेरे ही सिर आ पड़ेगा, कहा, "सब क्या खुद ही भोगना पडता है कमललता, दूसरोंको देखकर भी तो सीखा जाता है। इस मोटी भौहोवाले आदमीके निकट क्या तुमने कुछ नही सीखा ?"

वैष्णवीने कहा, "पर वह तो मेरे लिए पराया नही है।"

और कोई प्रश्न अब मेरे मुँहसे नही निकला,—बिलकुल निस्तब्ध हो गया।

वैष्णवी खुद भी कुछ देर चुप रही। फिर हाथ जोड़कर बोली, "तुमसे विनती करती हूँ गुसाई, एक बार मेरी शुरूकी बाते सुन लो—"

"अच्छी बात है, कहो।"

पर जब कहने चली तो देखा कि कहना उतना आसान नही है। मेरी ही तरह मुँह नीचा किये हुए उसे भी काफी देरतक चुप रहना पड़ा। पर उसने हार नहीं मानी। अंतर्द्वन्द्वमे विजयी होकर जब उसने एक बार मुँह ऊपर उठाकर देखा तो मुझे भी ऐसा लगा कि उसके स्वाभाविक सुश्री चेहेरेपर

मानों एक खास चमक आ गई है। बोली, " अहकार मर कर भी नहीं मरता गुसाई ! हमारे बडे गुसाई कहते हैं कि यह मानों फूसकी आग है जो बुझकर भी नहीं बुझती। राख हटाते ही नजर आता है कि धक धक धधक रही है, पर इसीलिए इसे फूँक देकर बढा भी तो नहीं सकती। फिर तो मेरा इस पथपर आना ही मिथ्या हो जायगा। सुनो। किन्तु औरत हूँ न, इसलिए शायद सब बातें खोलकर न भी कह सकूँ। "

मेरे सकोचकी सीमा न रही। अतिम बार विनती कर कहा, " औरतोंके पैर फिसलनेके विवरणोमे मुझे दिलचस्पी नहीं है, उत्सुकता भी नहीं, और उन्हे सुनना मुझे कभी अच्छा भी नही लगा कमललता ! मुझे नहीं मालूम कि तुम्हारी वैष्णव-साधनामे अहकारके नाशके लिए कौनसे मार्गका निर्देश महाजनोंने किया है, पर अपने गुप्त पापोंको अनावृत करनेकी स्पर्द्धित विनय ही अगर तुम्हारे प्रायश्चित्तका विधान हो, तो तुम्हे अनेक व्यक्ति मिल जायँगे जिन्हें ऐसी सब कहानियाँ सुनना बहुत रुचिकर लगता है। मुझे माफ करो, कमललता, इसके अलावा मैं शायद कल ही चला जाऊँगा, शायद फिर जीवनमे कभी हम लोगोंकी मुलाकात भी नही होगी। "

वैष्णवीने कहा, "तुमसे तो पहले ही कहा है गुसाई, प्रयोजन तुम्हारा नहीं, मेरा है, पर यह क्या तुम सच कह रहे हो, कलके बाद हमारी मुलाकात नही होगी ?—नही, ऐसा कभी नही हो सकता, मेरा मन कहता है कि फिर मुलाकात होगी,—मै यही आशा लेकर रहूँगी। पर क्या वास्तवमे मेरे बारेमें कुछ भी जाननेकी इच्छा तुम्हारी नही है ? हमेशा क्या सिर्फ एक अनुमान और सन्देहको ही लिये रहोगे ? "

प्रश्न किया, " आज वनमे जिस आदमीसे मेरी मुलाकात हुई, जिसे तुम आश्रममे घुसने नही देतीं, जिसके उपद्रवसे तुम भागना चाहती हो,—वह क्या वास्तवमे तुम्हारा कोई नहीं होता ? बिलकुल पराया है ? "

" किसके डरसे भाग रही हूँ, यह तुम समझ गये गुसाई ? "

" हाँ, ऐसा ही तो लगता है। पर वह है कौन ? "

" वह कौन है ? वह मेरे इह और परलोककी नरक-यत्रणा है। इसी लिए तो निरन्तर रोकर भगवानसे कहती हूँ, प्रभु, मैं तुम्हारी दासी हूँ,—मनुष्यके प्रति इतनी जबरदस्त घृणा मेरे मनसे निकाल दो, जिससे मैं फिर

आसानीसे साँस लेकर जी सकूँ। नहीं तो मेरी सारी साधना व्यर्थ हो जायगी।"

उसकी आँखोंसे जैसे आत्मग्लानि फूट पडी, मै चुप हो रहा।

वैष्णवीने कहा, "फिर भी, एक दिन उससे ज्यादा मेरा अपना कोई नहीं था,—ससारमे इतना प्यार किसीने भी किसीको नहीं किया होगा।" उसका कथन सुनकर विस्मयकी सीमा नही रही और इस सुरूपा रमणीकी तुलनामे उस प्रेमके पात्रकी कुत्सित और भद्दी शक्लको स्मरण कर मेरा मन बहुत ही सकुचित हो गया।

बुद्धिमती वैष्णवीने मेरा मुँह देखकर यह ताड लिया। कहा, "गुसाई, यह तो उसका सिर्फ बाहरका परिचय है,—उसके भीतरका परिचय सुनो।"

"कहो।"

वैष्णवीने कहना शुरू किया, "मेरे और भी दो छोटे भाई हैं, पर माँ-बापकी मै इकलौती बेटी थी। हम श्रीहट्टके रहनेवाले है, पर चूँकि पिताजी व्यापारी आदमी थे, उनका व्यापार कलकत्तेमे था, इसलिए बचपनसे ही मै कलकत्तेमे पली हूँ। गृहस्थीके साथ माँ गाँवके मकानमे ही रहती थीं। मै पूजाके दिनोंमे अगर कभी गाँव जाती तो महीने-भरसे ज्यादा न रह पाती। वहाँ रहना मुझे अच्छा भी न लगता। कलकत्तेमे ही मेरी शादी हुई और सत्रह वर्षकी उम्रमे कलकत्तेमे ही मैने उन्हे खो दिया। उनके नामकी वजहसे ही गुसाई, तुम्हारा नाम गौहर गुसाईके मुँहसे सुनकर मै चौक पडी। इसीलिए 'नये गुसाई'के नामसे पुकारती हूँ, वह नाम जुबानपर नहीं ला सकती।"

"यह मै समझ गया, इसके बाद?"

वैष्णवीने कहा, "आज जिसके साथ तुम्हारी मुलाकात हुई थी उसका नाम मन्मथ है, वह हमारा मुनीम था।" कह कर वह क्षणभरके लिए मौन रही, फिर बोली, "जब मेरी उम्र इक्कीस सालकी थी तब मेरे सतान होनेकी सभावना हुई —"

वैष्णवी कहने लगी, "मन्मथका एक पितृहीन भतीजा हमारे ही मकानमे रहता था। पिताजी उसे कालेजमे पढाते थे। उम्रमे मुझसे जरा छोटा था। वह मुझे इतना प्यार करता था जिसकी सीमा नही। उसे बुलाकर कहा, 'यतीन, तुमसे और कभी तो कुछ माँगा नहीं है भाई, इस विपत्तिमे अंतिम

बार मुझे थोड़ी-सी मदद करो। मुझे एक रुपयेका जहर खरीदकर ला दो।' पहले तो वह मेरी बात नहीं समझा, पर जब उसकी समझमे आया तो उसका चेहरा मुर्देकी तरह फीका पड़ गया। कहा, 'देरी मत करो भाई, तुम्हे अभी खरीदकर ला देना होगा। इसके अलावा मेरे लिए और कोई दूसरा रास्ता नहीं है।'

"यह सुनकर यतीनके रोनेका तो क्या कहना। वह मुझे देवता समझता था और दीदी कहकर पुकारता था। उसे कितना आघात, कितनी व्यथा हुई, उसकी ऑखोंका पानी जैसे खत्म ही नहीं होना चाहता था। बोला, 'उषा दीदी, आत्मघातसे बढ़कर और कोई महापाप नही है। एक पापके कंधेपर और एक जबरदस्त पाप लादकर तुम रास्ता खोजना चाहती हो? पर लज्जासे बचनेका यह तरीका ही अगर तुमने स्थिर किया हो दीदी, तो मैं कभी मदद नही करूँगा। इसके अतिरिक्त और जो कुछ भी तुम आदेश दोगी, उसका मै तत्काल पालन करूँगा।' उसीके कारण मै मर न सकी।

"क्रमशः पिताजीके कानोंमे बात पहुँची। वे जैसे निष्ठावान् वैसे ही शान्त और निरीह प्रकृतिके मनुष्य थे। मुझसे कुछ नहीं कहा, पर दुःखसे, शर्मसे दो-तीन दिन तक बिछौनेसे न उठ सके। फिर गुरुदेवके परामर्शसे मुझे लेकर नवद्वीप आये। यह ठहरा कि मै और मन्मथ दीक्षा लेकर वैष्णव हो जायें और तब फूलोंकी माला और तुलसीकी माला अदल-बदलकर नई रीतिसे हमारी शादी हो। उससे पापका प्रायश्चित्त होगा या नहीं, यह नही जानती थी, पर इस भरोसेपर कि जो शिशु गर्भमें आया है उसकी माँ होकर हत्या नही करनी पड़ेगी,मेरी आधी वेदना दूर हो गई। उद्योग-आयोजन होने लगा, दीक्षा कहो या भेष कहो, या और कुछ कहो, मेरा नया नामकरण हुआ—कमललता। किन्तु, तब भी यह मालूम नही था कि दस हजार रुपये देनेका वचन देकर ही पिताजीने मन्मथको राजी किया है। पर एकाएक न जाने क्यों शादीका दिन आगे बढा दिया गया,—शायद एक सप्ताह। मन्मथ बहुत कम दिखाई पड़ता, नवद्वीपके मकानमे मैं अकेली ही रहती थी। ऐसे ही कई दिन कट गये, इसके बाद फिर शुभ-दिन आया। स्नान करके पवित्र होकर शान्त मनसे ठाकुरकी अर्पित माला हाथमे लिये प्रतीक्षामे बैठी रही। उदास चेहरेसे पिताजी एक बार देख गये, पर मन्मथको जब नवीन वैष्णवके वेषमे देखा,

तो अचानक सारे मनके भीतर बिजली दौड़ गई। यह ठीक नहीं जानती कि वह आनंद की थी या व्यथाकी, शायद दोनोंकी ही थी। पर इच्छा हुई कि उठकर उसके पैरोंकी धूल माथेपर लगा लूँ। पर शर्मके कारण ऐसा नहीं हो सका।

" हमारी कलकत्तेकी पुरानी दासी बहुत-सी चीजे ले आई। उसीने मेरी परवरिश की थी, उसीके मुँहसे दिन बढ़ जानेका कारण सुना। "

कितनी पुरानी बात है, तो भी गला भारी हो गया और उसकी आँखोंमे आँसू आ गये। मुँह फिराकर वैष्णवी आँसू पोंछने लगी।

पाँच-छह मिनिट बाद पूछा, " उसने क्या कारण बताया ? "

वैष्णवीने कहा, " उसने बताया कि मन्मथ अचानक दस हजारके बदले बीस हजार रुपयोंकी माँग पेश कर बैठा। मुझे कुछ मालूम नही था, इसलिए चौंककर पूछा कि क्या मन्मथ रुपयोंके बदले राजी हुआ है ? और पिताजी भी बीस हजार रुपये देनेको तैयार हैं ? दासीने कहा, उपाय क्या है दीदी रानी ? मामला भी तो आसान नहीं है, जाहिर हो जानेपर जाति, कुल, मान,—सब चला जायगा। मन्मथने असली बात अन्तमें जाहिर कर दी। कहा कि इसके लिए वह तो जिम्मेदार है नही, जिम्मेदार है उसका भतीजा यतीन। अतः यदि बिना दोषके उसे अपनी जाति छोड़नी ही है तो बीस हजारसे कममें नहीं छोड सकता। फिर, दूसरेके लड़केका पितृत्व स्वीकार करना,—यह भी तो कम मुश्किल नहीं है !

"यतीन अपने कमरेमें बैठा पढ रहा था, उसे बुलाकर बात सुनाई गई। सुनकर पहले तो वह हक्का-बक्का-सा हुआ खड़ा रहा। फिर बोला, झूठी बात है। चाचा मन्मथ गर्ज उठा, ' पाजी, नीच, नमकहराम ! जो व्यक्ति तुझे खाना-कपड़ा और कालेजमें पढा-लिखाकर आदमी बना रहा है, उसीका तूने सर्वनाश किया ! कैसे काले साँपको मैं मालिकके घरमें लाया !—सोचा था कि माँ-बाप-हीन लड़का आदमी बनेगा। छी, छी,—यह कहनेके साथ ही साथ वह छाती और सिर पीटने लगा। बोला, यह बात उषाने खुद अपने मुँहसे कही है और तुम इन्कार करते हो !

"यतीन चौंक उठा और बोला, ' उषा दीदीने खुद मेरा नाम लिया है ? पर वह तो कभी झूठ नहीं बोलतीं,—इतना बड़ा झूठा अपवाद तो उनके मुँहसे कभी बाहर नहीं निकल सकता ! "

" मन्मथ और एक बार चिल्ला उठा, 'अब भी इन्कार करता है पाजी, अभागा, शैतान ! अपने मालिकसे तो पूछ, वे क्या कहते हैं !'

" मालिकने अनुमोदन करते हुए कहा, हाँ । "

" यतीनने पूछा, ' खुद दीदीने मेरा नाम लिया है ? '

" मालिकने फिर सिर हिलाकर कहा, ' हाँ । '

"पिताजीको वह देवता-तुल्य मानता था । इसके बाद उसने और कोई प्रतिवाद नहीं किया । स्तब्ध हो कुछ देरतक खड़े रहनेके बाद धीरे धीरे चला गया । क्या सोचा, यह वही जाने ।

"रातको किसीने उसकी तलाश नही की । सुबह ही किसीने आकर खबर दी । सब दौड पडे और देखा कि हमारे टूटे अस्तबलके एक कोनेमे गलेमे रस्सी बाँधे यतीन झूल रहा है ! "

वैष्णवीने कहा, "यह नही जानती कि भतीजेकी आत्महत्याके लिए शास्त्रोंमे चाचाके लिए शौचकी विधि है या नही गुसाई । शायद न हो, या शायद डुबकी लगानेसे ही शुद्धि हो जाती हो,—सो कुछ भी हो, शुभ दिन सिर्फ कुछ दिनोंके लिए और आगे टल गया । इसके बाद गगा-स्नानसे शुद्ध और पवित्र हो माला और तिलक लगाये हुए मन्मथ गुसाईं पापिनीके पाप-विमोचनका शुभ सकल्प लिये हुए नवद्वीपमे आकर हाजिर हो गये ।"

एक मुहूर्तके लिए मौन रहकर वैष्णवी फिर कहने लगी, " उस दिन ठाकुरकी अर्पित माला ठाकुरजीके पाद-पद्मोंमे ही लौटा आई । मन्मथकी अपवित्रता दूर हो गई, पर पापिनी उषाकी अपवित्रता इस जीवनमे दूर न हुई नये गुसाईं । "

मैंने कहा, " इसके बाद ? "

वैष्णवीने मुँह फेर लिया, कोई जवाब नही दिया । समझ गया कि अब उसे सँभलनेमे देर लगेगी । काफी देर तक हम दोनो ही चुप बैठे रहे ।

इसका शेष अंश सुननेका आग्रह प्रबल हो उठा । पर सोच रहा था कि प्रश्न करना उचित है या नही । वैष्णवीने आर्द्र मृदुकण्ठसे खुद ही कहा, " गुसाईं, जानते हो, ससारमें पाप नामकी चीज इतनी भयंकर क्यों है ? "

" अपने ख्यालोंके मुताबिक एक तरहसे जानता हूँ, पर तुम्हारी धारणाके साथ शायद वह न मिले । "

उसने प्रत्युत्तरमें कहा, " नहीं जानती कि तुम्हारा क्या ख्याल है। पर उस दिनसे मैंने अकेले ही अपने ख्यालके अनुसार समझ लिया है गुसाई, कि गर्वके साथ तुम कितने ही लोगोंको कहते हुए सुनोगे कि कुछ भी नहीं होता। वे अनेक आदमियोंका उदाहरण देकर अपनी बात प्रमाणित करना चाहेंगे। पर इसकी तो कोई जरूरत नही। इसका प्रमाण है मन्मथ और प्रमाण हूँ मैं खुद। आज भी हम लोगोंका कुछ नहीं हुआ। अगर कुछ होता तो मैं इसे इतना भयकर न कहती, पर ऐसा तो नहीं है, इसका दण्ड भोगते है निरपराध और निर्दोष लोग। यतीनको आत्महत्याका बडा डर था, पर उसीसे वह अपनी दीदीके अपराधका प्रायश्चित्त कर गया। कहो गुसाई, इससे और अधिक भयकर तथा निष्ठुर ससारमे क्या है?—पर ऐसा ही होता है, इसी तरह भगवान् शायद अपनी सृष्टिकी रक्षा करते हैं। "

इस विषयमे बहस करनेसे कोई फायदा नही। युक्ति और भाषा,—कोई भी प्राजल नही है, तथापि यही ख्याल किया कि दुष्कृतिकी शोकाच्छन्न स्मृतिने शायद इसी पथपर चलकर पाप-पुण्यकी उपलब्धि अर्जन की हैं और उससे सान्त्वना पाई है।

" कमललता, इसके बाद क्या हुआ ? "

यह सुनकर वह सहसा मानो व्याकुल होकर कह उठी, " सच बताओ गुसाई, इसके बाद भी मेरी बाते सुननेकी इच्छा होती है ? "

" सच ही कह रहा हूँ, होती है। "

वैष्णवीने कहा, " मेरा भाग्य है जो इस जन्ममे तुम्हारे दर्शन फिर हुए।" यह कह कुछ देर तक चुपचाप मेरी ओर देखते देखते वह फिर कहने लगी, " कोई चार दिन बाद एक मरा हुआ लड़का पैदा हुआ। उसे गंगाके किनारे विसर्जित कर गंगामें नहाकर घर लौट आई। पिताजीने रोकर कहा, " अब तो मैं नहीं रह सकता बेटी। "

" हॉ पिताजी, अब आप मत रहिए, आप घर लौट जाइए। बहुत दुख दिया, अब आप मेरी फिक्र न करे। "

पिताजीने पूछा, " बीचमे खबर दोगी न बेटी ? "

" नही पिताजी, मेरी खबर लेनेकी आप अब चेष्टा न कीजिएगा। "

" पर उषा, तुम्हारी माँ अब भी जीवित है ! "

" मैं मरूँगी नहीं पिताजी, पर मेरी सती-लक्ष्मी माँसे कह देना कि उषा मर गई। माँको दुःख तो होगा, पर लड़की जिन्दा है, जानकर और भी ज्यादा दुःख होगा। आँखोंके अश्रु पोंछकर पिताजी कलकत्ते चले गये।"

मैं चुप बैठा रहा, कमललता कहने लगी, " पासमें रुपया था,—मकानका किराया चुकाकर मैं भी निकल पड़ी। सगी-साथी मिल गये, वे सब श्रीवृंदावन-धाम जा रहे थे, मैं भी साथ हो ली।"

वैष्णवीने कुछ रुककर कहा, " इसके बाद कितने तीर्थ, कितना पथ, और कितने पेड़ोंके नीचे अनेक दिन कट गये—"

" यह जानता हूँ, पर सैकड़ो साधुओंकी सैकड़ो आँखोंकी दृष्टिका विवरण तो तुमने बताया ही नहीं, कमललता!"

वैष्णवी हँस पड़ी। बोली, " बाबाजी लोगोंकी दृष्टि अतिशय निर्मल है, उनके बारेमें अश्रद्धाकी बातें नहीं करना चाहिए गुसाईं।"

" नहीं नहीं, अश्रद्धा नहीं। अतिशय श्रद्धाके साथ ही उनकी कहानी सुनना चाहता हूँ कमललता।"

इस दफा वह नहीं हँसी, पर दबी हुई हँसी छिपा भी न सकी। बोली, " जो बाबाजी प्रेम करते हैं उनसे सब बातें खोलकर नहीं कही जाती, हमारे वैष्णव-शास्त्रमें मनाही है।"

" तो रहने दो। सब बातोंका काम नहीं, पर एक बात बताओ। गुसाईंजी द्वारिकादास कहाँ मिले?"

कमललताने सकोचसे जीभ काटकर और कपालपर हाथ देकर कहा, " मजाक नहीं करना चाहिए, वे मेरे गुरुदेव हैं गुसाईं।"

" गुरुदेव? तुमने उनसे ही दीक्षा ली है?"

" नहीं, दीक्षा तो नहीं ली है, पर वे उतने ही पूजनीय हैं।"

" पर इतनी सारी वैष्णवियाँ,—सेवा-दासियाँ क्या—"

कमललताने फिर जीभ काटकर कहा, " वे सब मेरी ही तरह उनकी शिष्या हैं। उनका भी उन्होंने ही उद्धार किया है।"

" निश्चय ही किया है, पर 'परकीया साधना'—या कुछ ऐसी ही जो एक साधना-पद्धति तुम लोगोंकी है—उसमें तो कोई दोष नहीं—"

वैष्णवीने मुझे रोककर कहा, " तुम लोगोंने दूर रहकर सिर्फ हमारा

हँसी-मज़ाक ही उड़ाया है, नज़दीक आकर कभी कुछ देखा तो है नहीं, इसीलिए आसानीसे व्यग कर सकते हो। हमारे बडे गुसाईजी सन्यासी हैं, उनका उपहास करनेसे पाप होता है नूतन गुसाई,—ऐसी बाते फिर कभी जबानपर मत लाना।"

उसकी बातों और गभीरतासे कुछ हतप्रभ हो गया। वैष्णवीने यह लक्ष्य कर जरा मुस्कुराते हुए कहा, "दो दिन हम लोगोंके पास यहीं रहो न गुसाई। केवल बडे गुसाईजीके लिए ही नहीं कह रही हूँ, मुझे तो तुम प्यार करते हो, और कभी यदि मुलाकात न हो तो कमसे कम यह तो देख जाओ कि ससारमें कमललता सचमुचमे क्या लेकर ससारमे रह रही है। यतीनको मैं आज भी नहीं भूली हूँ,—दो दिन रहो, मैं कहती हूँ कि तुम यथार्थमे खुश होगे।"

चुप रहा। इन लोगोंके बारेमे एकदम ही कुछ न जानता होऊँ सो बात नहीं है। असल वैष्णवकी लडकी टगरकी याद आ गई। किन्तु मजाक करनेकी अब और प्रवृति नहीं थी। यतीनके प्रायश्चित्तकी घटना सारी आलोचनाके बीच रह रह कर जैसे मुझे भी उन्मना कर देती थी।

वैष्णवीने अचानक प्रश्न किया, "क्यों गुसाई, इस उम्रमे भी सचमुच तुमने कभी किसीको प्यार नहीं किया?"

"तुम्हारा क्या ख्याल होता है कमललता?"

"मेरा ख्याल होता है, नहीं। तुम्हारा मन असली वैरागीका मन है,—उदासीनका—तितलीकी तरह। तुम कभी किसी बन्धनको नहीं मानोगे।"

मैने हँसकर कहा, "तितलीकी उपमा तो अच्छी नहीं है कमललता, यह तो सुननेमे बहुत कुछ गाली जैसी है। मेरा प्रेमपात्र सचमुचमे ही यदि कहीं कोई हो, तो उसके कानोंमे इसकी भनक पडनेपर अनर्थ हो जायगा।" वैष्णवी हँसी, बोली, "डरकी कोई बात नहीं गुसाई, वास्तवमे यदि कोई हो तो मेरी बातका वह विश्वास न करेगी, और तुम्हारी मधुमिश्रित चालाकी भी वह जीवन-भर नहीं पकड़ सकेगी।"

"तो फिर उसे दुःख किस बातका? हो न चालाकी, परन्तु उसके निकट तो वही सही रहेगी।"

वैष्णवीने सिर हिलाकर कहा, "ऐसा नहीं होता गुसाई। सत्यका स्थान

झूठ कभी नहीं ले सकता। वे भले ही न समझें, कारण भले ही उनके लिए स्पष्ट न हो, तो भी उनका अतर निरतर अश्रुमुख ही रहेगा। मिथ्याका काण्ड तो देखते ही हो, इसी तरह इस रास्तेपर न जाने कितने लोग आये। यह पथ् जिनके लिए सत्य नही है, उनकी सारी साधना जलकी धाराके तलकी सूखी बालूकी तरह हमेशा ही अलग अलग रही है कभी एकत्रित नहीं हुई।"

कुछ ठहर कर वह मानों अचानक मन ही मन बोल उठी, "वे रसके मर्मतक तो पहुँचते नही, इसीलिए प्राणहीन निर्जीव मूर्तिकी निरर्थक सेवा करते करते उनका जी दो दिनमे ही हॉफ जाता है,—सोचते हैं कि यह किस मोहके अंधकारमे अपनेको दिन-रात ठगते हुए मरे जा रहे हैं। ऐसे लोगोंको देखकर ही तुम लोग हमारा उपहास करना सीखते हो,—पर मै यह क्या फालतू बाते बक रही हूॅ गुसाई, इस सब असलग्न प्रलापकी एक बात भी तुम नही समझोगे। पर यदि तुम्हारी कोई ऐसी है, तो तुम उसे भले ही भूल जाओ, पर वह तुम्हे नही भूल सकेगी, और न कभी उसकी ऑखोंका पानी ही सूखेगा।"

मैने स्वीकार किया कि उसके वक्तव्यका प्रथम अंश मैने नही समझा, पर अन्तिम अशके प्रतिवादमे कहा, "तुम क्या मुझसे यही कहना चाहती हो कमललता, कि मुझको प्यार करनेका नाम ही है दु:ख पाना?"

"दुखकी बात तो नही कही गुसाई, कही है ऑखोके पानीकी बात।"

"पर कमललता, वे दोनो तो एक ही है, सिर्फ शब्दोका हेर-फेर है।"

वैष्णवीने कहा, "नही गुसाई, वह दोनो एक नहीं हैं। न तो शब्दोंका ही हेरफेर है और न भावका ही। औरते न इससे डरतीं ही है, और न उससे बचना ही चाहती हैं। पर तुम समझोगे कैसे?"

"जब कुछ नही समझूँगा तो फिर मुझसे यह सब कहती ही क्यों हो?"

"बिना कहे रहा भी नही जाता जी। प्रेमकी वास्तविकताको लेकर मर्दोंका दल जब अपनी बडाई किया करता है, तब सोचती हूॅ कि हमारी जाति उनसे अलग है। तुम लोगोके और हम लोगोंके प्यारकी प्रकृति ही भिन्न है। तुम लोग चाहते हो विस्तार और हम चाहती हैं गम्भीरता, तुम लोग चाहते हो उल्लास और हम चाहती हैं शान्ति। जानते हो गुसाई, कि प्रेमके नशेसे हम भीतर ही भीतर कितना डरती हैं। उसके उन्मादसे हमारे

हृदयकी धड़कन नहीं रुकती। ”

मैं कुछ प्रश्न करना चाहता था, किन्तु उसने मेरी ओर ध्यान ही नहीं दिया और भावोंके आवेगमे बोलना जारी रक्खा, “ वह हमारा सत्य भी नहीं है, हमारा अपना भी नहीं है। वह दौड-धूपकी चचलता जिस दिन रुकती है, केवल उसी दिन हम निःश्वास छोड़ कर आराम पाती हैं। ओ जी नये गुसाई, प्रेमकी बडीसे बडी प्राप्ति, स्त्रियोके लिए, निर्भयताकी अपेक्षा और कुछ नही है। पर यही चीज तुम लोगोंसे कोई कभी नहीं पाती। ”

“ यह निश्चयपूर्वक जानती हो, कि नहीं पाती ? ”

वैष्णवीने कहा, “ निश्चयपूर्वक जानती हूँ। इसीलिए तो तुम्हारी बडाई मुझे सहन नहीं होती। ”

आश्चर्य हुआ। कहा, “ तुम्हारे निकट बडाई तो कभी नहीं की कमललता ?”

उसने कहा, “ जान-बूझकर नही की, पर तुम्हारा यह उदासीन वैरागी मन,—जगतमे इससे बढकर अहकारसे भरा हुआ और भी कुछ है क्या ? ”

“ पर इन दो दिनोंमें ही तुमने मुझे इतना कैसे जान लिया ? ”

“ जान गई, क्योंकि तुम्हे प्यार जो किया है। ”

सुनकर मन ही मन कहा, तुम्हारे दुःख और ऑखोंके अश्रुओका प्रभेद इतनी देर बाद अब समझा हूँ कमललता! माल्म होता है, अविश्राम पूजा और रसकी आराधनाका परिणाम ऐसा ही होता है।

“ प्यार किया है, यह क्या सच है कमललता ? ”

“ हॉ, सच है। ”

“ पर तुम्हारा जप-तप, तुम्हारा कीर्तन, तुम्हारी रात-दिनकी ठाकुर-सेवा, —इन सबका क्या होगा, बताओ ? ”

वैष्णवीने कहा, “ तब ये सब मेरे लिए और भी सत्य, और भी सार्थक हो उठेगे। चलो न गुसाई, सब कुछ छोड़-छाड़कर दोनों जने रास्तेपर निकल पडे। ”

मैंने सिर हिलाकर कहा, “ यह नहीं होगा कमललता, कल मैं चला जा रहा हूँ। पर जानेके पहले गौहरके बारेमे जाननेकी इच्छा होती है। ”

वैष्णवीने सिर्फ निःश्वास छोडकर कहा, “ गौहरके बारेमे ? नहीं, उसे सुननेका तुम्हारा काम नहीं। क्या सचमुच ही कल जाओगे ? ”

"हाँ, सच ही कल जाऊँगा।"

क्षणभरके लिए स्तब्ध रह कर वैष्णवीने कहा, "किन्तु इस आश्रममें यदि तुम फिर कभी आओगे गुसाईं, तो कमललताको फिर न खोज पाओगे।"



इस विषयमे सन्देह न था कि अब यहाँ एक क्षण रहना भी उचित नही। पर उसी समय मानो कोई आड़मे खडा होकर आँख बन्द कर इशारेसे निषेध करता है। कहता है, 'जाओगे क्यों? यही सोचकर ही तो आये थे कि छह-सात दिन रहेंगे,—रहो न। तकलीफ तो कुछ है नही।'

रातको बिछौनेपर लेटा हुआ सोच रहा था कि ये कौन हैं जो एक ही शरीरमे वास करके एक ही वक्त ठीक उल्टी राय देते हैं। किसकी बात ज्यादा सच है? कौन ज्यादा अपना है? विवेक, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति,—ऐसे ही न जाने कितने नाम हैं, इनकी न जाने कितनी दार्शनिक व्याख्याएँ हैं, पर सत्यको आज भी कौन निःसशय प्रतिष्ठित कर सका है? जिसको सोचता हूँ कि अच्छा है, इच्छा आकर वहीपर पैर बढानेमे बाधा क्यो डालती है? अपने ही अन्दरके इस विरोध,—इस द्वंद्वका शेष क्यो नहीं होता? मन कहता है कि मेरा चला जाना ही श्रेयस्कर है, चला जाना ही कल्याणकारी है। तो फिर दूसरे ही क्षण उस मनकी दोनो आँखोंमे आँसू क्यो भर आते हैं? बुद्धि, विवेक, प्रवृत्ति, मन,—इन सब बातोंकी सृष्टि करके सच्ची सान्त्वना कहाँ रह जाती है?

फिर भी जाना ही चाहिए, पीछे हटनेसे काम नही चलेगा। और सो भी कल ही। यही सोचने लगा कि इस जानेको कैसे सपन्न करूँ। बचपनका एक रास्ता जानता हूँ, वह है गायब हो जाना। बिदाकी वाणी नहीं, लौटकर आनेकी झूठी दिलासा नहीं, कारणका प्रदर्शन नही, प्रयोजनका,—कर्तव्यका विस्तृत विवरण नही; सिर्फ मैं था और अब मैं नही हूँ, इस सत्य घटनाके आविष्कारका भार उन लोगोंपर छोड देना जो पीछे रह गये हैं, बस। निश्चय कर लिया कि अब सोना तो होगा नही, ठाकुरजीकी मगल आरती शुरू होनेके पहले ही अधकारमे शरीर ढककर प्रस्थान कर दूँगा। पर दिक्कत यह है कि पूँटूके दहेजका रुपया छोटे बैगसमेत कमललताके पास है। लेकिन उसे रहने दो। कलकत्तेसे, और नहीं तो बर्मासे चिट्ठी भेज दूँगा, उससे एक काम यह

भी होगा कि जब तक उन्हे लौटा न देगी तब तक कमललताको बाध्य होकर यहीं रहना पड़ेगा, पथ-विपथपर जानेका सुयोग नहीं मिलेगा। जो कुछ रुपये मेरे कुरतेकी जेबमें पडे हैं, वे कलकत्ते तक पहुँचनेके लिए काफी हैं।

बहुत रात इसी तरह कट गई। चूँकि बार बार सकल्प किया था कि सोऊँगा नहीं, शायद इसी कारण न जाने कब सो गया! पता नहीं कि कितनी देरतक सोया, पर अचानक ऐसा लगा कि स्वप्नमे गाना सुन रहा हूँ। एक बार ख्याल किया कि रातका व्यापार शायद अभीतक समाप्त नही हुआ है, फिर सोचा कि शायद प्रत्यूषकी मगल आरती शुरू हो गई है, पर कॉसेके घटेका सुपरिचित दुःसह निनाद नही है। असपूर्ण अपरितृप्त निद्रा टूट कर भी नही टूटती, आँखे खोलकर देखा भी नहीं जा सकता। किन्तु, कानोंमें प्रभातीके सुरमे मीठे कण्ठका सादर धीमा आह्वान पहुँचा :

जागिये गोपाल लाल, पंछी वन बोले।
रजनीकौ अन्त भयो, दिनने पट खोले॥

"गुसाईंजी, और कितनी देरतक सोओगे? उठो।"

बिछौनेपर उठ बैठा। मसहरी उठाई, पूर्वकी खिडकी खुली हुई है,— सामनेकी आम्र शाखाओमे पुष्पित लवग-मजरीके कई बडे बडे गुच्छे नीचे-तक झूल रहे हैं। उनकी सैधोमेंसे दिखाई दिया कि आकाशमे कई जगह हल्के लाल रगका आभास है, जैसे अँधेरी रातमे सुदूर ग्रामके अतमे आग लग गई हो।—मनमे कही कुछ व्यथा-सी होने लगी। कुछ चमगीदड उड करके अपने आवासोंको लौट रहे हैं। उनके पखोकी फड़फड़ाहट बार बार कानोंमे आने लगी। ऐसा लगने लगा कि रात्रि खत्म हो रही है। यह नीलकण्ठो बुलबुलो और श्यामा पक्षियोका देश है। मानो, यह उनकी राजधानी 'कलकत्ता शहर' है और यह विशाल बकुल-वृक्ष (मौलसिरी) उनके लेन-देन और काम-काजका 'बड़ा बाजार' है, जहाँ दिनके वक्तकी भीड़ देखकर अवाक् हो जाना पडता है। तरह तरहकी शकले, तरह तरहकी भाषा और रग-बेरगी पोशाकका बहुत ही विचित्र समावेश है। रातको अखाडेके चारों ओरके वनमे डाल डालपर उनके अगणित अड्डे हैं। नींद खुल जानेकी आहट कुछ कुछ पाई गई। उससे मालूम हुआ कि मानो हाथ-मुँह धोकर वे तैयारी कर रहे हैं। अब सारे दिन चलनेवाले नाच-गानका महोत्सव

शुरू होगा। ये सब लखनऊके उस्ताद हैं जो थकते भी नहीं और कसरत भी बन्द नहीं करते। भीतर वैष्णवोंका कीर्तन शायद कभी बन्द भी हो जाय, परन्तु बाहर इस बलाके बन्द होनेकी संभावना नहीं है। यहाँपर छोटे-बड़े भले-बुरेका विचार नहीं है। इच्छा और समय चाहे हो या न हो, गाना तुम्हे सुनना ही पडेगा। इस देशकी, मालूम होता है, यही व्यवस्था है, यही नियम है। याद आया, कल सारी दोपहरी-भर पीछेके बाँसके बनमे दो पपीहोंके उच्च गलेकी 'पिया पिया' पुकारकी अविश्रान्त होडसे मेरी दिवा-निद्रामे काफी विघ्न हुआ था, इसपर मेरी ही तरह क्षुब्ध हुआ कोई जल-काक नदी-किनारेके वृक्षपर बैठकर और भी कठोर कण्ठसे बार बार उनका तिरस्कार करके भी उन्हे चुप नहीं कर सका था। भाग्य अच्छा था कि इस देशमे मोर नहीं हैं, नही तो उनके इस उत्सवके अखाडेमें आ पहुँचनेपर तो मनुष्य टिक ही नहीं पाता। सो जो भी हो, दिनका उपद्रव अब भी शुरू नही हुआ था। शायद और भी थोडा-सा निर्विघ्न सो सकता किन्तु इसी समय गत रात्रिका सकल्प याद आ गया। परन्तु, अब चुप-चाप खिसक चलनेका भी मौका नहीं रहा, प्रहरियोंकी सतर्कतासे काम बिगड चुका था। नाराज होकर बोला, "मैं 'गोपाल' भी नही हूँ और मेरे बिछौनेमे लाल भी नही हैं। इस समय आधी रातको सोतेसे जगानेकी भला कहो तो क्या जरूरत थी?"

वैष्णवीने कहा, "रात कहाँ है गुसाई, तुम्हारी तो आज सुबहकी गाडीसे कलकत्ते जानेकी बात थी! मुँह-हाथ धो लो, मैं चाह तैयार कर लाती हूँ। नहाना नहीं। आदत नहीं है, बीमार पड सकते हो।"

"हाँ, बीमार पड सकता हूँ। सुबहकी गाड़ीसे जब मेरी इच्छा होगी चला जाऊँगा, पर यह तो बताओ कि तुम्हे इस विषयमे इतना उत्साह क्यों है?"

उसने कहा, "और किसीके उठनेके पहले मै तुम्हे बड़े रास्तेतक पहुँचा जो आना चाहती हूँ गुसाई।" उसका चेहरा स्पष्टतः नहीं दिखाई दिया, पर बिखरे हुए बालोंकी ओर देखकर कमरेकी इतनी कम रोशनीमें भी यह जान गया कि वे गीले हैं, स्नानसे निबटकर वैष्णवी तैयार हो गई है।"

"मुझे पहुँचाकर फिर आश्रममे ही लौट आओगी न?"

वैष्णवीने कहा, "हाँ।"

रुपयोकी उस छोटी-सी थैलीको बिछौनेपर रख उसने कहा, "यह रहा तुम्हारा बैग। रास्तेमे होशयारी रखना,--रुपये एक बार देख लो।"

एकाएक कुछ कहनेके लिए शब्द न सूझे। फिर कहा, "कमललता, तुम्हारा इस रास्तेपर आना मिथ्या है। एक दिन तुम्हारा नाम था उषा, आज भी वही उषा हो,--जरा भी नहीं बदल सकी हो।"

"क्यों, बताओ?"

"तुम भी कहो कि मुझसे रुपये गिननेके लिए क्यो कहा? गिन सकता हूँ यह क्या तुम सच समझती हो? जो सोचते कुछ और हैं और कहते कुछ और हैं उन्हे कपटी कहते है। जानेके पहले मैं बडे गुसाईजीसे शिकायत कर जाऊँगा कि आश्रमके खातेसे तुम्हारा नाम काट दे। तुम वैष्णव दलके लिए कलक हो।"

वह चुप रही। मैं भी क्षणभर मौन रहकर बोला, "आज सुबह मेरी जानेकी इच्छा नही है।"

"नही है? तो थोड़ी देर और सो लो। उठनेपर मुझे खबर देना,--क्यो?"

"पर तुम अभी क्या करोगी?"

"मुझे काम है। फूल चुनने जाऊँगी।"

"इस अन्धकारमे? डर नहीं लगता?"

"नही, डर किसका? सुबहकी पूजाके फूल मै ही चुन कर लाती हूँ। नही तो उन लोगोको बडी तकलीफ होती है।"

'उन लोगो'के माने अन्यान्य वैष्णवियाँ। यहाँ दो दिन रहकर यह गौर कर रहा था कि सबकी आडमे रहकर मठका समस्त गुरु भार कमललता ही अकेली वहन करती है। सब व्यवस्थाओमे उसका कर्तृत्व है सबके ऊपर, किन्तु स्नेहसे, सौजन्यसे और सर्वोपरि सविनय कर्मकुशलतासे यह कर्तृत्व इतनी सहज शृंखलामे प्रवहमान है कि कही भी ईर्ष्या-विद्वेषका जरा-सा भी मैल नहीं जमने पाता। यह सोचकर मुझे भी क्लेश हुआ कि यही आश्रम-लक्ष्मी आज उत्कण्ठ व्याकुलताके साथ जाऊँ जाऊँ कर रही है। यह कितनी बड़ी दुर्घटना है, कितनी बडी निरुपाय दुर्गतिमे इतने निश्चिन्त नर-नारी गिर पड़ेंगे। इस मठमे सिर्फ दो दिनसे हूँ, पर न जाने कैसा एक आकर्षण अनुभव

कर रहा हूँ,—ऐसा मनोभाव हो गया है कि मानो इसकी आन्तरिक शुभाकाक्षा चाहे बिना रह ही नही सकता। सोचा, लोग यह गलत कहते हैं कि सबको मिला कर आश्रम है और यहाँ सभी समान हैं। पर यह मानों ऑखोके सामने ही देखने लगा कि इस एकके अभावमे केद्रभ्रष्ट उपग्रहकी तरह समस्त आयतन ही दिशा-विदिशाओंमे विच्छिन्न-विक्षिप्त हो कर टूट सकता है, कहा, "और नहीं सोऊँगा कमललता, चलो तुम्हारे साथ चलकर फूल चुन लाऊँ।"

वैष्णवीने कहा, "तुमने स्नान नही किया है, कपडे भी नही बदले हैं,—तुम्हारे छुए हुए फूलोसे कैसे पूजा होगी?"

मैंने कहा, "फूल मत तोडने देना, पर डालको नीचा कर पकड़ने तो दोगी? यह भी तुम्हारी सहायता होगी।"

वैष्णवीने कहा, "डाल नीची करनेकी जरूरत नहीं होती, छोटे छोटे पेड हैं,—मैं खुद ही कर लेती हूँ।"

कहा, "कमसे कम साथ रहकर सुख-दुखकी दो-चार बाते तो कर सकूँगा? इसमे भी तुम्हारी मेहनत कम होगी।"

इस बार वैष्णवी हँसी। बोली, "यकायक इतना दरद दो आया गुसाई!—अच्छा, चलो। मैं डलिया ले आऊँ, इतनेमे तुम हाथ-मुँह धोकर कपडे बदल लो।"

आश्रमके बाहर थोडी दूरपर फूलोका बगीचा है। घने छायादार आम्र-वनके भीतरसे रास्ता है। सिर्फ अन्धकारके कारण ही नही बल्कि सूखे पत्तोके ढेरोंके कारण पथकी रेखा विलुप्त हो गई है। वैष्णवी आगे आगे और मै पीछे पीछे चला, तो डर लगने लगा कि कही साँपपर पैर न पड जाय।

कहा, "कमललता, रास्ता तो नही भूलोगी?"

"नही, कमसे कम आज तो तुम्हारे लिए रास्ता पहचानकर चलना पड़ेगा।"

"कमललता, एक अनुरोध रखोगी?"

"कौन-सा अनुरोध?"

"यहाँसे तुम और कहीं नहीं जाओगी।"

"जानेसे तुम्हारा क्या नुकसान है?"

जवाब नहीं दे सका, चुप हो रहा।

"मुरारी ठाकुरने कहा है कि 'हे सखी, अपने घर लौट जाओ, जिसने जीते

हुए भी मर कर अपनेको खो दिया है, उसे तुम अब क्या समझाती हो?'
—'गुसाईं, शामको तुम कलकत्ते चले जाओगे, और अब यहाँ शायद एक प्रहरसे ज्यादा ठहर न सकोगे,—क्यों?"

"क्या पता, पहले सुबह तो होने दो।"

वैष्णवीने जवाब नहीं दिया, कुछ देर बाद गुनगुनाकर गाने लगी—

चण्डिदास कहे सुन विनोदिनी, सुख-दुख दोनों भाई।
सुखके कारण प्रीति करे जो, दुख भी ता ढिग जाई॥

रुकने पर कहा, "इसके बाद?"

"इसके बाद और नहीं याद।"

कहा, "तो कुछ और गाओ—"

वैष्णवीने वैसे ही मृदु स्वरमे गाया—

चण्डिदास कहे सुन विनोदिनी, प्रीतिकी बात न भावै।
प्रीतिके कारन प्रान गँवावे, आखिर प्रीति ही पावे॥

इस बार भी उसके रुकनेपर बोला "इसके बाद?"

वैष्णवीने जवाब दिया, "इसके बाद और नहीं है, यहीं शेष है।"

इसमे शक नहीं कि शेष ही है। दोनों ही चुप हो रहे। बहुत इच्छा होने लगी कि द्रुतपदोंसे नजदीक जाकर और कुछ कहकर इस अन्धकार-पथपर उसका हाथ पकड कर चलूँ। जानता हूँ कि वह नाराज नहीं होगी, बाधा नहीं देगी, पर किसी भी तरह पैर नहीं चले, मुँहसे भी एक शब्द नहीं निकला। जैसे चल रहा था वैसे ही धीरे धीरे चुपचाप जगलके बाहर आ पहुँचा।

रास्तेके किनारे बाँसोंके घेरेसे घिरा हुआ आश्रमका फूलोंका एक बगीचा है। ठाकुरजीकी दैनिक पूजाके लिए यहींसे फूल आते हैं। खुली हुई जगहमे अन्धकार नहीं है पर उजेला भी उतना नहीं हुआ है। फिर भी देखा कि अगणित खिले हुए चमेलीके फूलोंसे सारा बगीचा मानों सफेद हो रहा है। सामनेके पत्ते झडे हुए मुडे चम्पेके झाडमें तो फूल नहीं हैं, परन्तु, उसके पास ही कहीं कुछ रजनीगन्धाके फूल असमयमे फूल रहे हैं। जिनकी मधुर गन्धसे उस त्रुटिकी पूर्ति हो गई है। और सबसे अधिक मनको लुभा लेनेवाला था बीचका हिस्सा। रात्रिके अन्तमें इस धुँधले आलोकमे पहचाने जाते थे एक दूसरेसे भिड़े हुए झुण्डके झुण्ड गुलाबके झाड,—

जिनमें बेशुमार फूल थे और जो सहस्रों फैली हुई लाल आँखोसे बगीचेकी दिशाओंकी ओर मानो ताक रहे थे। पहले कभी इतने सबेरे शय्या छोड़कर नहीं उठा था, यह समय हमेशा निद्राच्छन्न जडताकी अचेतनतामे कट जाता है। बता नहीं सकता कि आज कितना अच्छा लगा। पूर्वके रक्तिम दिगन्तमे ज्योतिर्मयका आभास मिल रहा है, उसकी निःशब्द महिमासे सारा आकाश शान्त हो रहा है। यह लतिकाओं और पत्तोंसे, शोभा और सौरभसे और अगणित फूलोंसे परिव्याप्त सम्मुखका उपवन,—सभी मिलकर ऐसा लगा कि जैसे यह रात्रिकी समानप्राय वाक्यहीन बिदाकी अश्रुरुद्ध भाषा हो। करुणा, ममता और अयाचित दाक्षिण्यसे मेरा समस्त अन्तर पलक मारते ही परिपूर्ण हो उठा, सहसा कह उठा, " कमललता, जीवनमें तुमने अनेक दुख-दर्द पाये है, प्रार्थना करता हूँ कि इस बार तुम सुखी होओ। "

वैष्णवी फूलोंकी डलियाको चम्पेकी डालपर लटका कर सामनेकी बाढका दरवाजा खोल रही थी कि उसने आश्चर्यसे लौटकर देखा और कहा, " अचानक तुम्हे हो क्या गया गुसाई ? " अपनी बाते अपने ही कानोंमे न जाने कैसी बेढगी लग रही थी, उसपर उसके सविस्मय प्रश्नसे मन ही मन बहुत अप्रतिभ हो गया। कोई जवाब नही सूझा, लज्जाको ढकनेके लिए एक अर्थहीन हँसीकी चेष्टा भी ठीक तरह सफल नही हुई, अन्तमे चुप हो रहा।

वैष्णवीने भीतर प्रवेश किया, साथ ही मैंने भी। फूल तोडते हुए उसने खुद ही कहा, " मैं सुखमे ही हूँ गुसाईं। जिनके पाद-पद्मोंमें अपनेको निवेदन कर दिया है वे दासीका कभी परित्याग नही करेंगे। "

सन्देह हुआ कि अर्थ काफी साफ नही है, पर यह कहनेका साहस भी नही हुआ कि स्पष्ट करके कहो। वह मृदु स्वरसे गुनगुनाने लगी—

गलेमें श्याम माणिकोंकी मंजु मालायें डालूँगी,
और कानोंमें नवकुंडल, श्याम-गुण-यशके धारूँगी।
श्यामके ही अनुराग-रँगे, पीत पट सुन्दर पहनूँगी,
योगिनी बनकरके वन वन, और पथ पथ पर भटकूँगी॥
कहे यदुनाथदास—

गीत रोकना पड़ा। कहा, " यदुनाथदासको रहने दो, उधर झलरीकी आवाज सुन रही हो, लौटोगी नही ? " उसने मेरी ओर देखकर मृदु हास्यसे

फिर शुरू कर दिया—

धर्म औ कर्म सभी जावें, नहीं डरती हूँ मैं इससे।
कहीं इस चक्करमें पड़कर, हाथ धो बैठूँ प्रीतमसे॥

" अच्छा, नये गुसाई, जानते हो कि बहुतसे भले आदमी औरतोंका गाना नहीं सुनना चाहते, उन्हें बहुत बुरा लगता है। "

मैंने कहा, " जानता हूँ। किन्तु मैं उन 'भले बर्बरों'मे नही हूँ। "

" तो बाधा डालकर मुझे रोका क्यो ? "

" उधर तो शायद आरती शुरू हो गई है,—तुम्हारे न रहनेसे उसमे कमी रह जायगी। "

" यह मिथ्या छलना है गुसाई। "

" छलना क्यो है ? "

" क्यों, सो तुम भी जानते हो। पर यह बात तुमसे कही किसने कि मेरे न रहनेपर ठाकुरजीकी सेवामे सचमुच ही कमी हो सकती है ? इसपर क्या तुम विश्वास करते हो ? "

" करता हूँ। मुझे किसीने नही कहा कमललता, मैंने खुद अपनी ऑखोंसे देखा है। "

उसने और कुछ नही कहा, न जाने कैसे अन्यमनस्क भावसे क्षणकाल तक वह मेरे मुँहकी ओर ताकती रही और उसके बाद फूल तोडने लगी।

डलिया भर जानेपर बोली, " बस, अब और नही। "

" गुलाब नही चुने ? "

" नही, उन्हे हम नही तोडती, यहींसे भगवानको निवेदन कर देती हैं। चलो, अब चलें। "

उजाला हो गया है। पर यह मठ ग्रामके एकान्तमे है,—इधर कोई ज्यादा आता-जाता नही, इसलिए तब भी वह पथ जन-हीन था और अब भी है। चलते चलते एक बार फिर वही प्रश्न किया, " तुम क्या सचमुच यहॉसे चली जाओगी ? "

" बार बार यह बात पूँछनेसे तुम्हे क्या लाभ होगा गुसाई ? "

इस बार भी जवाब न दे सका, सिर्फ अपने आपसे पूछा, सच तो है, बार बार यह बात क्यों पूछता हूँ ?—इससे मेरा लाभ ?

मठमे लौटकर देखा कि इस बीच सभी लोग जागकर दैनिक कामोंमे लग गये हैं। उस वक्त झलरीकी आवाजसे व्यस्त होकर वृथा ही जल्दी मचाई थी। मालूम हुआ कि वह मंगल-आरती नही थी सिर्फ ठाकुरजीकी निद्रा भग करनेका बाजा था। यह उन्हे ही सुहाता है।

हम दोनोको अनेकोने देखा, पर किसीके भी देखनेमे कौतूहल नहीं था। कम-उम्र होनेके कारण सिर्फ पद्मा एक बार मुस्कराई और फिर मुँह नीचा कर लिया। वह ठाकुरजीकी माला गूँथती है। उसके पास डलिया रख-कर कमललताने सस्नेह कौतुकसे तर्जन करके कहा, "हँसी क्यो जलमुँही ?"

किन्तु उसने मुँह ऊपर नहीं उठाया। कमललताने ठाकुरजीके कमरेमे प्रवेश किया, और मै भी अपने कमरेमे दाखिल हुआ।

स्नान और आहार यथारीति और यथासमय सम्पन्न हुआ। शामकी गाडीसे मेरे जानेकी बात थी। वैष्णवीको खोजने गया तो देखा कि वह ठाकुरजीके कमरेमे है और उन्हे सजा रही है। मुझे देखते ही बोली, "नये गुसाई, यदि आये हो तो कुछ मेरी सहायता भी करो। पद्मा सिरदर्द लेकर पडी है और लक्ष्मी-सरस्वती दोनो बहिनोको एकाएक बुखार आ गया है,—क्या होगा कुछ समझमे नही आता। वासन्ती रगके इन दो कपडोमे चुन्नट डाल दो न गुसाई।"

अतएव ठाकुरके कपडोमे चुन्नट डालने बैठ गया। उस दिन जाना न हो सका। दूसरे दिन भी नहीं और उसके बादवाले दिन भी नही। मै बड़े सबेरे वैष्णवीके फूल तोडनेका साथी बन गया। प्रभातमे, मध्याह्नमें, सन्ध्याको,—कुछ न कुछ काम वह मुझसे करा ही लेती है। इसी प्रकार स्वप्नकी तरह दिन कटने लगे। स्वच्छतामे, सहृदयतामे, आनन्दमे, आराधनामे, फूलोमे, गन्धमे, कीर्तनमे, पक्षियोंके गानमें,—कहीं भी कोई छिद्र नहीं, फिर भी सन्दिग्ध मन बीच बीचमे सजग हो भर्त्सना कर उठता है कि कह क्या खिलवाड कर रहे हो? बाहरके सारे सम्बन्ध तोडकर इन थोडेसे निर्जीव खिलौनोके पीछे यह कैसा पागलपन कर रहे हो? इतनी बडी आत्म-वचनामे मनुष्य जीवित कैसे रहता है? फिर भी यह अच्छा लगता है, जाऊँ जाऊँ करके भी पैर नही बढा पाता! इस तरफ मलेरिया कम है, फिर भी इस समय अनेक लोग ज्वरग्रस्त हो रहे हैं। गौहर सिर्फ एक दिन आया था, फिर नही आया। उसकी खोज-

खबर लेनेका समय भी नहीं निकाल पाता ! यह मेरी दशा अच्छी हुई !

सहसा मन भय और धिक्कारसे भर गया,—यह मैं कर क्या रहा हूँ ? सगति-दोषसे क्या एक दिन यह सब सत्य मान बैठूँगा ? स्थिर किया, अब नहीं, चाहे कुछ भी क्यों न हो, कल यह जगह छोड़कर मुझे भागना ही पडेगा ।

हर रोज रातके अन्तमें वैष्णवी आकर जगा देती है । प्रभातीके स्वरमें वैष्णव कवियोंका नींद उड़ा देनेवाला वह गीत भक्ति और प्रेमका कितना सकरुण आवेदन होता है ! हठात् उत्तर नहीं देता, कान लगाकर सुनता रहता हूँ । ऑखोंके कोनोंमे ऑसू आ जाना चाहते हैं । मसहरी उठाकर जब वह खिडकी और दरवाजा खोल देती है तब नाराज होकर उठ बैठता हूँ, और मुँह धो कपडे बदलकर साथ चल देता हूँ ।

कई दिनोंकी आदतकी वजहसे आज अपने आप ही नींद खुल गई । कमरेमें अंधकार है । एक बार ऐसा लगा कि रात अभी खत्म नही हुई है, परन्तु फिर सन्देह हुआ । बिछौना छोड़कर बाहर आया,—देखता हूँ कि रात कहाँ है, सबेरा हो गया है । किसीके खबर देते ही कमललता आकर खडी हो गई । उसका ऐसा अस्नात अप्रस्तुत चेहरा इसके पहले नही देखा था ।

डरसे पूछा, " तुम्हारी तबियत क्या अच्छी नहीं है ? "

उसने म्लान हँसी हँसकर कहा, " गुसाईं, आज तुम जीत गये । "

" बताओ, कैसे ? "

" तबियत आज वैसी अच्छी नही है, वक्तपर नही उठ सकी । "

" तो आज फूल तोडने कौन गया ? "

ऑगनके एक ओर एक अधमरे तगरके पेडमे कुछ थोडेसे फूल लगे थे, उन्हीको दिखाकर बोली, " इस वक्त तो किसी तरह इन्हीसे काम चल जायगा । "

" पर ठाकुरके गलेकी माला ? "

" माला आज न पहना सकूँगी । "

सुनकर मन न जाने कैसा हो गया,—उन्ही निर्जीव खिलौनोंके लिए ! कहा, " नहाकर मैं तोड लाता हूँ । "

" तो जाओ, पर इतने सबेरे नहा नहीं सकोगे । बीमार पड़ जाओगे । "

" बड़े गुसाईंजी नहीं दिखाई देते ? "

वैष्णवीने कहा, "वे तो यहाँ हैं नहीं, परसों अपने गुरुदेवसे मिलने नवद्वीप गये हैं।"

"कब लौटेंगे?"

"यह तो पता नहीं गुसाईं।"

इतने दिनोंसे मठमे रहते हुए भी बैरागी द्वारिकादासके साथ घनिष्ठता नही हुई, कुछ तो मेरे अपने दोषसे और कुछ उनके निर्लिप्त स्वभावके कारण। वैष्णवीके मुँहसे सुनकर और अपनी ऑखोंसे देखकर जान गया हूँ कि इस आदमीमें न कपट है, न अनाचार और न मास्टरी करनेका चाव। उनका अधिकाश समय अपने निर्जन कमरेमें वैष्णव धर्म-ग्रन्थोके साथ व्यतीत होता है। इन लोगोके धर्म-मतपर न मेरी आस्था है, न विश्वास। पर इस व्यक्तिकी बातें इतनी नम्र, देखनेकी भगी इतनी स्वच्छ, गम्भीर तथा विश्वास और निष्ठासे अहर्निश ऐसी भरपूर रहती है कि उनके मत और पथके विरुद्ध आलोचना करनेमे सिर्फ सकोच ही नही बल्कि दुख होता है। अपने आप ही यह समझमे आ जाता है कि यहॉ तर्क करना बिलकुल निष्फल है। एक दिन एक मामूली-सी दलील करनेपर वे मुस्कुराते हुए इस तरह चुपचाप देखते रह गये कि कुठाके मारे मेरे मुँहसे और शब्द ही न निकले। उसके बादसे ही मै यथासाध्य उनसे बचकर चला हूँ। फिर भी एक कुतूहल बना रहा। इच्छा थी कि जानेके पहले इतनी नारियोसे घिरे रहनेपर भी, निरविच्छिन्न रसके अनुशीलनमें निमग्न रहनेपर भी, चित्तकी शान्ति और देहकी निर्मलताको अक्षुण्ण बनाये रखनेका रहस्य उनसे पूछ जाऊँगा। पर वह सुयोग इस यात्रामे अब शायद नहीं मिलेगा। मन ही मन सोचा कि फिर कभी यदि आना हुआ, तो देखा जायगा।

वैष्णवोंके मठोंमे भी ठाकुरजीकी मूर्तिको आम तौरपर ब्राह्मणके अलावा और कोई स्पर्श नहीं कर सकता, पर इस आश्रममे यह रीति नहीं है। ठाकुरका एक वैष्णव पुजारी बाहर रहता है, आज भी वह आकर यथारीति पूजा कर गया। पर ठाकुरकी सेवाका भार आज बहुत कुछ मुझपर आ पड़ा। वैष्णवी बतलाती जाती है और मैं सब काम करता जाता हूँ, पर रह रहकर सारा हृदय तिक्त हो उठता है। मुझपर यह क्या पागलपना सवार हो रहा है! आज भी जाना बंद रहा। अपनेको शायद यह कहकर समझाया

कि जब इतने दिनोंसे यहाँ हूँ, तब इस विपत्तिके समय इन लोगोंको कैसे छोड़ जाऊँ ? संसारमें कृतज्ञता नामकी भी तो कोई चीज है !

और भी दो दिन कट गये, किन्तु अब और नही। कमललता स्वस्थ हो गई है, पद्मा और लक्ष्मी-सरस्वती दोनों बहिनोंकी तबीयत भी ठीक हो गई है। द्वारिकादास कल शामको लौट आये हैं, उनसे बिदा माँगने गया। गुसाईजीने कहा, " आज जाओगे गुसाई ? अब कब आओगे ? "

" यह तो नहीं जानता गुसाईजी। "

" लेकिन कमललता तो रो-रोकर अधमरी हो जायगी। "

यह जानकर मन ही मन बहुत बिगडा कि इनके कानोंमे भी हमारी बात पहुँच गई है। कहा, " वह क्यो रोने लगी ? "

गुसाईजीने जरा हँसकर कहा, " शायद तुम नही जानते ? "

" नही। "

" उसका स्वभाव ही ऐसा है। किसीके चले जानेपर वह शोकमें अधमरी हो जाती है। "

यह बात और भी बुरी लगी। कहा, "जिसकी आदत ही शोक करनेकी है वह तो करेगा ही। मैं उसे रोक कैसे सकता हूँ ?" पर यह कहा और उनकी आँखोंकी तरफ देखकर मुँह फेरा ही था कि देखा, मेरे पीछे कमललता खडी है।

द्वारकादासने कुण्ठित स्वरमें कहा, "उसपर नाराज न होना गुसाई, सुना है कि ये सब तुम्हारी सेवा नहीं कर सकी और बीमार पडकर तुमसे बहुत काम लिया, अनेक कष्ट भी दिये। यह कल मुझसे इसके लिए स्वय ही दुख प्रकट कर रही थी। और फिर वैष्णव-बैरागियोंके पास सेवा-सत्कार करने लायक है ही क्या। किन्तु अगर कभी तुम्हारा यहाँ आना हो तो भिखारियोंको दर्शन दे जाना। दे जाओगे न गुसाई ? "

सिर हिलाकर बाहर निकल आया, कमललता वहींपर वैसी ही खडी रही। पर अकस्मात् यह क्या हो गया ! बिदा लेनेके वक्त न जाने कितना क्या कहने और सुननेकी कल्पना कर रक्खी थी !—सब नष्ट कर दी। अनुभव कर रहा था कि चित्तकी दुर्बलताकी ग्लानि अन्तरमें धीरे धीरे सञ्चित हो रही है, किन्तु यह स्वप्नमें भी नहीं सोचा था कि झुँझलाया हुआ असहिष्णु मन ऐसी अशोभन रूक्षतासे अपनी मर्यादा नष्ट कर बैठेगा !

नवीन आ पहुँचा। वह गौहरकी तलाशमे आया है, क्यों कि, वह कलसे अबतक घर नहीं लौटा है। बड़ा अचरज हुआ, " यह क्या नवीन, वह तो यहाँ भी अब नहीं आता ? "

नवीन विशेष विचलित न हुआ। बोला, " तो किसी वन-जंगलमें घूम रहे होंगे,—नहाना-खाना बन्द कर ही दिया है, अब कहीं सॉपके काटनेकी खबर मिलेगी तो निश्चिन्त हुआ जायगा। "

" पर नवीन, उसकी तलाश करना तो जरूरी है ! "

" मालूम है कि जरूरी है, पर तलाश कहॉ करूँ ? बाबू, जगलोंमें घूम घूमकर अपनी जान तो नही दे सकता ! पर वे कहाँ हैं ? एक बार उनसे और पूँछ लूँ। "

" 'वे' कौन ? "

" वही कमललता।

" पर उसे क्या मालूम होगा नवीन ? "

" वे नहीं जानती ? सब जानती हैं। "

और ज्यादा बहस न करके मैं उत्तेजित नवीनको मठके बाहर ले आया। कहा, " वास्तवमे नवीन, कमललता कुछ नही जानती। खुद बीमार होनेके कारण वह तीन-चार दिनसे अखाडेके बाहर भी नही निकली। "

नवीनने विश्वास नही किया। नाराज होकर कहा, " नही जानती ? वह सब जानती है। वैष्णवी कौन-सा मतर नही जानती ?—वह क्या नहीं कर सकती ! यदि कही वह नवीनके पल्ले पड़ी होती तो उसका ऑख-मुँह मटकाना और कीर्तन करना सब बाहर निकाल देता। लौंडेने बापके इतने रुपये पैसे मानों जादूमे उड़ा दिये ! "

उसे शात करनेके लिए कहा, " कमललता रुपये लेकर क्या करेगी, नवीन ? वैष्णवी है, मठमे रहती है, गाना गाकर, भीख माँगकर ठाकुर-देवताकी सेवा करती है। दो दफे दो मुट्ठी खाती ही तो है और क्या। इसलिए मुझे तो ऐसा नही लगा कि वह रुपयोंकी भिखारिनी है नवीन ! "

नवीन कुछ ठडा होकर बोला, " अपने लिए नही,—यह तो हम भी जानते हैं। देखनेमें भी वह भले घरकी लडकी जैसी लगती है। वैसा ही चेहरा और वैसी ही बातचीत। बड़े बाबाजी भी लोभी नही हैं, पर उन्होंने वैष्णवि-

योंका पूरा एक झुण्डका झुण्ड जो पाल रखा है ! ठाकुर-सेवाके नामपर उन लोगोंको हलुआ-पूड़ी और दूध-घी रोज जो चाहिए ! नयनचाँद चक्रवर्तीके मुँह यह घुसपुस सुनी है कि अखाड़ेके नाम बीस बीघा जमीन खरीदी गई है। कुछ भी नहीं रहेगा बाबू, जो कुछ है सब एक दिन इन बैरागियोंके पेटमें चला जायगा।"

कहा, "पर यह अफवाह शायद सच नहीं है। और फिर तुम्हारा वह नयन चक्रवर्ती भी तो कम नहीं है।"

नवीनने फौरन स्वीकार कर कहा, "यह ठीक है। वह धूर्त ब्राह्मण बड़ा झाँसेबाज है। पर कहिए, विश्वास कैसे न करूँ ? उस दिन खामख्वाह मेरे ही लड़केके नाम दस बीघा ज़मीन दान कर दी। बहुत मना किया पर नहीं सुना। मानता हूँ कि बाप बहुत रख गया है, पर बाबू, इस तरह बाँटनेसे कितने दिन चलेगा ? एक दिन क्या कहा, जानते हैं ? कहा, हम फकीरके वंशके हैं, फकीरी तो हमसे कोई छीन नहीं लेगा ?—लीजिए, सुनिए इनकी बातें !"

नवीन चला गया। एक बातपर ध्यान गया, यह उसने एक बार भी न पूछा कि मैं किसलिए इतने दिनोंसे मठमें पड़ा हुआ हूँ। नहीं जानता कि पूछता तो मैं क्या कहता, पर मन ही मन शर्मिंदा हुआ। उससे ही और एक खबर मिली कि कालिदास बाबूके लड़केका ब्याह कल धूमधामसे हो गया। सत्ताईस तारीखका मुझे ख्याल ही न रहा।

नवीनकी बातोंपर मन ही मन विचार करते करते अकस्मात् विद्युत्-वेगसे एक संदेह उठ खड़ा हुआ,—वैष्णवी किस लिए चली जाना चाहती है ? कहीं उस मोटी भौंहोंवाले कुरूप आदमीके डरसे तो नहीं जो कंठी बदलकर पाये हुए पतित्वका दावा करता है ? और यह गौहर ? मेरे यहाँ रहनेके सम्बन्धमें ही शायद इसी लिए वैष्णवीने उस दिन सकौतुक कहा था कि गुसाईं, मैं अगर तुम्हें पकड़कर रखे रहूँ तो वे नाराज नहीं होंगे। नाराज़ होनेवाले आदमी वे नहीं हैं। पर अब वह क्यों नहीं आता ? उसने अपने मन ही मन न जाने क्या सोच लिया है। संसारमें गौहरकी आसक्ति नहीं है, अपना कहनेको भी कोई नहीं है। रुपया-पैसा, धन-दौलत तो उसके लिए ऐसे हैं मानों उन्हें लुटा देनेपर ही उसे चैन मिलेगी। प्रेम अगर उसने किया भी हो तो इस डरसे

वह मुँह खोलकर शायद किसी दिन कहेगा भी नहीं कि कहीं पीछे किसी अपराधका स्पर्श न हो जाय। वैष्णवी यह जानती है। उस अनतिक्रम्य बाधासे चिर-निरुद्ध प्रणयके निष्फल चित्त-दाहसे इस शांत और स्वयंको भूले हुए मनुष्यको बचानेके लिए ही शायद वह यहाँसे भाग जाना चाहती है। नवीन चला गया है और मै बकुलके नीचे बैठकर उस टूटी वेदीके ऊपर अकेला बैठा हुआ सोच रहा हूँ। घड़ी खोलकर देखी। यदि पाँच बजेकी ट्रेन पकड़ना है तो अब और देर नहीं की जा सकती। पर हर रोज न जाना ही इस तरह आदतमे दाखिल हो गया था कि जल्दीसे उठकर चल देनेके लिए आज भी मन पीछे हटने लगा।

चाहे जहाँ भी रहूँ, पूँटूके बहू-भातके समय पहुँचकर अन्न ग्रहण करनेका वादा किया था और भागे हुए गौहरको खोज लाना मेरा कर्तव्य है। इतने दिनों तक अनावश्यक अनुरोध बहुत माने हैं, पर आज जब सच्चा कारण विद्यमान है तब मना करनेको कोई नहीं। देखा, पद्मा आ रही है। करीब आकर बोली, " तुम्हे एक बार दीदी बुला रही हैं, गुसाई।"

फिर लौट आया। आँगनमे खड़े होकर वैष्णवीने कहा, " कलकत्ते पहुँचनेमें तुम्हे रात हो जायगी, नये गुसाई। ठाकुरजीका थोड़ा-सा प्रसाद सजा रखा है, कमरेमे आओ।"

रोज़की ही तरह सावधानीसे तैयारी की गई थी। बैठ गया। यहाँ खानेके लिए मनाने और जोर डालनेकी प्रथा नही है, आवश्यक होनेपर माँग लेना होता है। बाकी नहीं छोड़ा जाता।

जानेके वक्त वैष्णवीने कहा, " नये गुसाई, फिर आओगे न?"

" तुम रहोगी न?"

" तुम बताओ, मुझे कितने दिन तक रहना होगा?"

" तुम ही बताओ कि कितने दिनो बाद मुझे यहाँ आना होगा?"

" नहीं, यह मै तुम्हे नहीं बताऊँगी।"

" न बताओ, पर एक दूसरी बातका जवाब दोगी, बोलो?"

इस बार वैष्णवीने जरा हँसकर कहा, " नहीं, वह भी मै न दूँगी। इस समय तुम्हारी जो इच्छा हो सोच लो गुसाई, एक दिन अपने आप ही उसका जवाब मिल जायगा।"

कई बार इन शब्दोंने ज़बानपर आना चाहा, कि अब तो वक्त नहीं रहा कमललता, कल जाऊँगा,—पर किसी भी तरह कह नहीं पाया। यही कहा कि " जाता हूँ। "

पद्मा निकट आकर खड़ी हो गई। कमललताकी देखादेखी उसने भी हाथ जोड़ कर नमस्कार किया। वैष्णवीने उससे नाराज होकर कहा, " हाथ जोड़ कर नमस्कार क्या करती है जलमुँही, पैरोंकी धूल लेकर प्रणाम कर। "

इस बातसे मानों मैं चौंक पड़ा। उसके मुँहकी ओर नजर करते ही देखा कि उसने दूसरी ओर मुँह फेर लिया है। तब और कुछ न कहकर मैं उनका आश्रम छोड़कर बाहर चल दिया।

९

आज बे-वक्त कलकत्ते पहुँचनेके लिए निकल पड़ा। उसके बाद इससे भी ज्यादा दुखमय है बर्माका निर्वासन। वहाँसे लौटकर आनेका शायद समय भी न होगा और प्रयोजन भी न होगा। शायद यह जाना ही अंतिम जाना हो। गिनकर देखा, दस दिन बाकी हैं। दस दिन जीवनके लिहाजसे कितनेसे हैं! तथापि, मनमे सदेह नही रहा कि दस दिन पहले जो यहाँ आया था और आज जो बिदा लेकर जा रहा है, दोनो एक नही हैं।

बहुतोंको खेदके साथ कहते हुए सुना है कि यह किसने सोचा था कि अमुक व्यक्ति ऐसा हो जायगा,—अर्थात्, अमुकका जीवन मानो सूर्यग्रहण और चद्रग्रहणकी तरह उनके अनुमानके पंचागमे ठीक ठीक गिनकर लिखा हुआ है; उसका ठीक न मिलना सिर्फ अचिन्त्य ही नहीं, अयुक्त भी है;—मानों उनकी बुद्धिके हिसाब-किताबके बाहर दुनियामे और कुछ है ही नहीं। वे नहीं जानते कि ससारमे केवल विभिन्न मनुष्य ही नहीं हैं, बल्कि इसका पता लगाना भी कठिन है कि एक एक मनुष्य भी कितने विभिन्न मनुष्योंके रूपमे रूपातरित हो जाता है,—यहाँपर एक क्षण भी तीक्ष्णता और तीव्रतामें समस्त जीवनको अतिक्रम कर सकता है।

× × × ×

सीधा रास्ता छोड़कर वन-जंगलोंमेंसे इस उस रास्ते चक्कर लगाता हुआ स्टेशन जा रहा था,—बहुत कुछ उसी तरह जिस तरह बचपनमें पाठशालाको

जाया करता था, ट्रेनका वक्त नहीं जानता, उसकी जल्दी भी नहीं है,—सिर्फ यह जानता हूँ कि वहाँ पहुँचनेपर कोई न कोई ट्रेन, जब भी मिले, मिल ही जायगी। चलते चलते एकाएक ऐसा लगा कि सब रास्ते जैसे पहचाने हुए हैं, मानों कितने दिनोंतक कितनी बार इन रास्तोंसे आया-गया हूँ! पहले वे बड़े थे, अब न जाने क्यों संकीर्ण और छोटे हो गये हैं। अरे यह क्या, यह तो खाँ-लोगोंका हत्यारा बाग है! अरे, वही तो है! और यह तो मैं अपने ही गाँवके दक्षिणके मुहल्लेके किनारेसे जा रहा हूँ! उसने न जाने कब शूलकी व्यथाके मारे इस इमलीके पेड़की ऊपरकी डालमे रस्सी बाँधकर आत्महत्या कर ली थी। की थी या नहीं, नहीं जानता, पर प्रायः और सब गाँवोंकी तरह यहाँ भी यह जनश्रुति है। पेड़ रास्तेके किनारे है, बचपनमें इसपर नजर पड़ते ही शरीरमें काँटे उठ आते थे, और आँखे बंद करके एक ही दौड़मे इस स्थानको पार कर जाना पड़ता था।

पेड़ वैसा ही है। उस वक्त ऐसा लगता था कि इस हत्यारे पेड़का धड़ मानों पहाड़की तरह है और माथा आकाशसे जाकर टकरा रहा है। परन्तु आज देखा कि उस बेचारेमे गर्व करने लायक कुछ नही है, और जैसे अन्य इमलीके पेड़ होते हैं वैसा ही है। जनहीन ग्रामके एक ओर एकाकी निःशब्द खड़ा है। शैशवमे जिसने काफी डराया है, आज बहुत वर्षों बादके प्रथम साक्षात्मे उसीने मानो बन्धुकी तरह आँख मिचकाकर मजाक किया, कहो मेरे बन्धु, कैसे हो? डर तो नहीं लगता?

मैंने पास जाकर परम स्नेहके साथ उसके शरीरपर हाथ फेरा। मन ही मन कहा, अच्छा ही हूँ भाई। डर क्यो लगेगा, तुम तो मेरे बचपनके पड़ौसी हो,—मेरे आत्मीय!"

सन्ध्याका प्रकाश बुझता जा रहा था। मैंने बिदा लेते हुए कहा, भाग्य अच्छा था जो अचानक मुलाकात हो गई, अब जाता हूँ बंधु!

श्रेणीबद्ध बहुतसे बगीचोंके बाद जरा खुली जगह है, अन्यमनस्क होता तो इसे भी पार कर जाता, किन्तु सहसा अनेक दिनोंकी भूली हुई-सी परन्तु परिचित एक बहुत ही सुन्दर मीठी गंधसे चौंक पड़ा—इधर उधर निहारते ही नजर पड़ गई,—वाह! यह तो हमारी उसी यशोदा वैष्णवीके आऊस फूलोंकी गंध है! बचपनमे इनके लिए यशोदाकी कितनी आरजू-मिन्नत नहीं की थी?

इस जातिका पेड़ इधर नहीं होता, क्या मालूम कहाँसे लाकर उसने इसको अपने आँगनके एक कोनेमें लगाया था। टेढ़ी-मेढ़ी और गाँठोंवाली, बूढ़े आदमी जैसी उसकी शकल थी। उस दिनकी तरह आज भी उसकी वही एकमात्र सजीव शाखा है और ऊपरके कुछ थोड़ेसे हरे पत्तोके बीच वैसे ही थोड़ेसे कुछ सफेद फूल हैं। इसके नीचे यशोदाके स्वामीकी समाधि थी। वैष्णव ठाकुरको हमने नहीं देखा था, हमारे जन्मके पहले वे स्वर्गधाम सिधार चुके थे। उनकी छोटी-सी मनिहारीकी दुकान तब उनकी विधवा ही चलाती थी। दुकान तो नही थी, पर एक डलियामें यशोदा छोटी छोटी आरसियाँ, कघियाँ, नारे, महावर, तेलके मसाले, काँचके खिलौने, टीनकी वंशी इत्यादि भरकर घर घर घूमकर बेचा करती थी। इसके सिवाय उसके पास मछली पकड़नेका सामान भी रहता था : अधिक नहीं, एक एक दो दो पैसेकी डोरियाँ और काँटे। इन्हे खरीदने जब हम उसके घर जाते, तो बहुत धूम मचाते। इस आऊसके पेडकी एक सूखी डालपर बनाये हुए मिट्टीके आलेपर यशोदा संध्याके समय दीपक जलाती थी और फूलोंके लिए उपद्रव करनेपर वह हमे समाधि दिखाकर कहती, " नहीं बच्चो, ये मेरे देवताके फूल हैं, तोडनेपर नाराज होंगे।"

वैष्णवी अब नही है, पता नहीं कि वह कब मर गई,—शायद बहुत दिन नही हुए। पेडके एक किनारे और एक छोटे चबूतरेपर नजर पडी, शायद यह यशोदाकी समाधि होगी। बहुत सभव है कि सुदीर्घ प्रतीक्षाके बाद उसने भी पतिके पास ही अपने लिए थोड़ा-सा स्थान कर लिया हो। स्तूपकी खुदी हुई मिट्टी ज्यादा उर्व्वर हो जानेके कारण बिच्छू खूब हो गये हैं और पेडोंको चमगीदड़ोंने छा दिया है,—सँभालनेवाला कोई नही है।

रास्ता छोड़कर शैशवके उस परिचित बूढ़े पेडके पास जाकर खड़ा हो गया। देखा कि शामको जलनेवाला वह दीपक नीचे पड़ा है और उसके ऊपरकी वह सूखी डाल आज भी वैसी ही तेलसे काली हो रही है।

यशोदाका छोटा-सा घर अभीतक पूरी तरह ढहा नहीं है,—सहस्र-छिद्रमय और जीर्ण-शीर्ण फूसका छप्पर दरवाजेको ढककर औंधा पड़ा हुआ आज भी प्राणपणसे रक्षा कर रहा है।

बीस-पच्चीस वर्ष पहलेकी न जाने कितनी बातें याद आ गईं,—बाँसोंके

घेरेसे घिरा हुआ लिपा-पुता यशोदाका आँगन, और वही छोटा-सा कमरा। उसकी आज यह दशा है! पर इससे भी बहुत ज्यादा एक करुण वस्तु अब भी देखनेको बाकी थी। अकस्मात् देखा कि उसी घरके टूटे छप्परके नीचेसे एक कङ्काल-शेष कुत्ता बाहर निकला। मेरे पैरोंकी आवाजसे चकित होकर शायद उसने मेरे अनधिकार-प्रवेशका प्रतिवाद करना चाहा। पर उसकी आवाज इतनी क्षीण थी कि उसके मुँहमें ही रह गई।

कहा, "क्यों रे, मैंने कोई अपराध तो नहीं किया?"

उसने मेरे मुँहकी ओर देखकर न जाने क्या सोचा और फिर पूँछ हिलाना शुरू कर दिया। मैंने कहा, "अब भी तू यहीं है?"

उसने प्रत्युत्तरमें सिर्फ दोनों मलिन आँखें खोलकर अत्यंत निरुपायकी तरह मेरे मुँहकी तरफ देखा।

इसमें शक नहीं कि यह यशोदाका कुत्ता है। फूलदार रंगीन किनारीका गल-पट्टा अब भी उसके गलेमें है। मैं समझ ही न सका कि उस निःसंतान रमणीके एकान्त स्नेहका धन यह कुत्ता आज भी इस परित्यक्त कुटीमें क्या खाकर जीवित है। मुहल्लोंमें जाकर छीन-झपट कर खानेका जोर तो उसमें है नहीं, आदत भी नहीं है, और स्वजातिके साथ मेल रखनेकी शिक्षा भी उसे नहीं मिली। लिहाजा भूखा और अधभूखा रहकर यहीं पड़ा पड़ा बेचारा शायद उसीकी राह देख रहा है, जो उसको एक दिन प्यार करती थी। सोचता होगा कि कहीं न कहीं गई है, एक न एक दिन लौटकर आयेगी ही। मन ही मन कहा, यही क्या ऐसा है? इस प्रत्याशाको बिलकुल ही पोंछ डालना संसारमें क्या इतना आसान है?

जानेके पहले छप्परकी सेंधमेंसे एक बार भीतरकी ओर दृष्टि डाली। अंधकारमें और तो कुछ भी दिखाई न पड़ा, दीवारपर चिपकी हुई कुछ तसवीरें नजर आ गईं। राजा रानीसे लेकर नाना जातिके देवी-देतावओं-तककी तसवीरें हैं। कपड़ेके नये थानोंमेंसे निकाल निकाल कर यशोदा इन्हें संग्रह करती थी और इस तरह वह अपना तसवीरोंका शौक मिटाती थी। याद आया कि बचपनमें इनको अनेक बार मुग्ध दृष्टिसे देखा है। बारिशसे भीगकर, दीवारकी मिट्टीसे बिगड़ कर, ये आज भी किसी तरह टिकी हुई हैं।

और पड़ी हुई है पासके ही छींकेपर वैसी ही दुर्दशामें वह रंगीन हँड़िया जिसे देखते ही मुझे यह बात याद आ गई कि इसमे उसके आलतेके बडल रहते थे। और भी इधर उधर क्या क्या पड़ा था, अधकारमें पता नहीं पड़ा। वे सब चीजे मिलकर प्राणपणसे मुझे न जानें किस बातका इंगित करने लगीं, पर उस भाषासे मैं अनजान था। कुछ ऐसा लगा कि मकानके एक कोनेमें मानों किसी मृत शिशुका खिलोना-घर है। घर-गृहस्थीकी नाना टूटी-फूटी चीज़ोंसे यत्नपूर्वक सजाये हुए इस क्षुद्र ससारको वह छोड़ गया है। आज उन चीजोका आदर नही है, प्रयोजन भी नहीं, ऑचलसे बार बार झाड़ने-पोंछनेकी जरूरत भी नही,—पड़ा हुआ है सिर्फ जजाल, इसलिए कि किसीने उसे मुक्त नहीं किया है।

वह कुत्ता कुछ दूर तक साथ साथ आया और ठहर गया। जब तक दिखाई पड़ा तब तक बेचारा इस ओर टकटकी लगाये खड़ा देखता रहा। उसके साथका यह परिचय प्रथम भी है, और अंतिम भी। फिर भी वह कुछ आगे बढकर बिदा देने आया है। मैं जा रहा हूँ किसी बधुहीन, लक्ष्यहीन प्रवासके लिए, और वह लौट जायगा अपने अन्धकारपूर्ण निराले टूटे हुए मकानमे! दोनोंके ही ससारमे ऐसा कोई नही है जो राह देखते हुए प्रतीक्षा कर रहा हो!

बगीचेके पार हो जानेपर वह ऑखोसे ओझल हो गया, परन्तु पॉच ही मिनटके इस अभागे साथीके लिए हृदय भीतर ही भीतर रो उठा, ऐसी दशा हो गई कि ऑखोके ऑसू न रोक सका।

चलते चलते सोच रहा था कि ऐसा क्यों होता है? और किसी दिन यह सब देखता तो शायद कुछ विशेष खयाल न आता, पर आज मेरा हृदयाकाश मेघोंके भारसे भारातुर हो रहा है—जो उन लोगोंके दुखकी हवासे सैकड़ों धाराओमे बरस पड़ना चाहते हैं।

स्टेशन पहुँच गया। भाग्य अच्छा था, उसी वक्त गाडी मिल गई, कलकत्तेके निवास-स्थानपर पहुँचने तक ज्यादा रात न होगी। टिकट खरीद कर बैठ गया और उसने सीटी देकर यात्रा शुरू कर दी।—स्टेशनके प्रति उसे मोह नहीं, सजल ऑखोंसे बार बार घूमकर देखनेकी उसे जरूरत नहीं।

फिर वही बात याद आई,—मनुष्यके जीवनमें दस दिन कितनेसे हैं, फिर भी कितने बड़े हैं !

कल सुबह कमललता अकेली ही फूल तोड़ने जायगी और उसके बाद उसकी सारे दिन चलनेवाली देव-सेवा शुरू हो जायगी ! क्या मालूम, दस दिनके साथी नये गुसाईंको भूलनेमें उसे कितने दिन लगे।

उस दिन उसने कहा था, ‘ सुखसे ही तो हूँ गुसाईं। जिनके पाद-पद्मोंपर अपने आपको निवेदन कर दिया है वे दासीका कभी परित्याग नहीं करेंगे।’ सो, यही हो। ऐसा ही हो।

बचपनसे ही मेरे जीवनका कोई लक्ष्य नही है, बलपूर्वक किसी भी चीजकी कामना करना मैं नही जानता,—सुख-दुःख-सम्बन्धी मेरी धारणा भी अलग है। तथापि इतनी उम्र कट गई सिर्फ दूसरोंका अनुकरण करनेमे,—दूसरोंके विश्वासपर और दूसरोंका हुक्म तामील करनेमे। इसीलिए कोई भी काम मेरे द्वारा अच्छी तरह निर्वाहित नही होता। दुबिधासे दुर्बल मेरे सारे सकल्प और सारे उद्योग थोडी ही दूर चलते हैं और ठोकर खाकर रास्तेमे ही चूर चूर हो जाते हैं; तब सभी कहने लगते हैं, ‘आलसी है, किसी कामका नही।’ शायद इसीलिए उन निकम्मे बैरागियोंके अखाडेमे ही मेरा अन्तरवासी अपरिचित बन्धु अस्फुट छाया-रूपमे मुझे दर्शन दे गया, मैंने बार बार नाराज होकर मुँह फिरा लिया और उसने बार बार स्मित हास्यसे हाथ हिला हिलाकर न जाने क्या इशारा किया।

और वह वैष्णवी कमललता ! उसका जीवन मानों प्राचीन वैष्णव कवि-चित्तोंके ऑसुओंका गीत है। छन्दोमे मेल नहीं, व्याकरणमे भूलें हैं, भाषामे भी अनेक त्रुटियाँ हैं, पर उसका विचार तो उस ओरसे नहीं किया जा सकता। मानो उसीका दिया हुआ कीर्तनका सुर है,—जिसके मर्ममे पैठता है, उसे ही उसका पता चलता है। वह मानों गोधूलिके आकाशकी रग-बिरगी तसवीर है। उसका नाम नहीं, सज्ञा नहीं,—कलाशास्त्रके सूत्रोंके अनुसार उसका परिचय देना भी विडम्बना है।

मुझसे कहा था, ‘ चलो न गुसाईं, यहाँसे चल दे, गीत गाते गाते पथ ही पथपर दोनोंके दिन कट जायेंगे।’

उसे कहनेमे तो कुछ नहीं लगा, पर मुझे खटका। मेरा नाम रक्खा है उसने

'नये गुसाईं।' कहा, 'असल नाम तो मैं मुँहसे निकाल नहीं सकती गुसाईं।' उसका विश्वास है कि मैं उसके विगत-जीवनका बन्धु हूँ। मुझसे उसे डर नहीं, मेरे पास रहते हुए उसकी साधनामें विघ्न नहीं आ सकता। वैरागी द्वारिकादासकी वह शिष्या है, मालूम नहीं उन्होंने उसे किस साधनासे सिद्धि लाभ करनेका मन्त्र दिया है।

एकाएक राजलक्ष्मीकी याद आ गई और उसकी उस कठोर चिट्ठीका ख्याल आ गया जो स्नेह और स्वार्थके मिश्रणसे भरी हुई थी। तो भी जानता हूँ कि इस जीवनके पूर्ण विरामपर वह मेरे लिए शेष हो गई है। शायद यह अच्छा ही हुआ है। किन्तु उस शून्यताको भरनेके लिए क्या कहीं भी कोई है? खिड़कीके बाहर अन्धकारको ताकता हुआ चुपचाप बैठा रहा। एक एक करके न जाने कितनी बातें और कितनी घटनायें याद आ गईं। शिकारके आयोजनके लिए खड़ा किया हुआ कुमार साहबका वह तंबू, वह दल-बल और अनेक वर्षोंके प्रवासके बाद उस प्रथम साक्षात्के दिनकी दीप्त काली आँखोंमें उसकी वह विस्मय-विमुग्ध दृष्टि! जिसे जानता था कि मर गई है, जिसे पहचान नहीं सका,—उस दिन श्मशानके पथपर उसीने कितनी व्यग्र-व्याकुल विनती की थी और अन्तमें क्रुद्ध निराशाका वह कैसा तीव्र अभिमान था! रास्ता रोककर कहा था 'जाना चाहते हो इसीलिए क्या मैं तुम्हें जाने दूँगी? देखूँ, कैसे जाते हो! इस विदेशमें यदि कोई विपत्ति आ पड़ी, तो कौन देख-भाल करेगा? वे या मैं?'

इस दफा उसे पहचाना। यह ज़ोर ही उसका हमेशाका सच्चा परिचय है। जीवनमें यह उससे फिर कभी न छूटा,—इससे उसके निकट कभी किसीको अव्याहति नहीं मिली।

रास्तेके एक किनारे मरनेको पड़ा था कि नींद टूटनेपर आँखें खोलकर देखता हूँ कि वह सिरहाने बैठी है। तब सारी चिंताएँ उसे सौंपकर आँखें बन्द कर सो गया। यह भार उसका है, मेरा नहीं।

गाँवके मकानमें आकर बीमार पड़ गया। यहाँ वह नहीं आ सकती थी,—यहाँ वह मृत है,—इससे बढ़कर और कोई लज्जा उसके लिए नहीं थी, फिर भी जिसे अपने निकट पाया वह वही राजलक्ष्मी थी।

चिट्ठीमें लिखा है, 'तुम्हारी देख-भाल कौन करेगा? पूँटू? और मैं

सिर्फ नौकरकी जुबानी खबर सुनकर लौट आऊँगी ? इसके बाद भी जीवित रहनेके लिए कहते हो ?'

इस प्रश्नका जवाब नही दिया। इसलिए नही कि जानता नहीं, बल्कि इसलिए कि साहस नहीं हुआ।

मन ही मन कहा, क्या केवल रूपमे ही ? सयममें, शासनमे, सुकठोर आत्मनियंत्रणमे उस प्रखर बुद्धिमतीके निकट यह स्निग्ध सुकोमल आश्रम-वासिनी कमललता कितनी-सी है ! पर उस इतनी-सीमे ही इस बार मानो मैने अपने स्वभावकी प्रतिच्छवि देखी। ऐसा लगा कि उसके निकट ही है मेरी मुक्ति, मर्यादा और निःश्वास छोड़नेका अवकाश। वह कभी मेरी सारी चिन्तायें, सारी भलाई-बुराइयॉ अपने हाथोंमे लेकर राजलक्ष्मीकी तरह मुझे आच्छन्न नही कर डालेगी।

सोच रहा था कि विदेश जाकर क्या करूँगा ? क्या होगा इस नौकरीसे ? कोई नई बात तो है नही,--उस दिन भी ऐसा क्या पाया था जिसको फिरसे पानेके लिए आज लोभ करना होगा ? सिर्फ कमललताने ही तो नहीं कहा, द्वारिका गुसाईंने भी आश्रममे रहनेके लिए एकात समादरसे आह्वान किया है। यह क्या सब वंचना है, मनुष्यको धोखा देनेके अलावा क्या इस आमन्त्रणमे कुछ भी सत्य नही है ? अब तक जीवन जिस तरह कटा है, क्या यही उसका शेष है ? क्या अब कुछ भी जाननेको बाकी नही रहा, सब जानना क्या मेरे लिए समाप्त हो गया ? हमेशा ही इसकी अश्रद्धा और उपेक्षा ही की है, कहा है, सब असार है, सब भूल है, पर सिर्फ अविश्वास और उपहासको ही मूल-धन मान लेनेसे ही ससारमे कभी कोई बडी वस्तु किसीको मिली है ?

गाडी आकर हवडा स्टेशनपर रुक गई। स्थिर किया कि रातको घर रहकर जो कुछ चीजें हैं, जो कुछ लेना-देना है, वह सब चुका-पटा कर कल फिर आश्रमको लौट जाऊँगा। गई मेरी नौकरी, और रह गया मेरा बर्मा जाना। जब घर पहुँचा तब रातके दस बजे थे। आहारका प्रयोजन तो था, पर उपाय न था। हाथ-मुँह धोकर और कपड़े बदलकर बिछौना झाड़ रहा था कि पीछेसे एक सुपरिचित कठकी आवाज़ आई, "बाबूजी, आ गये ?"

सविस्मय घूमकर देखा, "रतन, कब आया रे ?"

" शामको ही आया हूँ। बरामदेमे बडी अच्छी हवा थी, आलस्यमें जरा सो गया था।"

" बहुत अच्छा किया। खाया नहीं है न ?"

" जी नहीं।"

" तब तो रतन, तुमने बड़ी मुश्किलमें डाल दिया।"

रतनने पूछा, " आपने ?"

स्वीकार करना पड़ा, " मैंने भी नहीं खाया है।"

रतनने खुश होकर कहा, " तब तो अच्छा ही हुआ। आपका प्रसाद पाकर रात काट दूँगा।"

मन ही मन कहा कि यह नाई-बेटा विनयका अवतार है, किसी भी तरह हतप्रभ नहीं होता। कहा, "तो किसी पासकी दुकानमें खोजो यदि कुछ प्रसाद जुटा सको।—पर शुभागमन किस लिए हुआ ? फिर भी कोई चिट्ठी है ?"

रतनने कहा, " जी नहीं, चिट्ठी लिखनेमे बडा झझट है। जो कुछ कहना होगा वे खुद मुँहसे ही कहेंगी।"

" इसका मतलब ? मुझे फिर जाना होगा क्या ?"

" जी नही। माँ खुद आई है।"

सुनकर घबडा गया। इस रातमे कहाँ ठहराऊँ ? क्या बदोबस्त करूँ ? —कुछ समझमे न आया। पर कुछ तो करना ही चाहिए, पूछा, "जबसे आई हैं तबसे क्या घोड़ागाडीमे ही बैठी हैं ?"

रतनने हँसकर कहा, " नही बाबू, हमें आये चार दिन हो गये, इन चार दिनोंसे आपके लिए दिन-रात पहरा दे रहा हूँ। चलिए !"

" कहाँ ? कितनी दूर ?"

" कुछ दूर तो जरूर है, पर मैंने गाडी किराये कर रखी है, कष्ट नहीं होगा।"

अतएव, दुबारा कपडे पहन कर दरवाजेमे ताला बंद कर फिर यात्रा करनी पडी। श्यामबाजारकी एक गलीमें एक दोमँजिला मकान है, सामने दीवारसे घिरा हुआ एक फूलका बगीचा है; राजलक्ष्मीके बूढे दरबानने द्वार खोलते ही मुझे देखा, उसके आनंदकी सीमा न रही, सिर हिलाकर लबा-चौडा नमस्कार कर पूछा, " अच्छे हैं बाबूजी ?"

" हाँ तुलसीदास, अच्छा हूँ। तुम अच्छे हो ? "

प्रत्युत्तरमें फिर उसने वैसा ही नमस्कार किया। तुलसी मुंगेर जिलेका है जातका कुर्मी, ब्राह्मण होनेके नाते वह बराबर बगाली रीतिसे पैर छूकर प्रणाम करता है।

हमारी बातचीतकी वजहसे शायद और भी एक हिन्दुस्तानी नौकरकी नींद खुल गई, रतनके जोरसे धमकानेके कारण वह बेचारा हक्कबक्का हो गया। बिना कारण दूसरोंको डरा-धमका कर ही रतन इस मकानमे अपनी मर्यादा कायम रखता है। बोला, " जबसे आये हो, खाली सोते हो और रोटी खाते हो, तयाकृतक चिलममें सजाकर नहीं रख सकते ? जाओ जल्दी—" यह आदमी नया है, डरसे चिलम सजाने दौडा। ऊपर सीढीके सामनेवाला बरामदा पार करनेपर एक बहुत बडा कमरा मिला गैसके उज्ज्वल प्रकाशसे आलोकित। चारो ओर कार्पेट बिछा हुआ है, उसके ऊपर फूलदार जाजम और दो-चार तकिये पड़े है। पास ही मेरा बहुव्यवहृत अत्यंत प्रिय हुक्का और उससे थोडी ही दूरपर मेरे जरीके कामवाले मखमली स्लीपर सावधानीसे रखे हुए हैं। ये राजलक्ष्मीने अपने हाथसे बुने थे और परिहासमें मेरे एक जन्म-दिनके अवसरपर उपहार दिये थे। पासका कमरा भी खुला हुआ है, पर उसमे कोई नहीं है। खुले दरवाजेसे एक बार झाँककर देखा कि एक ओर नई खरीदी हुई खाटपर बिछौना बिछा हुआ है और दूसरी ओर वैसी ही नई खूँटीपर सिर्फ मेरे ही कपडे टंगे है। गगामाटी जानेसे पहले ये सब तैयार हुए थे। याद भी न थे, और कभी काममे भी नहीं आये।

रतनने पुकारा, " माँ ? "

" आती हूँ, " कहकर राजलक्ष्मी सामने आकर खडी हो गई और पैरोकी धूल लेकर प्रणाम करके बोली, " रतन, चिलम तो भर ला, तुझे भी इधर कई दिनोसे बडी तकलीफ दी। "

" तकलीफ कुछ भी नही हुई माँ। राजीखुशी इन्हे घर लौटा लाया, यही मेरे लिए बहुत है। " कहकर वह नीचे चला गया।

राजलक्ष्मीको नई आँखोंसे देखा। शरीरमे रूप नहीं समाता। उस दिनकी पियारी याद आ गई। इन कई वर्षोंके दुःख-शोकके आँधी-तूफानमे नहाकर मानों उसने नया रूप धारण कर लिया है। इन चार दिनोके इस नये मका-

नकी व्यवस्थासे चकित नहीं हुआ, क्योंकि उसकी सुव्यवस्थासे पेड़-तलेका वास-स्थान भी सुंदर हो उठता है। किन्तु राजलक्ष्मीने मानों अपने आपको भी इन कई दिनोंमें मिटाकर फिरसे बनाया है। पहले वह बहुत गहने पहनती थी, बीचमे सब खोल दिये थे,—मानों सन्यासिनी हो। लेकिन आज फिर पहने हैं,—कुछ थोडेसे ही,—पर देखनेपर ऐसा लगा कि मानों वे अतिशय कीमती हैं। फिर भी धोती ज्यादा कीमती नहीं है,—मिलकी साड़ी,—आठों प्रहर घरमें पहननेकी। माथेके ऑचलकी किनारीके नीचेसे निकलकर छोटे छोटे बाल गालोंके इर्द-गिर्द झूल रहे हैं। छोटे होनेके कारण ही शायद वे उसकी आज्ञा नही मानते ! देखकर अवाक् हो रहा।

राजलक्ष्मीने कहा, " इतना क्या देख रहे हो ! "

" तुमको देख रहा हूँ। "

" नई हूँ ? "

" ऐसा ही तो लग रहा है। "

" और मुझे क्या लग रहा है, जानते हो ? "

" नही। "

" इच्छा हो रही है कि रतनके चिलम तैयार कर लानेके पहले ही अपने दोनो हाथ तुम्हारे गलेमे डाल दूँ। डाल देनेपर क्या करोगे बताओ ? " कहकर हँस पडी। बोली, " उठाकर बाहर तो नहीं फेक दोगे ? "

मै भी हँसी न रोक सका। कहा, " डालकर देख ही लो न ! पर इतनी हँसी,—कही भॉग तो नही खा ली है ? "

सीढियोपर पैरोंकी आवाज सुनाई दी। बुद्धिमान् रतन जरा जोरसे पैर पटकता हुआ चढ रहा था। राजलक्ष्मीने हँसी दबाकर धीरेसे कहा, " पहले रतनको चले जाने दो, फिर तुम्हे बताऊँगी कि भॉग खाई है या और कुछ खाया है। " पर कहते कहते अचानक उसका गला भारी हो गया। कहा, " इस अनजान जगहमे चार-पॉच दिनको मुझे अकेला छोड़कर तुम पूँटूकी शादी कराने गये थे ? मालूम है, ये रात-दिन मेरे किस तरह कटे है ? "

" मुझे क्या मालूम कि तुम अचानक आ जाओगी ? "

" हॉजी हॉ, अचानक तो कहोगे ही। तुम सब जानते थे। सिर्फ मुझे तंग करनेके लिए ही चले गये थे। "

रतनने आकर हुक्का दिया, बोला, " बात तय हुई है माँ, बाबूका प्रसाद पाऊँगा। रसोइयेसे खाना लानेके लिए कह दूँ? रातके बारह बज गये हैं।"

बारह सुनकर राजलक्ष्मी व्यस्त हो गई, " रसोइयेसे नही होगा, मैं खुद जाती हूँ। तुम मेरे सोनेके कमरेमें थोड़ी-सी जगह कर दो।"

खानेके लिए बैठते वक्त मुझे गगामाटीके अंतिम दिनोंकी बात याद आ गई। तब यही रसोइया और यही रतन मेरे खानेकी देख-रेख करते थे। राजलक्ष्मीको मेरी खबर लेनेको वक्त नही मिलता था। पर आज इन लोगोंसे नहीं होगा,—रसोईघरमे खुद जाना होगा! पर यह उसका स्वभाव है, वह थी विकृति। समझ गया कि कारण कुछ भी हो, किन्तु उसने अपनेको फिर पा लिया है।

खाना खत्म होनेपर राजलक्ष्मीने पूछा, " पूँटूकी शादी कैसी हुई?"

" आँखोंसे तो नहीं देखी पर कानोंसे सुनी है, अच्छी तरह हुई।"

" आँखोसे नहीं देखी? इतने दिनो फिर कहाँ थे?

विवाहकी सारी घटना खोलकर सुनाई। सुनकर क्षणभरके लिए गालपर हाथ रक्खे हुए उसने कहा, " तुमने तो अवाक् कर दिया! आनेके पहले पूँटूको कुछ उपहार देकर नही आये?"

" मेरी तरफसे वह तुम दे देना।"

राजलक्ष्मीने कहा, " तुम्हारी तरफसे क्यों, अपनी तरफसे ही लड़कीको कुछ भेज दूँगी। पर थे कहाँ, यह तो बताया ही नहीं?"

कहा, " मुरारीपुरके बाबाओंके आश्रमकी याद है?"

राजलक्ष्मीने कहा, " है क्यो नहीं। वैष्णवियाँ वहींसे तो मुहल्ले-मुहल्लेमे भीख माँगने आती थी। बचपनकी बाते मुझे खूब याद हैं।"

" वहीं था।"

सुनकर जैसे राजलक्ष्मीके शरीरमे काँटे उठ आये, " उन्हीं वैष्णवियोंके अखाड़ेमे? अरे मेरी माँ!—क्या कहते हो जी? उनके विषयमे तो भयंकर गंदी बाते सुनी हैं!" कहकर वह सहसा उच्च कण्ठसे हँस पड़ी। अंतमें मुँहमें आँचल दबाकर बोली, " तो तुम्हारे लिए असाध्य काम कोई नहीं है। आरामे जो तुम्हारी मूर्ति देखी है,—माथेमें जटा, सारे शरीरमें रुद्राक्षकी माला, हाथोंमें पीतलके कड़े,—वह अद्भुत—"

बात खत्म न कर सकी, हँसते हँसते लोट-पोट हो गई। नाराज़ होकर उसे बैठा दिया। अन्तमें हिचकी लेकर मुँहमे कपड़ा ठूँसनेपर जब बड़ी मुश्किलसे हँसी रुकी तो बोली, " वैष्णवियोंने तुमसे क्या कहा ? चपटी नाक-वाली और गोदनावाली वहाँ बहुत-सी रहती हैं न जी—"

फिर वैसा ही हँसीका फौवारा छूटनेवाला था, पर सतर्क कर दिया, " इस बार हँसनेपर ऐसा कड़ा दड दूँगा कि कल नौकरोंको मुँह न दिखा सकोगी। "

राजलक्ष्मी डरसे दूर हट गई, और मुँहसे बोली, " यह तुम सरीखे वीर पुरुषोंका काम नही है। खुद ही शर्मके मारे नही निकल सकोगे। ससारमे तुमसे ज्यादा भीरु पुरुष और कोई है ? "

कहा, " तुम कुछ भी नहीं जानती लक्ष्मी। तुमने भीरु कहकर अवज्ञा की, पर वहाँ एक वैष्णवी मुझसे कहती थी अहकारी,—दभी ! "

" क्यों, उसका क्या किया था ? "

" कुछ भी नही। उसने मेरा नाम रखा था ' नये गुसाई '। कहती थी, गुसाई, तुम्हारे उदासीन वैरागी मनकी अपेक्षा अधिक दंभी मन पृथ्वीमें और दूसरा नहीं है। "

राजलक्ष्मीकी हँसी रुक गई " क्या कहा उसने ? "

" कहा कि इस तरहके उदासीन, वैरागी-मनके मनुष्यकी अपेक्षा अधिक दम्भी व्यक्ति दुनियामे खोजनेपर भी नही मिलेगा। अर्थात् मैं दुर्धर्ष वीर हूँ, भीरु कतई नहीं। "

राजलक्ष्मीका चेहरा गम्भीर हो गया। परिहासकी ओर उसने ध्यान ही न दिया। बोली, " तुम्हारे उदासीन मनकी खबर उस हरामज़ादीने कैसे पा ली ? "

" वैष्णवियोंके प्रति ऐसी अशिष्ट भाषा बहुत आपत्तिजनक है। "

राजलक्ष्मीने कहा, " यह जानती हूँ। पर उसने तुम्हारा नाम तो रखा ' नये गुसाई, ' और उसका अपना नाम क्या है ? "

" कमललता। कोई कोई प्रेमसे कमलीलता भी कहता है। लोग कहते हैं कि वह जादू जानती है, उसका कीर्तन सुनकर मनुष्य पागल हो जाता है और वह जो चाहती है वही दे देता है। "

" तुमने सुना है ? "

" सुना है । चमत्कार ! "

" उसकी उम्र क्या है ? "

" जान पड़ता है तुम्हारे ही बराबर होगी । कुछ ज्यादा भी हो सकती है । "

" देखनेमें कैसी है ? "

" अच्छी। कमसे कम खराब तो नही कही जा सकती। जिन चपटी नाकों और गोदनावालियोंको तुमने देखा है, उनके दलकी वह नहीं है । वह भले घरकी लडकी है । "

राजलक्ष्मीने कहा, " मै उसकी बात सुनकर ही समझ गई । जब तक तुम रहे, तब तक तुम्हारी सेवा करती थी न ? "

" हाँ । मेरी कोई शिकायत नही है । "

राजलक्ष्मीने एकाएक निःश्वास छोड़कर कहा, " सो करने दो । जिस साधनासे तुमको पाया जाता है उससे तो भगवान् भी मिल सकते हैं । यह वैष्णवबैरागियोका काम नही है । मै डरने जाऊँगी न जाने कहाँकी इस कमललतासे ? छीः ! " कह कर वह उठी और बाहर चली गई ।

मेरे मुँहसे भी एक दीर्घ निःश्वास निकल गई । शायद कुछ बेमना हो गया था, इस आवाजसे होशमे आया । मोटे तकियेको खींच चित लेटकर हुक्का पीने लगा ।

ऊपर एक छोटा-सा मकडा घूम घूम कर जाल बुन रहा था । गैसके उज्ज्वल प्रकाशमे उसकी छाया बहुत बडे बीभत्स जतुकी तरह मकानकी कड़ियोंपर पड़ रही थी । आलोकके व्यवधानमे छाया भी कई गुनी कायाको अतिक्रम कर जाती है ।

राजलक्ष्मी लौटकर मेरे ही तकियेके एक कोनेमें कोहनियोके बल झुककर बैठ गई । हाथ लगाकर देखा कि उसके कपालके बाल भीगे हुए हैं । शायद अभी अभी आँख-मुँह धोकर आई है ।

प्रश्न किया, " लक्ष्मी, एकाएक इस तरह कलकत्ते क्यों चली आई ? "

राजलक्ष्मीने कहा, " एकाएक कतई नहीं । उस दिनके बाद रात-दिन चौबीसों घण्टे मन न जाने कैसा होने लगा कि किसी भी तरह रहा न गया, डर लगा कि कहीं हार्ट-फेल न हो जाय,—इस जन्ममें फिर कभी आँखोंसे

नहीं देख सकूँ," कहकर उसने हुक्केकी नली मेरे मुँहसे निकालकर दूर फेंक दी। कहा, " जरा ठहरो। धुएँके मारे मुँहतक दिखाई नहीं देता, ऐसा अन्धकार कर रखा है।"

हुक्केकी नली तो गई पर बदलेमें मेरी मुट्ठीमे उसका हाथ आ गया।

पूछा, " बकू आजकल क्या कहता है ?"

राजलक्ष्मीने जरा म्लान हँसी हँसकर कहा, " बहुओंके आनेपर सब लड़के जो कहते हैं, वही।"

" उससे ज्यादा कुछ नहीं ?"

" कुछ नही तो नहीं कहती, पर वह मुझे दुःख क्या देगा ? दुःख तो सिर्फ तुम्हीं दे सकते हो। तुम लोगोंके अलावा औरतोंको सचमुचका दुख और कोई भी नहीं दे सकता।"

" पर मैंने क्या कभी कोई दुख दिया है लक्ष्मी ?"

राजलक्ष्मीने अनावश्यक ही मेरे कपालमें हाथ लगाया और उसे पोंछकर कहा, " कभी नही। बल्कि, मैंने ही आजतक तुमको न जाने कितने दुख दिये हैं। अपने सुखके लिए लोगोकी नजरोंमे तुम्हें हेय बनाया, प्रवृत्तिवश तुम्हारा असम्मान होने दिया,—उसका ही दण्ड है कि अब दोनो किनारे डूबे जा रहे हैं ! देख तो रहे हो न ?"

हँसकर कहा, " कहाँ, नहीं तो।"

राजलक्ष्मीने कहा, " तो किसीने मन्तर पढकर तुम्हारी दोनों आँखोंपर पर्दा डाल दिया है।" फिर कुछ चुप रहकर कहा, " इतने पाप करके भी ससारमें मेरे जैसा भाग्य किसीका कभी देखा है ? पर मेरी आशा उससे भी नहीं मिटी, न जाने कहाँसे आ जुटा धर्मका पागलपन और हाथ आई लक्ष्मी अपने पैरोंसे ठुकरा दी। गंगामाटीसे आकर भी चैतन्य नहीं हुआ, काशीसे तुम्हें अनादरके साथ बिदा कर दिया।"

उसकी दोनों आँखोंसे टप टप आँसू गिरने लगे, मेरे उन्हे हाथसे पोंछ देनेपर बोली, " अपने ही हाथसे विषका पौधा लगाया था, अब उसमें फल लग गये हैं। खा नहीं सकती, सो नहीं सकती, आँखोंकी नींद हराम हो गई, न जाने कैसे कैसे असम्बद्ध डर होने लगे जिनका न सिर न पैर। गुरुदेव तब भी मकानमें थे, उन्होंने कोई कवच जैसा हाथमें बाँध दिया, कहा, बेटी,

सुबह एक ही आसनपर बैठकर तुमको दस हज़ार बार इष्ट नामका जाप करना होगा। पर कर कहाँ सकी? मनमें तो आग जल रही थी, पूजापर बैठते ही दोनों आँखोंसे आँसूकी धार बह चलती,—उसी समय आई तुम्हारी चिट्ठी और तब इतने दिनों बाद रोग पकड़ा गया।"

"किसने पकड़ा,—गुरुदेवने? इस बार शायद उन्होंने फिर एक कवच लिख दिया?"

"हाँजी, लिख दिया है और उसे तुम्हारे गलेमें बाँधनेके लिए कहा है!"

"ऐसा ही करना, बाँध देना, अगर तुम्हारा रोग अच्छा हो जाय।"

राजलक्ष्मीने कहा, "उस चिट्ठीको लेकर मेरे दो दिन कटे। कैसे कटे यह नहीं जानती। रतनको बुलाकर उसके हाथों चिट्ठीका जवाब भेज दिया। गंगा-स्नानकर अन्नपूर्णाके मंदिरमें खड़े होकर कहा,'माँ, ऐसा करो कि समय रहते उनके हाथों चिट्ठी पहुँच जाय, मुझे आत्महत्या न करनी पड़े।' मेरे मुँहकी ओर देखकर कहा, "मुझे इस तरह क्यों बाँधा था बोलो?"

सहसा इस जिज्ञासाका उत्तर न दे सका। इसके बाद कहा, "तुम औरतोंके लिए ही यह सम्भव है। हम यह सोच भी नहीं सकते, समझ भी नहीं सकते।"

"स्वीकार करते हो?"

"हाँ!"

राजलक्ष्मीने फिर एक बार क्षणभरके लिए मेरी ओर देखकर कहा, "वाकई विश्वास करते हो कि यह हम लोगोंके लिए ही सम्भव है, पुरुष यथार्थमें ऐसा नहीं कर सकते?"

कुछ देरतक दोनों स्तब्ध रहे। राजलक्ष्मीने कहा, "मंदिरसे बाहर निकल कर देखा कि हमारा पटनेका लछमन साहू खड़ा है। मेरे हाथ वह बनारसी कपड़े बेचा करता था। बूढ़ा मुझे बहुत चाहता था और मुझे बेटी कहकर पुकारता था। आश्चर्यान्वित हो बोला, 'बेटी, आप यहाँ?' मुझे मालूम था कि कलकत्तेमें उसकी दुकान है। कहा, 'साहूजी, मैं कलकत्ते जाऊँगी, मेरे लिए एक मकान ठीक कर सकते हो?'

उसने कहा, 'कर सकता हूँ। बंगाली मुहल्लेमें मेरा अपना एक मकान है, सस्तेमें खरीदा था। चाहो तो उतने ही रुपयोंमें वह मकान

उदासीन मनका ही पता पाया है, शायद तुम्हारी वीरताकी कहानी नहीं सुनी ? ”

“ नहीं, क्योंकि आत्मप्रशसा खुद नही करनी चाहिए। वह तुम सुना देना। पर उसका गला मीठा है, इसमें सन्देह नहीं। ”

“ मुझे भी सन्देह नहीं है। ” कहनेके साथ ही एकाएक प्रच्छन्न कौतुकसे उसकी आखें चमक उठीं। बोली, “ हॉजी, तुम्हे वह गाना याद है ? वही जिसे पाठशालाकी छुट्टी होनेपर तुम गाते थे और हम सब मुग्ध होकर सुनते थे,—वही, ‘ कहाँ गये प्राणोंके प्राण हे दुर्योधन रे–ए–ए–ए–ए—’

हँसी दबानेके लिए उसने ऑचलसे मुँहको छिपा लिया, मैं भी हँस पडा। राजलक्ष्मीने कहा, “ पर गाना बहुत भावमय है। तुम्हारे मुँहसे सुनकर मनुष्योंकी तो कौन कहे, गाय-बछडों तककी ऑखोंमे पानी आ जाता था। ”

रतनके पैरोंकी आहट सुनाई दी। अविलब ही दरवाजेके पास खडे होकर उसने कहा, “ चायका पानी फिर चढा दिया है मॉ, तैयार होनेमें देर नहीं लगेगी। ” यह कह कमरेके अन्दर दाखिल हो उसने चायकी कटोरी उठा ली।

राजलक्ष्मीने मुझसे कहा, “ अब देरी मत करो, उठो। इस बार फिर चाय फेके जानेपर रतन चिढ जायगा। वह अपव्यय सहन नही कर सकता। क्यों ठीक है न रतन ? ”

रतन भी जवाब देना जानता है। बोला, “ मॉ, आपका बर्दाश्त नहीं कर सकता, पर बाबूके लिए मै सब कुछ सहन कर सकता हूँ। ” कहकर वह चायकी कटोरी लेकर चला गया। क्रोधमे वह राजलक्ष्मीको ‘ आप ’ कहता था, अन्यथा ‘ तुम ’ कहकर ही पुकारता था।

राजलक्ष्मीने कहा, “ रतन सचमुच तुमको बहुत प्यार करता है। ”

“ मेरा भी यही ख्याल है। ”

“ हॉं। जब तुम काशीसे चले आये तो उसने झगड़ा करके मेरा काम छोड़ दिया। मैंने नाराज होकर कहा, ‘ रतन, मैंने तेरे साथ जो सलूक किया, उसका क्या यही प्रतिफल है ? ’ उसने कहा, ‘ मॉ, रतन नमकहराम नहीं है। मैं भी बर्मा जा रहा हूँ, बाबूकी सेवा करके तुम्हारा ऋण चुका दूँगा। ” तब उसका हाथ पकड़ लिया और अपना अपराध स्वीकार कर उसे शान्त किया। ”

कुछ ठहरकर कहा, " इसके बाद तुम्हारे विवाहका निमंत्रण-पत्र आया।"

बाधा देकर कहा, " झूठ न बोलो। तुम्हारी राय जाननेके लिए—"

इस बार उसने भी बाधा देकर कहा, " हाँ जी हाँ, मालूम है। नाराज होकर यदि विवाह करनेको लिख देती तो कर लेते न ? "

" नहीं। "

" नहीं क्या। तुम लोग सब कुछ कर सकते हो। "

राजलक्ष्मी कहने लगी, " रतन न जाने क्या समझा, केवल यह देखा कि मेरे मुँहकी ओर देखकर उसकी आँखें छलछला आई हैं। उसके बाद जब उसे चिट्ठीका जवाब डाकमे डालनेके लिए दिया, तो बोला, ' माँ, इस चिट्ठीको डाकमें न डाल सकूँगा, इसे मैं खुद ले जाकर उनके हाथमें दूँगा। ' मैंने कहा, ' व्यर्थमे रुपये खर्च करनेसे क्या फायदा होगा भइया ? ' रतनने हठात् आँखे पोछकर कहा, ' माँ, मै नहीं जानता कि क्या हुआ है, पर तुम्हे देखकर ऐसा मालूम पड़ता है कि मानों पद्माका किनारा कमजोर हो गया है,—इसका कोई ठीक नही कि पेड-पत्तों और मकानोको लेकर वह कब पानीमे ढह जाय। तुम्हारी दयासे मेरे अब कोई कमी नहीं है,— यह रुपये तुम दोगी तो भी मै न ले सकूँगा। अगर विश्वनाथ बाबाने सिर उठाकर देख लिया, तो मेरे गाँवकी झोंपडीमे अपर्ना दासीको थोडा-सा प्रसाद भेज देना, वह कृतार्थ हो जायगी। "

" नाई-बेटा कितना सयाना है ! "

सुनकर राजलक्ष्मीने होठ दबाकर सिर्फ हँस दिया और कहा, " अच्छा, अब देरी मत करो, जाओ। "

दोपहरको जब वह भोजन कराने बैठी तो मैंने कहा, " कल तो मामूली साडी पहने हुई थी, पर आज सबेरेसे ही यह बनारसी साड़ीका ठाठ क्यों है, बताओ भला ? "

" तुम्ही बताओ न ? "

" मै नही जानता। "

" जरूर जानते हो। इस साड़ीको पहचान सकते हो ? "

" हाँ, पहचान सकता हूँ। मैने बर्मासे खरीदकर भेजी थी। "

राजलक्ष्मीने कहा, " उसी दिन मैंने विचार कर लिया था कि अपने

जीवनके सबसे महान् दिनपर इसे पहनूँगी,— और कभी नहीं । ”

“ इसीलिए आज पहनी है ? ”

“ हॉ, इसीलिए आज पहनी है । ”

हॅसकर कहा, “ किन्तु वह तो हो गया । अब उतार दो । ” वह चुप हो रही । कहा, “ सुना है कि तुम अभी अभी कालीघाट जाओगी ? ”

राजलक्ष्मीने आश्चर्यके साथ कहा, “ अभी ? यह कैसे हो सकता है ? तुम्हे खिला-पिलाकर सुलानेके बाद ही तो छुट्टी मिलेगी । ”

“ नहीं, तब भी नहीं मिलेगी । रतन कह रहा था कि तुम्हारा खाना-पीना प्रायः बन्द-सा हो गया है । सिर्फ कल जरा-सा खाया था और आजसे फिर उपवास शुरु हो गया है । मालूम है, मैंने क्या स्थिर किया है ? अबसे तुम्हे कडे शासनमे रखूँगा । अब तुम्हारी जो खुशी होगी, न कर सकोगी । ”

राजलक्ष्मीने प्रसन्न मुखसे कहा, “ ऐसा हो तो जी जाऊँ महाशयजी, तब खूब खाऊँगी-पीऊँगी, किसी झझटमे न पडना होगा । ”

“ इसीलिए आज तुम कालीघाट भी न जा सकोगी । ”

राजलक्ष्मीने हाथ जोडकर कहा,“ तुम्हारे पैरो पडती हूँ, सिर्फ आज-भरके लिए माफ कर दो, आयन्दा पुराने जमानेके नवाब-बादशाहोंकी खरीदी हुई लौडीकी तरह रहूँगी,— इससे अधिक तुमसे और कुछ भी न चाहूँगी । ”

“ अच्छा, यह तो बताओ कि इतना विनय क्यों ? ”

“ विनय नही, यह सत्य है। अपनी औकात समझकर नहीं चली, और न तुम्हे मानकर ही चली, इसलिए अपराधके बाद अपराध करते करते साहस बढ गया है। तुम्हारे ऊपर अब उस पहलेवाली लक्ष्मीका अधिकार नहीं है,—अपने ही दोषसे उसे खो बैठी हूँ । ”

देखा कि उसकी ऑखोमे ऑसू आ गये हैं । कहा, “ केवल आज-भरके लिए जानेकी आज्ञा दे दो मेरे राजा, मैं मॉकी आरती देख आऊँ । ”

कहा, “ ऐसा ही है तो कल चली जाना । तुम्हींने तो कहा कि कल सारी रात जाग कर मेरी सेवा करती रहीं । आज तुम बहुत थकी हुई हो । ”

“ नहीं, मुझे कतई थकावट नही है । केवल आज ही नही, कितनी ही बार बीमारीके मौकोंपर देखा है कि लगातार रातोंके बाद रात जागनेपर

भी तुम्हारी सेवामें मुझे कोई कष्ट प्रतीत नहीं हुआ। न मालूम मेरी समस्त थकावटको कौन मिटा देता है। कितने दिनसे देवी-देवताओंको भूल गई थी, किसीमे भी मन न लगा सकी।—मेरे राजा, आज मुझे न रोको, जानेकी आज्ञा दे दो।"

"तो चलो, दोनों एक साथ चलें।"

राजलक्ष्मीकी दोनो ऑखे आनन्दसे चमक उठीं। बोली, "तो चलो, पर मन ही मन देवताकी अवज्ञा तो नहीं करोगे?"

जवाब दिया, "शपथ तो नहीं ले सकता, परन्तु तुम्हारा रास्ता देखते हुए मैं मन्दिरके द्वारपर ही खडा रहूँगा। मेरी तरफसे तुम देवतासे वर मॉग लेना।"

"बताओ, क्या वर मॉगूँ?"

अन्नका ग्रास मुँहमें डालकर सोचने लगा, पर कोई भी कामना न सूझी। "तुम्हीं बताओ न लक्ष्मी, मेरे लिये तुम क्या मॉगोगी?"

राजलक्ष्मीने कहा, "आयु मॉगूँगी, स्वास्थ मॉगूँगी, और यह मॉगूँगी कि तुम मेरे प्रति कठिन हो सको जिससे मुझे अधिक प्रश्रय देकर अब फिर मेरा सर्वनाश न करो।—करनेको ही तो बैठे थे!"

"लक्ष्मी, देखो यह तुम्हारे रूठनेकी बात है।"

"रूठना तो है ही। तुम्हारी वह चिट्ठी क्या कभी भूल सकूँगी?"

मुँह लटकाकर मैं चुप हो रहा।

उसने अपने हाथसे मेरा मुँह ऊपर उठाकर कहा, "पर इसलिए यह भी मैं नही सह सकती। किन्तु तुम कठोर तो हो नहीं सकोगे, तुम्हारा ऐसा स्वभाव ही नहीं है। लेकिन यह काम अबसे मुझे ही करना पडेगा, अवहेला करनेसे काम नहीं चलेगा।"

पूछा, "कौन-सा काम? और भी निर्जल उपवास?"

राजलक्ष्मीने हँसकर कहा, "उपवाससे सजा नहीं मिलती वरन् अहकार बढ जाता है। अब मेरा पथ वह नही है।"

"तब तुमने कौन-सा पथ ठहराया है?"

"ठीक नहीं कर सकी हूँ, खोजमे घूम रही हूँ।"

"अच्छा, सचमुच तुम्हे यह विश्वास होता है कि मै कभी कठोर हो सकता हूँ?"

"होता है जी, और खूब होता है।"

"नहीं, कभी नहीं होता, तुम झूठ कहती हो।"

राजलक्ष्मी सिर हिलाकर हँसते हुए बोली, "अच्छा, झूठ ही सही। किन्तु गुसाँईजी, यही तो मेरे लिए विपदकी बात है। तुम्हारी कमललताने भी क्या खूब नाम रक्खा है! दिनभर 'हाँ जी,' 'ओजी,' 'सुनो,' करते करते जान जाती थी, अबसे मैं भी पुकारूँगी 'नये गुसाँई' कहकर।"

"मजेसे।"

राजलक्ष्मीने कहा, "तब तो शायद कभी गलतीसे मुझे कमललता ही समझ लोगे,—पर इससे भी शांति ही मिलेगी। कहो, ठीक है न!"

हँसकर कहा, "लक्ष्मी, मरनेपर भी स्वभाव नहीं बदलता। ये ही बादशाही ज़मानेकी लौंडीकी-सी बातें हैं क्यों? अबतक तो वे तुम्हे जल्लादके हाथ सौंप देते!"

सुनकर राजलक्ष्मी भी हँस पड़ी, कहा, "जल्लादके हाथों मैंने खुद ही अपने आपको सौंप दिया है।"

"पर तुम सदासे इतनी दुष्ट रही हो कि तुमपर शासन करनेकी शक्ति किसी भी जल्लादमे नहीं है।"

राजलक्ष्मी प्रत्युत्तरमे कुछ कहने जा ही रही थी कि एकाएक विद्युत् वेगसे उठ बैठी, "अरे, यह क्या! दूध कहाँ है? मेरे सिरकी कसम, देखो, उठ न जाना।" और यह कहती हुई वह द्रुत गतिसे बाहर चली गई।

निःश्वास छोड़कर कहा, "कहाँ यह और कहाँ कमललता!"

दो मिनट बाद ही हाथमे दूधकी कटोरी लिये हुए आ गई और पत्तलके पास रख कर पखेसे हवा करने बैठ गई। कहने लगी, "अब तक मालूम होता था, मेरे मनमे कहीं पाप है। इसी कारण गङ्गामाटीमे मन नहीं लगा, और काशीधाम लौट आई। गुरुदेवको बुलाकर अपने बाल कटवा दिये, गहने उतार डाले और तपस्यामें पूर्णतः तल्लीन हो गई। सोचा, अब कोई चिन्ता नहीं, स्वर्गकी सोनेकी सीढी तैय्यार होती ही है!—एक आफत तुम थे, सो भी बिदा हो गये। किन्तु उस दिनसे नेत्रोंके पानीने किसी तरह रुकना ही न चाहा। इष्टमन्त्र सब भूल गई, देवता अन्तर्धान हो गये, हृदय बिलकुल शुष्क हो गया। भय हुआ कि यदि यही धर्मकी साधना है, तो फिर

यह सब क्या हो रहा है! अन्तमे कहीं पागल तो न हो जाऊँगी!"

मैंने सिर उठा कर उसके मुँहकी ओर देखा और कहा, "तपस्याके आरम्भमें देवता भय दिखाया करते हैं। उसके सामने टिके रहनेपर ही सिद्धि प्राप्त होती है।"

राजलक्ष्मीने कहा, "सिद्धिकी मुझे आवश्यकता नहीं, वह मुझे मिल गई है।"

"कहाँ मिली?"

"यहीं। इसी मकानमें।"

"विश्वास नहीं होता, प्रमाण दो।"

"प्रमाण दूँगी तुम्हें? मुझे क्या गरज पड़ी है?"

"किन्तु क्रीत दासियाँ ऐसी बाते नहीं किया करतीं।"

"देखो, क्रोध न दिलाओ। इस तरह बार बार 'क्रीत दासी' कहकर पुकारोगे, तो अच्छा न होगा।"

"अच्छा जाओ, तुम्हे मुक्त कर दिया, अबसे तुम स्वाधीन हुई।"

राजलक्ष्मी फिर हँसी, बोली, "मैं कितनी स्वाधीन हूँ, सो इस दफा मैं नस नसमे अनुभव कर रही हूँ। कल बातें करते करते जब तुम सो गये, तब अपने गलेपरसे तुम्हारा हाथ हटाकर मैं उठ बैठी। हाथ लगाकर देखा, तुम्हारा माथा पसीनेसे तर हो रहा है, आँचलसे पसीना पोछकर मै पंखा लेकर बैठ गई। मन्द प्रकाशको तीव्र कर दिया, उस समय तुम्हारे निद्राभिभूत चेहरेकी ओर देखकर आँखें हटा ही न सकी। इसके पहले क्यों नजर नहीं आया कि यह इतना सुन्दर है! अब तक क्या अन्धी थी? फिर सोचा, यदि यह पाप है तो फिर पुण्यकी मुझे आवश्यकता नहीं; और यदि यह अधर्म है तो चूल्हेमे जाय मेरी धर्म्मचर्चा; जीवनमें यदि यह मिथ्या है तो ज्ञान होनेके पूर्व ही किसके कहनेसे मैने इन्हें वरण किया था?—अरे यह क्या, पीते क्यों नहीं? सारा दूध वैसा ही पडा है!"

"अब नहीं पिया जाता।"

"तो कुछ फल ले आऊँ?"

"नहीं, वह भी नहीं।"

"किन्तु कितने दुबले हो गये हो!"

" यदि दुबला हो भी गया हूँ, तो बहुत दिनोंकी अवहेलासे। एक दिनमें ही सुधारना चाहोगी, तो व्यर्थ मारा जाऊँगा।"

वेदनासे उसका चेहरा पीला पड़ गया, कहा, " अब गलती न होगी। जो दण्ड मिला है उसे अब नहीं भूलूँगी। यही मेरा सबसे बड़ा लाभ है।" फिर कुछ देर मौन रहकर धीरे धीरे कहने लगी, " प्रातःकाल होनेपर उठ आई। भाग्यसे कुम्भकर्णकी निद्रा जल्दी नहीं टूटती, वरना लोभवश जगा ही तो डाला था! तब दरबानको साथ लेकर गङ्गा नहाने गई, मालूम पड़ा, मानो माताने समस्त ताप धो डाला है। घर आकर जब पूजा करने बैठी तब जाना कि केवल तुम अकेले ही नहीं लौट आये हो, साथ ही आ गया है मेरी पूजाका मन्त्र, आ गये हैं मेरे इष्ट देवता और गुरुदेव; और आ गये हैं मेरे श्रावणके मेघ। आज भी मेरी आँखोंसे जल बहने लगा, किन्तु वे अश्रु हृदयको मसोसकर निचोड़े हुए नहीं थे, बल्कि वह तो आनन्दसे उमड़े हुए झरनेकी धारा थी जिसने मुझे सब ओरसे भिगोकर विभोर कर दिया।—जाऊँ, कुछ फल ले आऊँ? पास बैठकर अपने हाथसे तराशकर तुम्हें फल खिलाये हुए बहुत दिन हो गये। जाऊँ? क्यों?"

" अच्छा जाओ।"

राजलक्ष्मी वैसी ही द्रुत गतिसे चली गई, मैंने एकबार फिर साँस छोड़कर कहा, " कहाँ यह और कहाँ कमललता!"

न जाने किसने जन्म-समय हज़ारों नामोंमेसे चुनकर इसका राजलक्ष्मी नाम रक्खा था!

दोनों जिस समय कालीघाटसे लौटे उस समय रातके नौ बजे गये थे। राजलक्ष्मी स्नान कर और कपड़े बदलकर सहज भावसे पास आ बैठी। कहा, " राज-सी पोशाक उतर गई। चलो जान बची।"

राजलक्ष्मीने सिर हिला कर कहा, "हाँ, वह मेरे लिए राज-सी पोशाक ही है, क्योंकि मेरे राजाने जो दी है। जब मरूँ तब वही मुझे पहना देनेके लिए कहना।"

" ऐसा ही होगा। पर तुम क्या आज सारा दिन स्वप्न देखनेमें ही बिता दोगी? अब कुछ खा लो।"

" खाती हूँ।"

" मैं रतनसे कह देता हूँ कि तुम्हारा खाना रसोइयेके हाथ यहीं भिजवा दे।"

" यहीं ? जैसी तुम्हारी इच्छा। लेकिन मैं तुम्हारे सामने बैठकर कैसे खाऊँगी ? कभी खाते देखा है ? "

" देखा तो नहीं है, पर देखनेमें बुराई क्या है ? "

" भला ऐसा भी कहीं होता है ? स्त्रियोंका राक्षसी खाना तुम लोगोंको हम देखने ही क्यों देगीं ? "

" देखो लक्ष्मी, तुम्हारी यह चाल आज नहीं चलेगी। तुम्हें अकारण ही उपवास नहीं करने दूँगा। खाओगी नहीं, तो मैं तुमसे नहीं बोलूँगा। "

" न बोलना। "

" मैं भी नहीं खाऊँगा। "

राजलक्ष्मी हँस पड़ी, बोली, " इस बार जीत गये, क्यों कि यह मैं न सह सकूँगी। "

रसोइया भोजन दे गया : फल, फूल, मिष्टान्न। नाम-मात्र भोजन कर वह बोली, " रतनने तुमसे शिकायत की है कि मैं खाती नहीं हूँ, परन्तु तुम ही बताओ, मैं खाती क्योंकर ? हारे हुए मुकद्दमेकी अपील करने कलकत्ते आई थी। रतन नित्य तुम्हारे यहाँसे वापिस आता था पर भयके मारे कुछ पूछनेका साहस ही मेरा न होता था, क्योंकि, वह कहीं यह न कह दे कि मुलाकात हुई थी पर बाबू आये नहीं। जो दुर्व्यवहार किया है, उसके कारण मेरे पास तो कहनेके लिए कुछ है नहीं। "

" कहनेकी आवश्यकता भी नहीं है। उस समय स्वयं घर आकर, जिस प्रकार कॉंचपोका* तिलचट्टेको पकड़ ले जाता है, तुम भी ले जातीं। "

" तिलचट्टा कौन,—तुम ? "

" यही तो समझता हूँ, ऐसा निरीह जीव संसारमें और कौन है ? "

एक क्षण चुप रहकर राजलक्ष्मी बोली, " किन्तु तो भी, मन ही मन मैं जितना तुमसे डरती हूँ उतना और किसीसे नहीं। "

" यह परिहास है। पर इसका कारण पूछ सकता हूँ ? "

राजलक्ष्मी फिर कुछ क्षण तक मेरी ओर देखती रही, बोली, " कारण यह है कि मैं तुम्हे भली भाँति पहचानती हूँ। मैं जानती हूँ कि स्त्रियोंके प्रति तुम्हारी सचमुचकी आसक्ति जरा भी नहीं है, जो कुछ है वह केवल

* हरे रंगका एक पतिंगा।

दिखावेका शिष्टाचार है। संसारमे किसीके प्रति भी तुम्हें मोह नहीं है, यथार्थ प्रयोजन भी तुम्हें उसका नहीं है। तुम्हारे 'ना' कह देनेपर किस प्रकार तुम्हे लैटाऊँगी ? ”

“ लक्ष्मी, इसमें थोड़ी-सी भूल हो गई है। पृथ्वीकी एक वस्तुमें आज भी मेरा मोह है, और वह हो तुम। केवल यहींपर 'ना' नहीं कहा जाता। तुमने अबतक श्रीकान्तकी यही बात न जानी कि केवल इसके लिए वह दुनियाकी सब वस्तुओंको त्याग सकता है। ”

“ हाथ धो आऊँ, ” कहकर राजलक्ष्मी जल्दीसे उठकर चली गई।

दूसरे दिन, दिन और दिनान्तके सब काम निबटाकर, राजलक्ष्मी मेरे पास आ बैठी। कहने लगी, “ कमललताकी कहानी सुनूँगी, सुनाओ। ” जो कुछ जानता था, सब सुना दिया, केवल अपने सम्बन्धमे कुछ कुछ छोड़ दिया, क्यों कि उससे गलत फहमी होनेकी सम्भावना थी।

मन लगाकर आद्योपात सारी बातें सुनकर उसने धीरेसे कहा, “ यतीनकी मृत्यु ही उसे सबसे अधिक चुभी है, उसीके दोषसे वह मारा गया। ”

“ उसका क्या दोष ? ”

“दोष कैसे नहीं है ? अपना कलक छुपानेके लिए उसीसे तो उसने आत्महत्या करनेमे सहायता माँगी थी। उस दिन तो यतीन स्वीकार नहीं कर सका, किन्तु एक और दिन अपना कलक छिपानेके लिए उसे भी वही मार्ग सबसे पहले नजर आया। ऐसा ही होता है, इसीलिए पापमे सहायताके लिए किसी मित्रको नहीं बुलाना चाहिए। इससे एकका प्रायश्चित्त दूसरेके गले पड जाता है।— वह स्वय तो बच गई, किन्तु उसका स्नेहका धन मर गया। ”

“ युक्ति कुछ समझमें नहीं आई, लक्ष्मी ! ”

“ तुम कैसे समझोगे ? समझा है कमललताने और तुम्हारी राजलक्ष्मीने। ”

“ ओः—ऐसा है ? ”

“ नहीं तो क्या। भला कहो तो हमारा जीवन कितना-सा है, उसका क्या मूल्य है, जब हम देखती हैं तुम्हारी तरफ—”

“ किन्तु कल तुमने ही तो कहा था कि मेरे मनकी सब कालिख साफ हो गई और अब कोई ग्लानि नहीं है,—तो वह क्या झूठ था ? ”

“ झूठ ही तो था। कालिख तो मरनेपर ही पुछेगी, उससे पहले नहीं। मरना भी चाहा था, केवल तुम्हारे ही कारण न मर सकी। ”

" सब मालूम है, पर तुम यदि इसे लेकर बारम्बार दुःख दोगी तो मैं इस तरह भाग जाऊँगा कि फिर ढूँढ़नेपर भी न पाओगी । "

राजलक्ष्मीने भयभीत हो मेरा हाथ पकड़ लिया और बिलकुल छातीके पास खिसक आई । बोली, " अब ऐसी बात कभी मुँहपर भी नहीं लाना । तुम सब कुछ कर सकते हो, तुम्हारी निष्ठुरता कहीं भी बाधा नहीं मानती । "

" तब कहो कि अब ऐसी बात न कहोगी ? "

" नहीं कहूँगी । "

" बोलो, सोचूँगी भी नहीं । "

" तुम भी कहो कि अब मुझे छोड़कर कभी नहीं जाओगे ? "

" मैं तो कभी गया नहीं लक्ष्मी ! और जब कभी गया हूँ तब केवल इसी लिए कि तुमने मुझे नहीं चाहा । "

" वह तुम्हारी लक्ष्मी नहीं, कोई और होगी । "

" उस किसी औरसे ही तो आज भय लगता है ! "

" नहीं, अब उससे मत डरो, वह राक्षसी मर चुकी है । "

यह कहकर उसने मेरे उसी हाथको जोरसे पकड़ लिया और चुपचाप बैठ रही।

पाँच-छह मिनट तक इसी प्रकार बैठे रहनेके पश्चात् उसने दूसरी चर्चा छेड़ दी, कहा, " तुम क्या सचमुच बर्मा जाओगे ? "

" हाँ, सचमुच ही जाऊँगा । "

" जाकर क्या करोगे,—नौकरी ? पर हम लोग तो सिर्फ दो ही प्राणी हैं,—हम लोगोंकी आवश्यकतायें ही कितनी हैं ? "

" किन्तु उन कितनीका भी तो प्रबन्ध करना होगा । "

" वह भगवान् दे देंगे । पर तुम नौकरी नहीं करने पाओगे, वह तुम्हारे स्वभावके अनुकूल नहीं है । "

" नहीं कर सकूँगा तो वापिस चला आऊँगा । "

" जानती हूँ, वापिस तो आना ही पड़ेगा, केवल मुझको कष्ट देनेके लिए हठपूर्वक इतनी दूर ले जाना चाहते हो । "

" चाहो तो कष्ट नहीं भी करो । "

राजलक्ष्मीने एक क्रुद्ध कटाक्ष फेंक कर कहा, "देखो, चालाकी मत करो।"

मैंने कहा, " चालाकी नहीं करता, चलनेसे तुम्हें वास्तवमें कष्ट होगा ।

भोजन पकाना, बर्तन माँजना, घर-बार साफ करना, बिछौने बिछाना—"

राजलक्ष्मीने कहा, " तब दाई-नौकर क्या करेंगे ? "

" दाई–नौकर कहाँ ? उनके लिए रुपये कहाँ हैं ? "

राजलक्ष्मीने कहा, " अच्छा, न सही। तुम मुझे चाहे कितना ही भय दिखाओ, लेकिन मैं तो चलूँगी ही। "

" तो चलो। केवल मै और तुम, कामके मारे न मिलेगा झगड़ा करनेका अवसर और न मिलेगी पूजा तथा उपवास करनेकी फुर्सत। "

" न मिलने दो ! मैं क्या कामसे डरती हूँ ? "

" सच है, डरती नहीं हो, पर तुम कर न सकोगी। दो दिन बाद ही वापिस आनेके लिए आफत मचाना शुरू कर दोगी। "

" इसमें भी क्या कोई डर है ? साथ लेकर जाऊँगी तथा साथ ही वापिस ले आऊँगी। कमसे कम तुम्हें छोड़कर तो न आना होगा। " कहकर वह एक क्षणके लिए कुछ सोचने लगी फिर बोली, "हॉ, यह ठीक रहेगा। एक छोटेसे घरमे केवल हम और तुम रहेंगे, न कोई दास होगा न दासी। जो खानेको दूँगी वही खाओगे, जो पहननेको दूँगी वही पहनोगे।—नही ? तुम देखना, मेरी आनेकी शायद इच्छा ही न होगी। "

" सहसा वह मेरी गोदीमे अपना सिर रखकर लेट गई और बहुत देरतक ऑखे बन्द कर निस्तब्ध पडी रही।

" क्या सोच रही हो ? "

राजलक्ष्मी नेत्र खोलकर किंचित् मुस्कराई और बोली, " हम लोग कब चलेंगे ? "

" इस मकानकी कुछ व्यवस्था कर दो, फिर जिस दिन चाहो प्रस्थान कर दो। "

उसने सिर हिला कर स्वीकृति जताई और फिर नेत्र मूँद लिये।

" फिर क्या सोच रही हो ? "

राजलक्ष्मीने ताकते हुए कहा, " सोच रही हूँ कि एक बार मुरारीपुर नहीं जाओगे ? "

" हॉ, विदेश जानेके पूर्व एक बार उन्हें मिल आनेका वचन तो दिया था। "

" तो चलो, कल ही दोनों चलें। "

"तुम भी चलोगी ?"

"क्यों, इसमें डर क्या है ? तुम्हें चाहती है कमललता और उसे चाहते हैं हमारे गौहर दादा। यह हुआ खूब है !"

"यह सब तुमसे किसने कहा ?"

"तुम्हींने।"

"न, मैंने नहीं कहा।"

"हाँ, तुम्हींने कहा है, केवल तुम्हें यह ख्याल नहीं है कि कब कहा है।"

सुनकर संकोचसे व्याकुल हो उठा। कहा, "खैर, जो कुछ भी हो, पर तुम्हारा वहाँ जाना उचित नहीं है।"

"क्यों नहीं है ?"

"उस बेचारीका मजाक करके तुम उसे तंग कर डालोगी।"

राजलक्ष्मीकी भृकुटी तन गई, उसने क्रोधित स्वरमें कहा, "अब तक तुम्हें मेरा यही परिचय मिला है ? मैं क्या उसे इसीलिए लज्जित करूँगी कि वह तुमसे प्रेम करती है ? तुमसे प्रेम करना क्या अपराध है ? मैं भी तो स्त्री हूँ। यह भी तो हो सकता है कि जानेपर मैं भी उसे चाहने लग जाऊँ।"

"तुम्हारे लिए कुछ भी असम्भव नहीं है लक्ष्मी। चलो, तुम भी चलो।"

"हाँ, चलो, कल सबेरेकी गाड़ीसे ही हम दोनों चल दें। तुम कोई चिन्ता न करो, इस जीवनमें मैं तुम्हें कभी दुःखी न करूँगी।"

इतना कहकर वह एक तरह विमना-सी हो गई। आँखें बन्द हो गई, साँस रुकने लगा, सहसा न जाने वह कितनी दूर चली गई।

भयभीत होकर उसे हिलाकर पूछा "यह क्या ?"

राजलक्ष्मी आँखें खोलकर किंचित् मुस्कराई और बोली, "कहाँ, कुछ भी तो नहीं !"

आज उसकी यह हँसी भी न जाने मुझे कैसी लगी !

११

दूसरे दिन मेरी अनिच्छाके कारण जाना न हुआ किन्तु उसके अगले दिन किसी प्रकार भी न अटका सका और मुरारीपुरके अखाड़ेके लिए रवाना होना पड़ा। जिसके बिना एक कदम भी चलना मुश्किल है वह राजलक्ष्मीका

वाहन रतन तो साथ चला ही, पर रसोईघरकी दाई लालूकी माँ भी साथ चली। कुछ जरूरी चीजें लेकर रतन सबेरेकी गाड़ीसे रवाना हो गया है। वहाँ पहुँच कर वह स्टेशनपर पहलेहीसे दो घोड़ा-गाड़ियाँ ठीक कर रखेगा। हम लोगोंके साथ जो सामान बाँधा गया है वह भी तो कम नहीं है।

मैंने प्रश्न किया, " वहाँ क्या घरबार बसाने जा रही हो ? "

राजलक्ष्मीने कहा, "वहाँ क्या दो-एक दिन भी न रहेंगे ? देशके वन-जङ्गल, नदी-नाले, घाट-मैदान क्या तुम अकेले ही देख आओगे ? मैं क्या उस देश-की लड़की नहीं हूँ ? मेरी क्या देखनेकी इच्छा नहीं होती ? "

" मानता हूँ कि होती है, पर इतनी चीजे,-इतने तरहका खाने-पीनेका आयोजन—"

" तो तुम क्या यह कहते हो कि देवस्थानमे खाली हाथ चला जाय? और तुम्हे तो कुछ सब ढोना नहीं है, फिर इतनी चिन्ता क्यों ? "

चिन्ता तो बहुत थी, पर कहता किससे ? सबसे अधिक भय इसी बातका था कि यह वैष्णवी-बैरागियोंका छुआ हुआ देवताका प्रसाद माथेपर तो मज़ेसे चढ़ा लेगी किन्तु मुँहमे न डालेगी। और कौन जानता है कि वहाँ जाकर वह किस बहाने उपवास प्रारम्भ कर देगी या भोजन पकाने बैठ जायगी। केवल एक भरोसा है, राजलक्ष्मीका मन सचमुच ही भद्र है। अकारण गले पड़कर वह किसीको चोट नहीं पहुँचा सकती। यदि उसे कुछ ऐसा करना भी हुआ तो प्रसन्न-मुख हास-परिहासके साथ इस प्रकार करेगी कि मुझे और रतनको छोड़ कोई समझ भी नहीं पायगा।

राजलक्ष्मीकी शारीरिक गठनमे बाहुल्य-भार कभी नहीं हुआ और फिर संयम तथा उपवासने उसे मानो लघुताकी एक दीप्ति दान दी है। विशेष कर आज उसकी साज-सज्जा कुछ विचित्र ही है। भोर होनेके पहले ही वह स्नान कर आई है, गङ्गाघाटके उड़िया पण्डेका यत्नपूर्वक लगाया हुआ तिलक उसके मस्तकपर है, कत्थई रंगकी फूल-फल तथा बेल-बूटोंसे चित्रित वृंदावनी साड़ी पहन रक्खी है, शरीरपर वे ही कुछ थोड़े-से गहने हैं, मुखपर स्निग्ध प्रसन्नता है, और अपने काममे तल्लीन है। कल लम्बे आईने लगीं दो आलमारियाँ खरीद लाई थी, आज जानेसे पूर्व उनमें जल्दी जल्दी न जाने क्या रख रही है। काम करते करते उसके हाथोंके कड़ोंकी शार्क मछ-

लीकी आँखे बीच बीचमें चमक उठती हैं, गलेमें पड़े हुए हीरे-पन्नेके जड़ाऊ हारकी विभिन्न वर्णच्छटा किनारीके व्यवधानमेंसे झलक उठती है। उसके कानोंके पाससे भी एक नीली आभा निकल रही है। मेज़पर चाय पीने बैठकर मैं एकटक उसी ओर देख रहा था। उसमें एक दोष था, घरमें वह जाकेट या ब्लाउज़ नहीं पहनती थी, अतएव जरा असावधान होनेपर उसकी गर्दन तथा बाहुका बहुत-सा अंश अनावृत हो पड़ता था। यदि इसके लिए कहा जाता तो वह हँसकर कहती,—बाबा, मुझसे यह सब नहीं हो सकता। मैं ठहरी गॉवकी औरत, मुझे दिन-रात बीबीयाना ठाठ नहीं सुहाता। अर्थात्, हम शुचिवायुग्रस्त जीवोंके लिए कपड़ोंका ज्यादा पहनना परेशानीका काम है! आलमारीका पलड़ा बन्द करते हुए एकाएक आईनेमें उसकी दृष्टि मुझपर पड़ गई। शीघ्रतासे साड़ी सँभालकर वह मेरी ओर घूमकर खड़ी हो गई और नाराज़ होकर बोली, " फिर भी ताक रहे हो ? अबकी बार बार मुझे इतना क्यों ताक रहे हो, कहो तो ? " और कहकर ही वह हँस पड़ी।

मैं भी हँसा, बोला, " सोच रहा था कि विधाताको फरमाइश देकर न जाने किसने तुम्हें गढ़वाया था। "

राजलक्ष्मीने कहा," तुमने। नही तो दुनियासे ऐसी निराली पसन्दगी और किसकी हो सकती है ? मेरे आनेके पॉच-छह वर्ष पूर्व तुम आये थे, और आते समय उन्हे बयाना दे आये थे। याद नही है क्या ? "

" नही, किन्तु तुमने कैसे जाना ? "

" चालान करते समय विधाताने ही कानमें कह दिया था। पर तुम चाय पी चुके ? देर करोगे तो आज भी जाना नही होगा। "

" न सही। "

" पर बतलाओ, क्यों ? "

" वहॉ भीड़मे शायद तुम्हें ढूँढ न पाऊँगा। "

राजलक्ष्मीने कहा, " मुझे तो तुम पा लोगे, पर मैं तुम्हें खोजकर पा जाऊँ तो गनीमत है। "

मैंने कहा, " यह भी तो ठीक नहीं है। "

उसने हँसकर कहा, " नहीं, ऐसा नहीं होगा। तुम्हें चलना ही पड़ेगा सुना है कि 'नये गुसाई'का वहॉ एक अलग कमरा है, मैं जाते ही उसका

कुंडा तोड़कर रख दूँगी। कोई भय नहीं, ढूँढ़ना नहीं होगा,—दासी तुम्हें यों ही मिल जायगी।"

"तो चलो।"

जिस समय हम लोग मठमें पहुँचे उस समय देवताकी मध्याह्नकालीन पूजा समाप्त ही हुई थी। बिना बुलाये बिना सूचनाके अकस्मात् इतने प्राणी हाजिर हो गये, किन्तु फिर भी, उन लोगोंको इतनी खुशी हुई कि कह नहीं सकता। बड़े गुसाईं आश्रममें नहीं हैं, गुरुदेवसे मिलने फिर नवद्वीप गये हैं, किन्तु इस बीच ही दो वैरागियोंने आकर मेरे कमरेमें अड्डा जमा लिया है।

कमललता, पद्मा, लक्ष्मी, सरस्वती तथा और भी कईने आकर हम लोगोंकी सादर अभ्यर्थना की। कमललताने मेरे गलेसे कहा, "नये गुसाईं, तुम इतनी जल्दी फिर हम लोगोंको दिखाई दोगे, ऐसी आशा नहीं की थी।"

राजलक्ष्मीने इस प्रकार बातचीत की, मानो न जाने कबका परिचय है। कहा, "कमललता जीजी, इन कई दिनोंसे इनकी जबानपर केवल तुम्हारी ही चर्चा थी। इससे पहले ही आना चाहते थे, पर मेरे कारण ही ऐसा न हो सका। इसमें मेरा ही दोष है।"

कमललताका मुख कुछ क्षणके लिए लाल हो गया, पद्मा हँस पड़ी और उसने आँखे फिरा ली।

राजलक्ष्मीकी वेश-भूषा तथा चेहरेसे सभीने उसे भद्र परिवारका समझा, केवल मेरे साथ उसका क्या सम्बन्ध है, यह निस्सन्देह कोई न जान सका। परिचयके लिए सभी उत्सुक हो रहे। राजलक्ष्मीकी आँखोंसे कुछ भी नहीं छिपता। उसने कहा, "कमललतादीदी, मुझे पहिचान नहीं सकीं?"

कमललताने सिर हिलाकर कहा, "नहीं।"

"वृन्दावनमे कभी नहीं देखा?"

कमललता भी निर्बोध नहीं है, उसने परिहास समझ लिया और हँसकर कहा, "याद तो नहीं पड़ रहा बहन।"

राजलक्ष्मीने कहा, "याद न पड़ना ही अच्छा है जीजी। मैं इसी देशकी लड़की हूँ, वृन्दावनको कभी नहीं गई," कहकर वह हँस पड़ी। फिर लक्ष्मी, सरस्वती तथा अन्य सबके चले जानेके बाद मुझे दिखाकर कहा, "हम लोग एक ही गाँवमें एक ही गुरुकी पाठशालामें पढ़ते थे, दोनोंमें ऐसा

प्रेम था जैसे भाई-बहन हों। मैं मुहल्लेके रिश्तेसे 'दादा' कहकर पुकारती थी और ये मुझे बहनकी तरह प्यार करते थे। शरीरपर कभी हाथ तक नहीं लगाया।" फिर मेरी ओर देखकर कहा, "क्योंजी, जो कुछ कह रही हूँ सच है न?"

पद्मा खुश होकर बोली, "इसीसे तुम दोनों देखनेमें एकसे लगते हो। दोनों ही ऊँचे और पतले, केवल तुम गोरी हो और नये गुसाईं साँवले।"

राजलक्ष्मीने गम्भीर होकर कहा, "हम लोगोंके ठीक एकसे हुए बिना काम कैसे चल सकता है पद्मा!"

"अरी मैया! तुम्हे तो मेरा नाम भी मालूम है। नये गुसाईंने बता दिया है शायद?"

"बताया है, तभी तो तुम लोगोंको देखने आई। मैंने कहा, अकेले क्यों जाओगे? मुझे भी साथ ले चलो। तुमसे तो मुझे कोई डर नहीं, एक साथ देखकर कोई कलंक भी न लगायेगा, और यदि लगाया भी तो हर्ज क्या है, विष नीलकण्ठके गलेमें ही रह जायगा, पेटमें नहीं उतरेगा।"

मैं अब चुप न रह सका। औरतोंका यह किस प्रकारका मज़ाक है, यह वे ही जानें। क्रोधित होकर कहा, "बताओ, लड़कियोंके साथ क्यों झूठा मज़ाक कर रही हो?"

राजलक्ष्मीने भले मानुसकी तरह कहा, "सच्चा मज़ाक। न हो तुम्हीं बता दो। जो कुछ जानती हूँ, सरल मनसे कह रही हूँ, इससे तुम नाराज क्यों होते हो?"

उसका गाम्भीर्य देखकर गुस्से होकर भी मैं हँस पड़ा, "हाँ, सरल मनसे कह रही हो!—कमललता, संसारमें इतनी बड़ी शैतान और वाचाल तुम्हें तलाश करनेपर भी दूसरी नहीं मिलेगी। इसका कुछ न कुछ मतलब है, इसकी सब बातोंपर सहज ही विश्वास न कर लेना।"

राजलक्ष्मीने कहा, "निन्दा क्यों करते हो गुसाईं? तब तो मेरे सम्बन्धमें तुम्हारे मनमें ही कोई मतलब है।"

"हाँ, है तो।"

"पर मेरे मनमें नहीं है। मैं निष्पाप निष्कलंक हूँ।"

"हाँ, युधिष्ठिर!"

कमललता भी हँसी, किन्तु उसके बोलनेकी भङ्गीपर। वह शायद ठीक ठीक कुछ समझ न सकी, सिर्फ उलझनमें पड़ गई। कारण, उस दिन भी तो किसी रमणीसे अपने सम्बन्धका मैंने कोई आभास नहीं दिया था। और देता भी किस तरह ? देनेके लिए उस दिन था ही क्या ?

कमललताने पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है बहन ?"

"मेरा नाम राजलक्ष्मी है, और ये पहलेका अंश छोड़कर कहते हैं केवल 'लक्ष्मी'। मैं इन्हें 'एजी,' 'ओजी,' 'सुनो,' कहकर पुकारती हूँ। किन्तु अब "नये गुसाईं" कहकर पुकारनेके लिए कहा है। कहते हैं, इससे तृप्ति होगी।"

पद्माने सहसा ताली बजाकर कहा, "मैं समझ गई।"

कमललताने उसे धमकाकर कहा, "जलमुँहीके भारी बुद्धि है न। बता तो, क्या समझी ?"

"निश्चय समझ गई। बताऊँ ?"

"बताना नहीं होगा, जा।" कहकर उसने स्नेहके साथ राजलक्ष्मीका हाथ पकड़कर कहा, "बातों ही बातोंमें देर हो रही है बहन, धूपमें मुँह सूख गया है। जानती हूँ, कुछ खाकर भी नहीं आई। चलो, हाथ-मुँह धोकर देवताको प्रणाम करो, फिर सभी मिलकर प्रसाद पायें। तुम भी चलो गुसाईं,—" कहकर वह उसका हाथ पकड़कर मन्दिरकी ओर खींच ले गई।

अबकी बार मन ही मन मुझे विपत्ति दिखाई दी, क्योंकि अब आयगा प्रसाद ग्रहण करनेका आह्वान। खाने-पीने और छुआछूतका विचार राजलक्ष्मीके जीवनके साथ इस प्रकार ग्रथित है कि इस विषयमें सत्यासत्यका प्रश्न ही अवैध है। यह केवल विश्वास नहीं है, उसका स्वभाव है। इसे छोड़कर वह जी नहीं सकती। यह कोई नहीं जान सकता कि जीवनके इस एकान्त प्रयोजनकी सहज और सक्रिय सजीवताने कितनी बार कितने संकटोंसे उसकी रक्षा की है,—अपने आप वह बताएगी नहीं और जाननेसे कोई लाभ नहीं। केवल मैं ही जानता हूँ कि एक दिन राजलक्ष्मीको बिना चाहे ही दैवात् पाया है और आज वह सभी प्राप्त वस्तुओंसे बढ़कर है। किन्तु इस समय उस बातको जानें दो।

उसकी जो कुछ कठोरता है वह केवल अपने लिए, उसमें दूसरेपर कोई

अत्याचार नहीं है। वह हँस कर कहती है, "बाबा, जरूरत क्या है इतना कष्ट करनेकी ? आजकलके समयमे इतना बचकर चलनेसे प्राण नहीं बच सकते। वह जानती है कि मैं कुछ नहीं मानता। वह इसीमे खुश है कि उसकी आँखोंके सामने कुछ भयंकर घटना न हो। मेरी परोक्ष अनाचारकी कहानीसे कभी तो वह अपने दोनों कानोंको बन्द करके अपनी रक्षा करती है, या कभी गाल पर हाथ देकर अवाक् होकर कहती है, मेरे दुर्भाग्यसे तुम ऐसे क्यों हुए ! तुम्हारे कारण मेरा सब कुछ गया।

किन्तु आजका मामला ठीक वैसा नहीं है। इस निर्जन मठमे जो कई प्राणी शान्तिसे रहते हैं वे सब दीक्षित वैष्णव-धर्मावलम्बी हैं। ये लोग जाति-भेद नहीं मानते और पूर्वाश्रमकी बाते कभी मनमें भी नहीं लाते। इसीसे किसी अतिथिके आनेपर ये लोग निःसङ्कोच श्रद्धापूर्वक प्रसाद वितरण करते हैं और आजतक किसीने भी प्रसादको अस्वीकार कर इन लोगोंका अपमान नहीं किया। किन्तु यह अप्रीतिकर कार्य यदि आज, बिना बुलाये आकर, हमारे ही द्वारा घटित हो तो दुःखकी सीमा न रहेगी,—और विशेषकर मेरे दुःखकी। यह मैं जानता था कि कमललता मुँहसे कुछ न कहेगी, किसीको कुछ कहने भी न देगी,—और शायद केवल एक बार मेरी ओर देखकर ही फिर सिर नीचा कर अन्यत्र खिसक जायगी। तब इस मूक अभियोगका क्या उत्तर होगा,—खड़ा खड़ा मैं यही सोच रहा था। इसी समय पद्माने आकर कहा, "चलो नये गुसाई, दीदी तुम्हें बुला रही हैं। हाथ मुँह धो लिया है ?"

"नहीं।"

"तो आओ, मै पानी देती हूँ। प्रसाद दिया जा रहा है।"

"आज क्या प्रसाद बना है ?"

"आज देवताको अन्न-भोग लगा है।"

मैंने मन ही मन कहा कि तब तो और भी खुशीकी खबर है। पूछा, "प्रसाद किस जगह दिया है ?"

पद्माने कहा, "देवगृहके बरामदेमें। तुम बाबाजी लोगोंके साथ बैठोगे और हम औरतें बादमें खायेंगीं। आज हम लोगोको स्वय राजलक्ष्मी दीदी परोसेंगीं।"

"वे खायेंगी नहीं ?"

" नहीं। वह तो हम लोगोंकी तरह वैष्णव नहीं हैं, ब्राह्मणकी लड़की हैं। हम लोगोंका छुआ खानेसे उन्हें पाप लगता है।"

" तुम्हारी कमललता दीदी नाराज़ नहीं हुई।"

" नाराज़ क्यों होंगीं, वरन् हँसने लगीं। राजलक्ष्मी दीदीसे कहा, अगले जन्ममें हम दोनों बहनें एक ही माँके पेटसे जन्म लेंगीं। पहले मैं पैदा होऊँगी और तुम बाद। तब दोनों बहनें माँके हाथसे एक ही पत्तलपर खायेंगीं। उस समय यदि जात नष्ट होनेकी बात कहोगी तो माँ कान मल देगी।"

सुनकर खुश होकर सोचा, अब ठीक हुआ। राजलक्ष्मीको बात करनेमे अभी तक कोई प्रतिद्वन्दी नहीं मिला था। पूछा, " क्या जवाब दिया ?"

पद्माने कहा, " राजक्ष्मी दीदी भी सुनकर हँसने लगीं। कहने लगीं, माँ क्यों दीदी, तुम तो बड़ी बहन होगी ही, स्वयं कान मल देना। छोटीकी इतनी हिमाकत किसी तरह बर्दाश्त न करना।"

प्रत्युत्तर सुनकर चुप हो गया। मन ही मन प्रार्थना करता रहा कि कमललता इसके भीतरी अर्थको न समझ सके।

जाकर देखा कि मेरी प्रार्थना मंजूर हो गई है। कमललताने उस बातपर कोई ध्यान नहीं दिया, बल्कि इस अमेलको न मान कर ही इस बीच दोनोंमें खूब मेल हो गया है।

शामकी गाड़ीसे बड़े गुसाईं द्वारिकाप्रसाद आ गये और उनके साथ और भी कई बाबाजी आये। सर्वांगमें छापोंका परिमाण और वैचित्र्य देखकर संदेह न रहा कि ये भी अवहेलाके पात्र नहीं है। बड़े गुसाईं मुझे देखकर बहुत खुश हुए किन्तु उनके साथियोंने मेरी कोई परवा न की। परवा करनी भी न चाहिए, क्योंकि, सुना गया, उनमेंसे एक तो ख्यातिप्राप्त कीर्त्तनकर्त्ता हैं और दूसरे मृदङ्ग बजानेमें उस्ताद।

प्रसाद पाना समाप्त होनेपर मैं बाहर निकल पड़ा। वही सूखी नदी और वही वन-जङ्गल। चारों ओर वेणु और बेंतके कुञ्ज हैं,—शरीर बचाकर चलना मुश्किल है। आसन्न सूर्यास्तके समय किनारेपर बैठकर प्रकृतिकी लीला निरीक्षण करनेका सकल्प किया, किन्तु बोध हुआ कि पास ही कहीं अरबी जातिके 'अँधेरेके माणिक' (फूल) खिले हैं। उनकी सड़े हुए

मास जैसी बीभत्स दुर्गन्धने बैठने नहीं दिया। मन ही मन सोचा कि कवियोंको यह फूल बहुत पसन्द है। कोई इन फूलोंको ले जाकर उन्हें उपहार क्यों नहीं देता ? सन्ध्या होनेके पूर्व ही लौट आया। जाकर देखा कि वहाँ समारोहकी धूम है। ठाकुर-घर सजाया जा रहा है और आरतीके बाद कीर्तनकी बैठक होगी।

पद्माने कहा, " नये गुसाई, कीर्तन सुनना तुम्हें अच्छा लगता है, आज मनोहरदास बाबाजीका गाना सुननेपर तुम अवाक् हो जाओगे। कैसा बढ़िया गाते हैं ! "

वस्तुतः मेरे लिए वैष्णव कवियोंकी पदावली जैसी अन्य कोई मधुर वस्तु नहीं है। कहा, " सच, मुझे बहुत अच्छा लगता है पद्मा। बचपनमें दो-चार कोसके भीतर कहीं भी कीर्तन होनेकी खबर सुनता था तो तत्काल दौड़ जाता था, किसी भी तरह घरमे नहीं रह सकता था। समझमे आये चाहे न आये, लेकिन अन्ततक बैठा रहता था।—कमललता, आज तुम नहीं गाओगी ? "

कमललताने कहा, " नहीं गुसाई, आज नहीं। मेरी तो वैसी शिक्षा नहीं है, इसीलिए उनके सामने गाते हुए शर्म आती है। इसके अलावा उस बीमारीसे गला इतना खराब हो गया है कि अभीतक ठीक नहीं हुआ। "

" पर लक्ष्मी तो तुम्हारा गाना सुनने ही आई है। उसका ख्याल है कि मैंने तुम्हारे विषयमें बढ़ाकर कहा है। "

कमललताने लज्जासे कहा, " बढ़ा-चढ़ाकर तो जरूर कहा होगा गुसाई। " इसके बाद स्मित हास्यके साथ राजलक्ष्मीसे कहा, " तुम कुछ ख्याल न करना बहन, जो कुछ थोड़ा-बहुत आता है, वह किसी और दिन सुनाऊँगी।"

राजलक्ष्मीने प्रसन्न होकर कहा, " अच्छा दीदी, तुम्हारी जिस दिन इच्छा हो बुला भेजना, मैं खुद आकर तुम्हारा गाना सुन जाऊँगी। " मुझसे कहा, " तुम्हें कीर्तन सुनना इतना अच्छा लगता है, यह तो तुमने कभी नहीं कहा ! "

उत्तर दिया," तुमसे क्यों कहता ! गंगामाटीमे बीमार पड़कर जब शय्यापर पड़ा था, तब सूखे और सूने मैदानोंकी ओर देखते देखते दोपहरका वक्त कटता था, और दुर्भर संध्या किसी तरह अकेले कटना ही न चाहती थी—"

राजलक्ष्मीने चटसे मेरे मुँहको अपने हाथसे दबा दिया। कहा, "अगर और कुछ ज्यादा कहा, तो पैरोंमें सिर पटककर मर जाऊँगी।" फिर खुद ही अप्रतिभ हो हाथ हटाकर बोली, "कमललता दीदी, अपने बड़े गुसाईंजीसे कह आओ बहन, आज बाबाजी महाशयके कीर्तनके बाद ही मैं देवताको गाना सुनाऊँगी।"

कमललताने सदिग्ध कंठसे कहा, "लेकिन बहन, बाबाजी बड़े टीका-टिप्पणी करनेवाले हैं।"

राजलक्ष्मीने कहा, "भले ही हों, भगवानका नाम तो होगा।" विग्रह मूर्तियोंको हाथसे दिखाते हुए कहा, "ये शायद खुश हों। और बाबाजियोंका तो मैं उतना ख्याल नहीं करती बहन, पर मेरे ये दुर्व्वासा-देवता प्रसन्न हो जायँ तो जानमें जान आये।"

"प्रसन्न होनेपर लेकिन बखशीश मिलेगी!"

राजलक्ष्मीने सभय कहा, "रक्षा करो गुसाई, कहीं सबके सामने बखशीश देने मत आ जाना। तुम्हारे लिए असंभव कुछ भी नहीं है।"

सुनकर वैष्णवियाँ हँसने लगीं, पद्मा खुश होनेपर ताली बजाने लगती है। बोली, "मै–स–म–झ–ग–ई।"

कमललताने उसकी तरफ सस्नेह देखकर हँसते हुए कहा, "दूर हट कल-मुँही—चुप रह।" राजलक्ष्मीसे बोली, "इसे ले जाओ बहन, क्या मालूम अचानक क्या कह बैठे।"

देवताकी सन्ध्या-आरतीके बाद कीर्तनकी बैठक जमी। आज बहुतसे दीपक जल रहे थे। वैष्णव-समाजमें मुरारीपुरका आश्रम नितांत अप्रसिद्ध नहीं है, नाना स्थानोंसे कीर्तन करनेवाले वैरागियोंके दल आनेपर इस तरहका आयोजन अकसर हुआ करता है। मठमें सब तरहके वाद्ययंत्र मौजूद रहते हैं, देखा कि वे सब हाजिर कर दिये गये हैं। एक ओर वैष्णवियाँ बैठी हैं,—सब परिचित हैं, दूसरी ओर अज्ञात-कुल शील अनेक वैरागी-मूर्तियाँ हैं, नाना उम्र और तरह तरहके चेहरोंकी। बीचमें विख्यात मनोहरदास और उनके मृदंगवादक आसीन हैं। मेरे कमरेपर हालमें ही दखल करनेवाले नवयुवक बाबाजी हारमोनियममें सुर दे रहे हैं। यह प्रचार हो गया है कि कलकत्तेसे एक सभ्रान्त घरकी महिला आई हैं,—वे ही

गाना गायेंगीं। वे युवती हैं और धनवान् हैं, उनके साथ आये हैं दास-दासी, आये हैं अनेक प्रकारके खाद्य-समूह और कोई एक नया गुसाईं भी आया है,—वह है यहींका एक घुमक्कड़।

मनोहरदासकी कीर्तनकी भूमिका और गौर-चद्रिकाके* बीच राजलक्ष्मी कमललताके पास आकर बैठ गई। हठात्, बाबाजी महोदयका गला कुछ कॉपकर सॅभल गया, मृदगपर थपकी नहीं पड़ी! यह एक नितात दैवकी ही लीला थी। सिर्फ द्वारिकादास दीवारके सहारे जैसे ऑखें बद किये बैठे थे वैसे ही बैठे रहे। क्या मालूम, शायद वे जान ही न पाये कि कौन आया और कौन नहीं।

राजलक्ष्मी एक नीलाबरी साड़ी पहनकर आई है, और उसकी महीन जरीकी किनारीके साथ नीले रगका ब्लाउज मिलकर एक हो गया है। बाकी सब वैसा ही है, सिर्फ सुबहकी उड़िया पण्डेकी लगाई हुई छापे इस वक्त बहुत कुछ मिट गई हैं,—जो छापे बाकी बची हैं वे मानों आश्विनके छिन्न-भिन्न मेघ हैं जो न जाने कब नील आकाशमे बिला जायॅगे। वह अति शिष्ट-शात है, उसने मेरी ओर कटाक्षसे भी न ताका,—मानों पहचानती ही नही तो भी क्यों उसने अपनी जरा-सी हॅसी दबा दी, यह वही जाने। अथवा मेरी। भी भूल हो सकती है;—असम्भव तो है नहीं।

आज बाबाजी-महाराजका गाना जमा नही, पर यह उनके अपने दोषसे नही, लोगोंकी अधीरताके कारण। द्वारिकादासने ऑखें खोल राजलक्ष्मीका आह्वान कर कहा, "दीदी, हमारे देवताको अब तुम कुछ निवेदन करके सुनाओ, सुनकर हम भी धन्य हो।"

राजलक्ष्मी उसी ओर मुॅह कर बैठ गई। द्वारिकादासने मृदंगकी ओर अॅगुलीसे इशारा कर पूछा, "इससे कोई बाधा तो पैदा न होगी?"

राजलक्ष्मीने कहा, "नहीं।"

यह सुनकर सिर्फ वे ही नहीं, बल्कि मनोहरदास भी मन ही मन कुछ विस्मित हुए, क्योंकि, एक साधारण स्त्रीसे शायद उन्होंने इतनी आशा नहीं की थी।

गाना शुरू हुआ। संकोचकी जड़ता,—अज्ञताकी दुविधा कहीं भी नहीं है,—

* गानेके पहले चैतन्यदेवकी बन्दना।

निःसंशय कण्ठ अबाध जलस्रोतकी तरह प्रवाहित होने लगा। जानता हूँ, इस विद्यामें वह सुशिक्षिता है,—यह उसकी जीविका थी, पर ख्याल नहीं था कि बंगालके अपने संगीतकी इस धारापर भी उसने इतने यत्नके साथ अधिकार कर रखा है। किसे मालूम था कि प्राचीन और आधुनिक वैष्णव कवियोंकी इतनी विभिन्न पदावलियोंको उसने कण्ठस्थ कर रखा होगा। सिर्फ सुर-ताल और लयमे नहीं, बल्कि वाक्यकी विशुद्धता, उच्चारणकी स्पष्टता और प्रकाश-भगीकी मधुरतासे उसने इस शामको जिस विस्मयकी सृष्टि की वह कल्पनातीत था। पत्थरके देवता उसके सामने हैं और दुर्वासा देवता पीछे,—कहना मुश्किल है कि उसकी यह आराधना किसको ज्यादा प्रसन्न करनेके लिए थी। क्या जाने, यह बात आज उसके मनमे थी या नहीं कि गंगामाटीके अपराधका थोडा-सा क्षालन भी इससे हो जाय।

वह गा रही थी—

एके पद-पंकज पंके विभूषित, कंटक जरजर भेल,
तुया दरसन आशे कछु नाहिं जानलु, चिरदुख अब दूर गेल।
तोहारि मुरली जब श्रवणे प्रवेशल, छोडनु गृहसुखआस,
पंथक दुख तृणहुं करि न गणनु, कहतँह गोविंददास॥

बड़े गुसाईजीकी आँखोंसे अश्रु-धारा बह रही थी, वे आवेग और आनदकी प्रेरणासे उठ खडे हुए। मूर्तिके कंठसे मल्लिकाकी माला उतारकर उन्होने राजलक्ष्मीके गलेमे पहना दी और कहा, "प्रार्थना करता हूँ, तुम्हारे सब अकल्याण दूर हो जायें।"

राजलक्ष्मीने झुककर नमस्कार किया, फिर उठकर मेरे पास आई, सबके सामने पैरोंकी धूल माथेपर लगाई और आहिस्तेसे कहा, "यह माला रक्खी है, बख्शिशका डर न दिखाया होता तो यहीं तुम्हारे गलेमें पहना देती।" कहकर तुरत ही वह चली गई।

गानेकी बैठक खत्म हुई। ऐसा लगा मानों आज जीवन सार्थक हो गया।

क्रमशः प्रसाद-वितरणका आयोजन शुरू हुआ। अधकारमे उसे जरा ओटमें बुलाकर कहा, "वह माला रख दो, यहाँ नहीं, घर लौटकर तुम्हारे हाथोंसे ही पहनूँगा।"

राजलक्ष्मीने कहा, " यहाँ ठाकुर-घरमे पहन लोगे तो फिर उतार नहीं सकोगे,—शायद इसी बातका डर है ? "

" नहीं, अब डर नहीं है, वह दूर हो गया है। अगर सारी दुनिया मेरी होती तो तुम्हें आज वह भी दान कर देता। "

" ओह, कैसे महान् दानी हो ! पर वह तो तुम्हारी ही रहती जी। "

" तुम्हे आज असंख्य धन्यवाद। "

" क्यों, बताओ तो सही ? "

" आज खयाल हो रहा है, मै तुम्हारे योग्य नहीं हूँ। रूप, गुण, रस, विद्या, स्नेह और सौजन्यसे परिपूर्ण जो धन मुझे बिना याचनाके ही मिला है, उसकी ससारमे तुलना नही है। अपनी अयोग्यताके मारे शर्म आती है लक्ष्मी,—तुम्हारे निकट मै सचमुच बहुत कृतज्ञ हूँ। "

राजलक्ष्मीने कहा, " इस बार मैं सचमुच नाराज हो जाऊँगी। "

" सो हो जाओ। सोचता हूँ कि इस ऐश्वर्यको मै कहाँ रखूँगा ? "

" क्यों, चोरी जानेका डर है ? "

" नहीं, ऐसा आदमी तो कोई नजर नही आता लक्ष्मी। चोरी करके तुम्हे रख छोडने लायक बड़ी जगह वह बेचारा कहाँ पावेगा ? "

राजलक्ष्मीने उत्तर नही दिया, मेरा हाथ खींचकर थोडी देरतक हृदयके समीप रख छोडा। फिर कहा, " अंधकारमे ऐसे आमने सामने खड़े रहेगे तो लोग हँसेंगे नहीं ? पर सोच रही हूँ कि रातको तुम्हे कहाँ सुलाऊँगी—जगह तो है ही नहीं ! "

" रहने दो, कहीं भी सोकर रात काट दूँगा। "

" सो तो काट दोगे, पर तबियत तो तुम्हारी अच्छी है नहीं, बीमार पड सकते हो। "

" तुम्हे फिक्र करनेकी जरूरत नहीं, ये लोग कुछ न कुछ करेगे ही। "

राजलक्ष्मीने चिन्ताके स्वरमे कहा, " सब कुछ देख तो रही हूँ, पता नहीं क्या व्यवस्था करेंगे। पर मै फिक्र न करूँ और वे करे !—चलो, थोड़ा-सा खाकर सो जाना। "

लोगोंकी भीड़के कारण सोनेकी सचमुच ही जगह न थी। उस रातको किसी तरह एक खुले बरामदेमें मसहरी लगाकर मेरे सोनेकी व्यवस्था की गई।

त्रुटियोंके कारण राजलक्ष्मी अशान्ति बोध करने लगी, शायद रातको बीच बीचमें आकर देख भी गई, पर मेरी नींदमें कोई बाधा नहीं पड़ी।

दूसरे दिन बिछौनेसे उठनेपर देखा कि दोनों बहुत सारे फूल तोड़कर लौट आई हैं। कमललताने आज मेरे बदले राजलक्ष्मीको ही साथी बना लिया था। यह नहीं जानता कि वहाँ अकेलेमें उनमें क्या क्या बातें हुई, पर आज उन दोनोंका चेहरा देखकर मुझे बहुत संतोष हुआ। मानों दोनों बहुत पुरानी सखियाँ हैं, न जाने कितने समयकी आत्मीय। कल दोनों एक साथ एक ही शय्यापर सोई थीं,—जातिके विचारने वहाँ किसी तरहका रोड़ा नहीं अटकाया। इस बारेमे कि एक दूसरेके हाथका नहीं खातीं, कमललताने मुझसे हँसकर कहा, "तुम कुछ ख्याल न करना गुसाईं, इसका प्रबध हमारा हो गया है। अगली बार मैं बडी बहन होकर पैदा होऊँगी और इसके दोनों कान अच्छी तरहसे मल दूँगी।"

राजलक्ष्मीने कहा, "इसके बदले मैंने भी एक शर्त करा ली है गुसाईं कि अगर मै मर जाऊँ तो इसे वैष्णवीपनसे इस्तीफा देकर तुम्हारी सेवामें नियुक्त होना पड़ेगा। मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि तुम्हारे बिना मुझे मुक्ति नहीं मिलेगी और तब भूत बनकर दीदीके सिरपर चढ़ी फिरूँगी,—उसी सिंदबाद जहाजीके कन्धेपरके बूढ़े दैत्यकी तरह,—कन्धेपर बैठे बैठे इसके द्वारा सब काम करा लूँगी, तब छोड़ूँगी।"

कमललताने सहास्य कहा, "तुम्हे मरनेकी जरूरत नहीं बहन, तुम्हें कन्धेपर लिये मैं हरवक्त नहीं घूम सकूँगी।"

सबेरे चाय पीकर गौहरकी तलाशमें बाहर निकला। कमललताने आकर कहा, "ज्यादा देर न करना गुसाईं, और उन्हें भी साथ लेते आना। इधर देवताका भोग तैयार करनेके लिए आज एक ब्राह्मण पकड़ लाई हूँ। जैसा गंदा है वैसा ही आलसी। उसे सहायता देने राजलक्ष्मी साथमें गई हैं।"

"यह अच्छा नहीं किया। राजलक्ष्मीका खाना तो हो जायगा, पर तुम्हारे देवता उपासे रहेंगे।"

कमललताने डरसे जीभ काटते हुए कहा, "ऐसी बात न कहो गुसाईं, उसके कानोंमें भनक पड़ जायगी तो फिर यहाँ जल भी ग्रहण नहीं करेगी।"

हँसकर कहा, "चौबीस घंटे भी नहीं बीते कमललता, पर तुमने उसको पहचान लिया है।" उसने भी हँसकर कहा, "हाँ गुसाईं, पहिचान लिया है।

करोड़ोंमे खोजनेपर भी तुम्हें ऐसा एक भी मनुष्य नहीं मिलेगा भाई। तुम भाग्यवान् हो।"

गौहरसे मुलाकात नहीं हुई, वह घरपर नहीं था। उसकी एक विधवा बहिन सुनाम ग्राममे रहती है। नवीनने बताया कि वहाँ न जाने कौन-सा एक नया रोग फैला है, बहुत आदमी मर रहे हैं। दरिद्र बहिन लड़के-बच्चोंको लेकर आफतमें पड़ गई है, इसीलिए दवा-दारू कराने वह गया है। आज दस-बारह दिनोंसे कोई खबर नहीं है, नवीन डरके मारे मरा जा रहा है, पर कोई भी रास्ता उसे नहीं सूझता। एकाएक बडे जोरसे चीख मारकर वह रोने लगा। बोला, "शायद मेरे बाबू अब जिन्दा नहीं हैं। मै एक मूरख किसान हूँ, कभी गाँवसे बाहर नही गया, नहीं जानता कि कहाँ वह देश है और कहाँसे जाना होता है, नहीं तो सारी घर-गृहस्थी डूब जाती तो भी नवीन अबतक घर न बैठा रहता। चक्रवर्तीकी दिन-रात खुशामद करता हूँ कि महाराज, दया करो, ज़मीन बेचकर तुम्हे सौ रुपये देता हूँ, एक बार मुझे ले चलो, पर वह धूर्त ब्राह्मण जरा भी नहीं हिलता। पर यह भी कहे देता हूँ बाबू, कि अगर मेरे मालिक मर गये तो चक्रवर्तीके मकानको आग लगाकर जला दूँगा और फिर उसी आगमे आत्महत्या करके मर जाऊँगा। इतने बड़े नमकहरामको मै जिन्दा नहीं रहने दूँगा।"

उसको सान्त्वना देकर पूछा, "जिलेका नाम जानते हो नवीन ?"

नवीनने कहा, "केवल यह सुना है कि वह गाँव नदिया जिलेके किसी कोनेमें है। स्टेशनसे बैलगाड़ीमे काफी दूर जाना होता है।" बोला, "चक्रवर्ती जानता है, पर ब्राह्मण यह भी नही बतलाना चाहता।"

नवीन पुरानी चिट्ठियाँ वगैरह संग्रह कर लाया, पर उनसे कोई पता नहीं चला। सिर्फ यह पता लगा कि दो महीने पहले विधवा बेटीकी लडकीकी शादीके लिए चक्रवर्तीने गौहरसे दो सौ रुपये वसूल किये थे!

मूर्ख गौहरके पास बहुत रुपया है, फलतः अक्षम दरिद्र उसे ठगेगे ही,—इसके लिए क्षोभ करना वृथा है, फिर भी इतनी बड़ी शैतानी बहुत कम नजर आती है।

नवीनने कहा, "उसके लिए तो बाबूका मरना ही अच्छा है, झंझटोंसे बच जायगा न! उधारका एक पैसा भी नहीं चुकाना पड़ेगा।" यह असंभव नहीं है।

दोनों आदमी चक्रवर्तीके घर गये। इतना विनयी, ऐसा मीठी बातें करनेवाला और ऐसा पर-दुःखकातर भद्र व्यक्ति ससारमे दुर्लभ है। पर वृद्ध हो जानेके कारण स्मृतिशक्ति इतनी क्षीण हो गई है कि उसे किसी भी तरह याद नहीं आया, यहाँ तक कि जिलेका नाम भी ख्याल न आया! बडी कोशिशोंके बाद एक टाइम-टेबल लाकर उत्तर और पूर्व बगालके रेलवे स्टेशनोंके सबके सब नाम पढ गया, फिर भी वह स्मरण न कर सका। दुःख प्रकट करते हुए बोला, "लोग न जाने कितनी चीजें और रुपया-पैसा उधार ले जाते हैं बाबा, याद नहीं रहता और फिर कोई लौटाने भी नहीं आता। मन ही मन कहता हूँ कि सिरपर भगवान् हैं, वे ही इसका विचार करेंगे।"

नवीन अब और बर्दाश्त न कर सका, गरज उठा, "हाँ, वे ही तुम्हारा विचार करेंगे। अगर न करेंगे तो फिर मैं करूँगा!"

चक्रवर्तीने स्नेहार्द्र मधुर कण्ठसे कहा, "नवीन, झूठमूठके लिए क्यों नाराज़ होते हो भैया, तीन पन बीत गये, एक पन बाकी रहा है, यदि जानता तो क्या इतना भी न करता? गौहर क्या मेरे लिए पराया है? वह तो मेरे लडकेकी तरह है रे!"

नवीनने कहा, "यह सब मैं नहीं जानता। तुमसे अन्तिम बार कहता हूँ कि बाबूके पास ले चलना है तो ले चलो, नहीं तो जिस दिन उनकी कोई बुरी खबर मिलेगी, उस दिन रहे तुम और रहा मैं।"

चक्रवर्तीने प्रत्युत्तरमें कपालपर हाथ मारकर सिर्फ इतना कहा, "तकदीर नवीन, तकदीर! नहीं तो तुम मुझसे ऐसी बात कहते!"

अतएव, फिर दोनों आदमी लौट आये। मकानके बाहर खडे होकर मैंने आशा की कि अनुतप्त चक्रवर्ती शायद अब भी बुला ले। पर कोई उत्तर नहीं मिला, दरवाजेकी आड़से झाँककर देखा कि चक्रवर्ती जली हुई चिलम फेंककर बडे सन्तोषके साथ हुक्का तैयार कर रहा है।

गौहरका सवाद पानेका उपाय सोचते सोचते जब मैं अखाड़ेमें पहुँचा, तब करीब तीन बजे थे। देवताके कमरेके बरामदेमें औरतोंकी भीड़ लगी हुई थी। बाबाजियोंमेंसे कोई नहीं है, सम्भवतः सुप्रचुर प्रसाद-सेवाके परिश्रमसे निर्जीव हो कहीं विश्राम कर रहे हैं,—चूँकि रातके वक्त फिर एक बार प्रसादसे लड़ना होगा, अतएव उसके लिए भी बल-संचय करना जरूरी है!

झाँककर देखा कि भीड़के बीच एक हाथ देखनेवाला पण्डित बैठा हुआ है,—पंचाग, पोथी, खडिया, स्लेट, पेंसिल इत्यादि गणनाके विविध उपकरण उसके पास हैं। सबसे पहले पद्माकी नज़र ही मुझपर पड़ी, वह चिल्ला उठी, "नये गुसाई आ गये!"

कमललताने कहा "तब ही जान गई थी कि गौहर गुसाई तुम्हें यों ही नही छोड देगे, उन्होंने क्या खिलाया?—"

राजलक्ष्मीने उसका मुँह दबा दिया "रहने दो दीदी, यह मत पूछो।"

कमललताने उसका हाथ हटाते हुए कहा, "धूपमे मुँह सूख गया है, रास्तेकी धूल-मिट्टी सिरपर जम गई है,—नहाना-धोना हो गया क्या?"

राजलक्ष्मीने कहा, "तेल तो छूते नहीं, इसलिए नहा-धो लेने पर भी पता नहीं चलेगा दीदी।"

"इसमे शक नहीं कि नवीनने हर प्रकारकी कोशिश की, पर मैंने स्वीकार नही किया, बिना नहाये-खाये ही वापस लौट आया हूँ।"

राजलक्ष्मीने बडे आनंदके साथ कहा, "ज्योतिषीने मेरा हाथ देखकर कहा है कि मैं राजरानी होऊँगी।"

"क्या दिया?"

पद्माने कह दिया, "पाँच रुपया। राजलक्ष्मी दीदीके आँचलमे बँधे थे।"

मैंने हँसकर कहा," मुझे देती तो मै उससे भी अच्छा बता सकता था।"

ज्योतिषी उडिया ब्राह्मण था, बहुत अच्छी बगला बोलता था,—बंगाली कहा जा सकता है। उसने भी हँसकर कहा, "नही महाशय, रुपयेके लिए नही, रुपये तो मै बहुत कमाता हूँ। सच कहता हूँ कि ऐसा अच्छा हाथ मैंने दूसरा नही देखा। देखिएगा, मेरा देखा हुआ हाथ कभी झूठा नहीं होता।"

कहा, "ज्योतिषीजी, बिना हाथ देखे कुछ बता सकते हो?"

"बता सकता हूँ। एक फूलका नाम लीजिए।"

"सेमरका फूल।"

ज्योतिषीने हँसकर कहा, "सेमरका फूल ही सही। मै बता दूँगा कि आप क्या चाहते हैं।" कहकर उसने खड़ियासे दो मिनट तक हिसाब लगाकर कहा, "आप एक खबर जानना चाहते हैं।"

"कौन-सी खबर?"

वह मेरी ओर देखकर कहने लगा, " नहीं, मामले-मुकदमेकी नहीं, आप किसी आदमीकी खबर जानना चाहते हैं ! "

" कैसी खबर है, बता सकते हैं ?"

" बता सकता हूँ । खबर अच्छी है, दो-एक दिनमे ही मिल जायगी । "
सुनकर मन ही मन विस्मित हुआ, मेरा चेहरा देखकर सबने ही यह अनुमान किया ।

राजलक्ष्मीने खुश होकर कहा, " देखा न ? मैं कहती हूँ कि ये बड़ी अच्छी गणना करते हैं, पर तुम लोग तो किसी बातपर विश्वास ही नही करना चाहते,—हँसकर उड़ा देते हो । "

कमललताने कहा, " अविश्वास किसका ? नये गुसाईं, जरा अपना हाथ भी तो एक बार ज्योतिषीजीको दिखाओ । "

मेरे हाथ फैलाते ही ज्योतिषीने अपने हाथमे मेरा हाथ ले लिया, दो-तीन मिनटतक पर्यवेक्षण किया, हिसाब लगाया, फिर कहा, " महाशय, देखता हूँ कि आपके लिए एक बहुत बड़ी विपत्ति—

" विपत्ति ! कब ? "

" बहुत जल्दी । मरने-जीनेकी बात है । "

राजलक्ष्मीकी ओर ताक कर देखा कि उसके चेहरेपर खून नही है,—वह डरसे सफेद पड गया है ।

ज्योतिषीने मेरा हाथ छोड़कर राजलक्ष्मीसे कहा, " माँ, तुम्हारा हाथ एक बार और—"

" नहीं, मेरा हाथ अब नही देखना होगा, देख चुके । "

उसका तीव्र भावान्तर अत्यत स्पष्ट था । चतुर ज्योतिषी फौरन समझ गया कि हिसाब करनेमे उसने गलती नही की है । बोला, " मै तो माँ, दर्पण-मात्र हूँ, जो छाया पड़ेगी वही कहूँगा,—पर रुष्ट ग्रहको भी शान्त किया जा सकता है, इसकी विधि है,—सिर्फ दस-बीस रुपये खर्च करनेकी बात है । "

" तुम हमारे कलकत्तेके मकानपर आ सकते हो ? "

" क्यों नही आ सकता माँ, ले जानेपर चला चलूँगा । "

" अच्छा । "

देखा कि ग्रहके कोपके प्रति तो उसको पूरा विश्वास है, पर उसे प्रसन्न

करनेके बारेमे काफी सन्देह है ।

कमललताने कहा, " चलो गुसाई, तुम्हारी चाय तैयार कर दूॅ, वक्त हो गया है ।"

राजलक्ष्मीने कहा, " मै बना लाती हूॅ दीदी, तुम जरा इनके बैठनेकी जगह ठीक कर दो और रतनसे हुक्का तैयार करनेके लिए कह दो। कलसे तो उसकी छाया भी नज़र नहीं आती।"

ज्योतिषीको लेकर सब कलरव करने लगी, हम चले आये।

दक्षिणके खुले बरामदेमे मेरी रस्सीकी खाट पड़ी है, रतनने झाड़-पोंछ दी, हुक्का दिया, मुॅह-हाथ धोनेको पानी ला दिया। कल सबेरेसे ही बेचारेको कामसे फ़ुर्सत नहीं मिली है, फिर भी मालकिन कहती हैं कि उसकी छाया तक नहीं दीखती ! मेरा विपत्ति-योग आसन्न है, पर रतनसे पूछनेपर वह अवश्य कहता, ' जी नही, विपत्ति-योग आपका नहीं—मेरा है।'

कमललता नीचे बरामदेमे बैठकर गौहरका सवाद पूछ रही थी। राजलक्ष्मी चाय ले आई, चेहरा बहुत भारी हो रहा है, सामनेके स्टूलपर प्याली रखकर बोली, " देखो, तुमसे हजार दफा कह चुकी कि वन-जगलोंमे मत घूमा करो,—आफत आते कितनी देर लगती है ? गलेमे ऑचल डाल और हाथ जोड़कर तुमसे प्रार्थना करती हूॅ कि मेरी बात मानो। "

अब तक 'चाय बनाते बनाते राजलक्ष्मीने शायद यही सोचकर स्थिर किया था ! ' बहुत जल्दी ' का और क्या अर्थ हो सकता है ?

कमललताने आश्चर्यके साथ कहा, " वन-जगलोंमे गुसाई कब गये थे ?"

राजलक्ष्मीने कहा, " कब गये, क्या मै यह देखा करती हूॅ दीदी। मुझे क्या दुनियामे और कोई काम नही है ? "

मैंने कहा, " देखा कभी नही है, सिर्फ अंदाज़ है। ज्योतिषी बेटा अच्छी आफतमे डाल गया ! "

सुनकर रतन दूसरी ओर मुॅह फेर जल्दीसे चला गया।

राजलक्ष्मीने कहा, " ज्योतिषीका क्या दोष ? वह जो देखेगा वही तो बतायेगा ? ससारमे विपत्ति-योग नामकी क्या कोई चीज ही नहीं है ? आफतमें क्या कभी कोई नहीं पड़ता ? "

इन सब प्रश्नोंका उत्तर देना फिजूल है। राजलक्ष्मीको कमललताने भी

पहचान लिया है, वह भी चुप रही।

चायकी प्याली अपने हाथमे लेते ही राजलक्ष्मीने कहा, " दो-चार फल और थोड़ी-सी मिठाई ले आऊँ ? "

कहा, " नहीं। "

" नहीं क्यो ? 'नहीं' छोड़कर 'हॉ' कहना क्या भगवानने तुम्हे सिखाया ही नहीं ? " पर मेरे मुँहकी ओर देखकर सहसा अधिकतर उद्विग्न कठसे प्रश्न किया, " तुम्हारी दोनों आखे इतनी लाल क्यों दिखाई दे रही हैं ? नदीके सड़े पानीमे नहाकर तो नहीं आये हो ? "

" नहीं, आज स्नान ही नहीं किया। "

" और वहॉ खाया क्या ? "

" कुछ भी नहीं खाया। इच्छा भी नहीं हुई। "

जाने क्या सोचकर नजदीक आकर उसने मेरे सिरपर हाथ रक्खा, फिर वही हाथ कुर्तेके भीतर मेरी छातीके नजदीक डालकर कहा, " जो सोचा था ठीक वही है। कमल दीदी, देखो तो इनका शरीर गरम मालूम नहीं पड़ रहा है ? "

कमललता व्यस्त होकर नहीं आई। बोली, "जरा-सा गरम हो गया तो क्या हुआ राजू,—डर क्या है ? "

वह नामकरण करनेमे अत्यन्त पटु है। यह नया नाम मेरे कानोंमे भी पड़ा।

राजलक्ष्मीने कहा, " इसके मानी ज्वर जो है दीदी ! "

कमललताने कहा, " अगर ज्वर ही हो तो तुम लोग पानीमे तो नहीं आ पड़ी हो ? हमारे पास आई हो, हम ही इसकी व्यवस्था कर देंगे बहन,— तुम्हे फिक्र करनेकी कोई जरूरत नहीं। "

अपनी इस असगत व्याकुलतामे दूसरेके अविचलित शान्त कण्ठने राजलक्ष्मीको प्रकृतिस्थ कर दिया। शरमिंदा होकर उसने कहा, " अच्छी बात है दीदी, पर एक तो यहॉ डाक्टर-वैद्य नही हैं, फिर हमेशा देखा है कि यदि इन्हे कुछ हो जाता है, तो जल्दी आराम नहीं होता,—बहुत भोगना पड़ता है। फिर जलमुहॉ-ज्योतिषी न जाने कहॉसे आकर डर दिला गया—"

" दिला जाने दो। "

" नहीं दीदी, मैंने देखा है कि इनकी अच्छी बातें तो नहीं फलतीं, पर अशुभ बाते ठीक निकल जाती हैं । "

कमललताने स्मित हास्यसे कहा, " डरनेकी बात नहीं राजू, इस क्षेत्रमे उसकी बात ठीक न होगी । सबेरेसे ही गुसाई धूपमे घूमते रहे हैं, ठीक वक्तपर स्नान-आहार नही हुआ, शायद इसी कारण शरीर कुछ गर्म हो गया है,—कल सुबह तक नहीं रहेगा । "

लालूकी माँने आकर कहा, " माँ, रसोईघरमे ब्राह्मण-रसोइया तुम्हे बुला रहा है । "

" जाती हूँ, " कहकर कमललताकी तरफ कृतज्ञ दृष्टिपात करके वह चली गई ।

मेरे रोगके सबन्धमे कमललताकी बात ही फली । ज्वर ठीक सुबह ही तो नहीं गया, पर दो-एक दिनोंमे ही मैं स्वस्थ हो गया । किन्तु इस घटनासे कमललताको हमारी भीतरकी बातोका पता चल गया, शायद एक और व्यक्तिको भी पता चला,—स्वय बडे गुसाईजीको ।

जानेके दिन कमललताने हम लोगोको आडमे बुलाकर पूछा, " गुसाई, तुम्हे अपनी शादीका साल याद है ? " निकट ही देखा कि एक थालीमें देवताका प्रसाद, चंदन और फूलोकी माला रखी है ।

प्रश्नका जवाब दिया राजलक्ष्मीने, कहा, " इन्हे क्या खाक मालूम होगा, मुझे याद है । "

कमललताने हँसते हुए कहा, " यह कैसी बात है कि एकको तो याद रहे और दूसरेको नहीं ? "

राजलक्ष्मीने कहा, " बहुत छोटी उम्र थी न, इसीलिए । इन्हे तब भी ठीक ज्ञान न था । "

" पर उम्रमे तो यही बडे हैं, राजू ? "

" ओः बहुत बड़े है ! कुल पॉच-छह साल । मेरी उम्र तब आठ-नौ सालकी थी । एक दिन गलेमे माला पहनाकर मैंने मन ही मन कहा, आजसे तुम मेरे दूल्हा हुए ! दूल्हा ! दूल्हा ! " कहकर मुझे इशारेसे दिखाते हुए कहा, " पर ये देवता उसी वक्त मेरी मालाको वहीं खड़े खडे खा गये ! "

कमललताने आश्चर्यसे पूछा, " फूलकी माला किस तरह खा गये ? "

मैंने कहा, “ फूलकी माला नहीं, पके हुए करौंदोंकी माला थी। जिसे दोगी वही खा जायगा।”

कमललता हँसने लगी। राजलक्ष्मीने कहा, “ पर वहींसे मेरी दुर्गति शुरू हो गई। इन्हें खो बैठी। इसके बादकी बातें मत जानना चाहो दीदी,—पर लोग जो कल्पना करते हैं सो बात भी नहीं है,—वे तो न जाने क्या क्या सोचते हैं। इसके बाद बहुत दिनों तक रोती-पीटती भटकती फिरी और तलाश करती रही। आखिर भगवानकी दया हुई, और जैसे एक दिन खुद ही देकर एका-एक छीन लिया था, वैसे ही अकस्मात् एक दिन हाथोंहाथ लौटा भी दिया।” कहकर उसने भगवानके उद्देश्यसे प्रणाम कर लिया।

कमललताने कहा, “ उन्ही भगवानकी माला बडे गुसाईंने भेजी है, आज जानेके दिन तुम दोनों एक दूसरेको पहना दो।”

राजलक्ष्मीने हाथ जोड़कर कहा, “ इनकी इच्छा ये जानें, पर इसके लिए मुझे आदेश न करो। बचपनकी मेरी वह लाल रगकी माला आज भी ऑखे बॅद करनेपर इनके उसी किशोर गलेमे झूलती हुई दिखाई देती है। भगवानकी दी हुई मेरी वही माला हमेशा बनी रहे दीदी।”

मैंने कहा, “ पर वह माला तो खा डाली थी।”

राजलक्ष्मीने कहा, “ हॉ जी देवता, इस बार मुझे भी खा डालो।” कहकर हॅसते हुए उसने चदनकी कटोरीमे ॲगुलियॉ डुबोकर मेरे मस्तकपर छाप लगा दी।

हम सब मिलनेके लिए द्वारिकादासके कमरेमे गये। वे न जाने किस ग्रथका पाठ करनेमे लगे हुए थे, आदरसे बोले, “ आओ भाई, बैठो।”

राजलक्ष्मीने ज़मीनपर बैठकर कहा, “ बैठनेका वक्त नहीं है गुसाई। बहुत उपद्रव किया है, इसलिए जानेके पहले नमस्कार कर आपसे क्षमाकी भिक्षा मॉगने आई हूॅ।”

गुसाई बोले, “ हम बैरागी आदमी हैं, भिक्षा ले तो सकते है, दे नहीं सकते। लेकिन फिर कब उपद्रव करने आओगी बताओ तो दीदी? आश्रममें तो आज अन्धकार हो जायगा।”

कमललताने कहा, “ सच है गुसाई,—सचमुचमें यही मालूम होगा कि आज कहीं भी बत्ती नहीं जली है, सब जगह अन्धकार हो रहा है।”

बड़े गुसाईंने कहा, "गान, आनन्द और हास-परिहासके कारण इन कई दिनोंसे ऐसा लग रहा था कि मानों हमारे चारों ओर विद्युतके दीपक जल रहे हैं,—यह और कभी नहीं देखा। मैंने सुना, कमललताने तुम्हारा नाम 'नये गुसाईं' रखा है, और मैंने इन्हे नाम दिया है आनन्दमयी—"

इस बार उनके उच्छ्वासमें मुझे बाधा देनी पड़ी। कहा, "बड़े गुसाईं, विद्युत्का दीपक ही आप लोगोंकी ऑखोंने देखा है, पर जिनके कर्ण-रन्ध्रोंमे उसकी कड़कड़ ध्वनि दिन-रात पहुँचती रहती है, उनसे तो जरा पूछिए! आनन्दमयीके सम्बन्धमें कमसे कम रतनकी राय—"

रतन पीछे खड़ा था, भाग गया।

राजलक्ष्मीने कहा, "इनकी बाते तुम न सुनो गुसाईं, मुझसे ये दिन-रात ईर्ष्या करते हैं।" फिर मेरी ओर देखकर कहा, "इस बार जब आऊँगी तो इस रोगी और अरसिक आदमीको कमरेमे ताल लगाकर बन्द कर आऊँगी, इसके मारे मुझे कही चैन नहीं मिलती!"

बडे गुसाईंने कहा, "नही आनन्दमयी, नही बनेगा, छोड़कर नहीं आ सकोगी।"

राजलक्ष्मीने कहा, "अवश्य आ सकूँगी। बीच बीचमे मेरी ऐसी इच्छा होती है गुसाईं, कि मै जल्दी मर जाऊँ।"

बड़े गुसाईंजी बोले, "यह इच्छा तो वृन्दावनमें एक दिन उनके मुँहसे भी निकली थी बहन, पर वैसा हो नही सका। हॉ, आनन्दमयी, तुम्हे क्या वह बात याद नही?—

सखी, दे जाउँ मैं किसको कन्हैयालालकी सेवा।
वे जानें क्या बताओ तो—

कहते कहते वे मानों अन्यमनस्क हो गये। बोले, "सच्चे प्रेमके बारेमें हम लोग कितना-सा जानते हैं? केवल छलनामे अपनेको भुलाये रखते हैं। पर तुम जान सकी हो बहिन! इसीलिए कहता हूँ कि तुम जिस दिन यह प्रेम श्रीकृष्णको अर्पण कर दोगी, आनन्दमयी— "

सुनकर राजलक्ष्मी मानों सिहर उठी, व्यस्त होकर बाधा देते हुए बोली, "ऐसा आशीर्वाद मत दो गुसाईं, मेरे भाग्यमें ऐसा न घटे। बल्कि यह आशीर्वाद दो कि इसी तरह हँसते-खेलते इनके समक्ष ही एक दिन मर जाऊँ।"

कमललताने बात सँभालते हुए कहा, "बड़े गुसाईं तुम्हारे प्रेमकी बात ही कह रहे हैं राजू, और कुछ नहीं।"

मैंने भी समझ लिया कि अन्य भावोंके भावुक द्वारिकादासकी विचार-धारा सहसा एक और पथपर चली गई थी, बस।

राजलक्ष्मीने शुष्क मुँहसे कहा, "एक तो यह शरीर और फिर एक न एक रोग साथ लगा ही रहता है,—एकागी आदमी, किसीकी बात सुनना नहीं चाहते,—मैं रातदिन किस तरह डरी-सहमी रहती हूँ दीदी, किसे बताऊँ!"

अब तो मैं मन ही मन उद्विग्न हो उठा। जाते वक्त बातों ही बातोमे कहाँका पानी कहाँ पहुच गया, इसका ठिकाना ही नही। मै जानता हूँ कि मुझे अवहेलाके साथ विदा करनेकी मर्मान्तक आत्मग्लानि लेकर ही इस बार राजलक्ष्मी काशीसे आई है और सर्व प्रकारके हास-परिहासके अतरालमे भी न जाने किस अनजान कठिन दडकी आशका उसके मनमे बनी रहती है, जो किसी तरह मिटना ही नही चाहती। उसीको शान्त करनेके अभिप्रायसे मै हँसकर बोला, "लोगोंके आगे मेरे दुबले-पतले शरीरकी तुम चाहे जितनी निन्दा क्यों न करो लक्ष्मी, पर इस शरीरका विनाश नहीं है। तुम्हारे पहले मरे बिना मै मरनेका नही, यह निश्चित है—"

उसने बात खत्म भी न करने दी, धप्से मेरा हाथ पकड़कर कहा, "तब इन सबके सामने मुझे छूकर तीन बार कसम खाओ! कहो कि यह बात कभी झूठ न होगी!" कहते कहते उद्गत आँसू उसकी दोनों आँखोंसे बह पड़े।

सबके सब अवाक् हो रहे। लज्जाके मारे उसने मेरा हाथ जल्दीसे छोड़ दिया और जबरदस्ती हँसकर कहा, "इस जलमुँहे ज्योतिषीने झूठमूठ ही मुझे इतना डरा दिया कि—"

यह बात भी वह खत्म न कर सकी, और चेहरेकी हँसी तथा लज्जाकी बाधाके होते हुए भी उसकी आँखोंसे आँसुओंकी बूँदे दोनों गालोंपर ढुलक पड़ीं।

एक बार फिर सबसे एक एक करके बिदा ली गई। बड़े गुसाईंने वचन दिया कि इस बार कलकत्ते जानेपर वे हमारे यहाँ भी पधारेंगे और पद्माने कभी शहर नहीं देखा है, इसलिए वह भी साथमे आयगी।

स्टेशनपर पहुँचते ही सबसे पहले वही 'जलमुँहा' ज्योतिषी नज़र आया। प्लेटफार्मपर कंबल बिछाकर बड़ी शानसे बैठा है और उसके आसपास काफी लोग जमा हो गये हैं।

पूछा, "यह भी साथ चलेगा क्या?"

राजलक्ष्मीने दूसरी ओर देखकर अपनी सलज्ज हँसी छिपा ली। पर सिर हिलाकर बताया कि "हाँ, जायगा।"

कहा, "नहीं, नहीं जायगा।"

"लेकिन जानेसे कुछ भला न होगा तो बुरा भी तो न होगा। साथ चलने दो न?"

"नहीं। भला-बुरा कुछ भी हो, वह साथ नहीं चलेगा। उसे जो कुछ देना हो दे-दिलाकर यहींसे बिदा कर दो। ग्रह शांत करनेकी क्षमता और साधुता अगर उसमें हो भी, तो तुम्हारी आँखोंकी आड़में ही वह करे।"

"तो यही कह देती हूँ" कहकर रतनको उसे बुलानेके लिए भेज दिया। नहीं जानता कि उसे क्या दिया, पर कई बार माथा हिलाकर और अनेक आशीर्वाद देकर हँसते हुए ही उसने बिदा ली।

थोड़ी देर बाद ही ट्रेन आकर हाजिर हुई और हम कलकत्तेको चल दिये।

१२

राजलक्ष्मीके एक प्रश्नके उत्तरमें रुपयोंकी प्राप्तिका किस्सा बताना पड़ा। "हमारे बर्मा आफिसके एक ऊँचे दर्जेके साहबने घुड़दौड़में सर्वस्व गँवा कर मेरे एकट्ठे किये हुए रुपये उधार ले लिये थे और खुद ही उन्होंने यह शर्त की थी कि सिर्फ सूद ही नहीं, बल्कि अगर अच्छे दिन आये तो मुनाफेका भी आधा हिस्सा देंगे। इस बार कलकत्ते लौटकर रुपये माँगनेपर उन्होंने कर्जका चौगुना रुपया भेज दिया। बस यही मेरी पूँजी है।"

"वह कितनी है?"

"मेरे लिए तो बहुत है, पर तुम्हारे निकट अतिशय तुच्छ।"

"सुनूँ तो कितनी?"

"सात-आठ हजार।"

मालूम होनेपर मुझे दूर कर सको ? ”

इस अक्षमताको अत्यन्त स्पष्टतासे कबूल करते हुए कहा, “ तुम जिन शक्तिशाली पुरुषोंका उल्लेख करके मुझे अपमानित कर रही हो लक्ष्मी, वे वीर पुरुष हैं,—नमस्कार करने योग्य हैं। उनकी पद-धूलिकी योग्यता भी मुझमें नही। तुम्हें बिदा देकर मैं एक दिन भी नहीं रह सकूँगा, शायद उसी वक्त लौटा लानेके लिए दौड पडूँगा और तुमने यदि ‘ ना ’ कह दिया तो मेरी दुर्गतिकी सीमा नहीं रहेगी। अतएव, इन सब भयावह विषयोंकी आलोचना बद करो। ”

राजलक्ष्मीने कहा, “ तुम्हे मालूम है, बचपनमे मॉने मुझे एक मैथिल राजकुमारके हाथों बेच दिया था ?”

“ हॉ, और एक राजकुमारकी ही जुबानी यह खबर बहुत दिनों-बाद सुनी थी। वह मेरा मित्र था। ”

राजलक्ष्मीने कहा, “ हॉ, वह तुम्हारे मित्रका मित्र था। एक दिन नाराज होकर मैंने मॉको विदा कर दिया और उन्होंने घर लौटकर मेरी मृत्युकी अफवाह फैला दी। यह खबर तो सुनी थी ? ”

“ हाँ, सुनी थी। ”

“ सुनकर तुमने क्या सोचा था ? ”

“ सोचा था, आह, बेचारी लक्ष्मी मर गई ! ”

“ यही ? और कुछ नही ? ”

“ और यह भी सोचा था कि काशीमें मरनेके कारण और कुछ न भी हो, सद्गति तो हुई ही। आह ! ”

राजलक्ष्मीने नाराज़ होकर कहा, “ जाओ, झूठी आह आह करके दुख प्रकट करनेकी जरूरत नहीं। मै कसम खाकर कह सकती हूॅ कि तुमने एक बार भी ‘ आह ’ न की थी। लो मुझे छूकर कहो तो। ”

कहा, “ इतने दिनो पहलेकी बाते क्या ठीक ठीक याद रहती हैं ? की थी, यही तो याद आता है। ”

राजलक्ष्मीने कहा, “ खैर, कष्ट करके इतनी पुरानी बाते अब याद करनेकी जरूरत नही, मैं सब जानती हूँ। ” फिर थोड़ी देर ठहरकर उसने कहा, “ और मैं ? रोज सुबह विश्वनाथसे रो रोकर कहती थी, भगवन्, मेरे

भाग्यमें तुमने यह क्या लिख दिया ? तुम्हे साक्षी बनाकर जिसके गलेमें माला डाली थी क्या इस जीवनमे उससे फिर कभी मिलना नहीं होगा ? चिरकाल तक क्या ऐसी अपवित्रतामे ही दिन बिताने पड़ेगे ? उन दिनोंकी बातें याद आते ही आज भी आत्महत्या करके मर जानेकी इच्छा होती है । "

उसके चेहरेकी ओर देखकर क्लेश बोध हुआ, पर यह सोचकर चुप ही रहा कि मेरा निषेध नहीं मानेगी ।

इन बातोंको उसने कितने दिनों तक मन ही मन कितनी तरहसे उलट-पलट कर सोचा-विचारा है, उसके अपराध–भाराक्रान्त मनने नीरव ही कितनी मर्मान्तिक वेदना सहन की है, फिर भी इस डरसे कि कुछ करते कुछ न हो जाय कुछ जाहिर करनेका साहस नही किया है, इतने दिनोंके बाद अब वह यह शक्ति कमललतासे अर्जन कर पाई है । अपनी प्रच्छन्न कलुषिताको अनावृत करके वैष्णवीने मुक्ति पा ली है । राजलक्ष्मी भी आज भय और झूठी मर्यादाकी जजीरोंको तोड़कर उसीकी तरह सहज होकर खड़ी होना चाहती है, फिर उसके भाग्यमे कुछ भी क्यों न हो । यह विद्या उसे कमल-लताने दी है । संसारमें इस एक व्यक्तिके आगे इस दर्पिता नारीने सिर झुकाकर अपने दुःखके समाधानकी भिक्षा माँगी है, यह विना किसी सशयके समझ लेनेपर मुझे बहुत सतोष मिला ।

कुछ देर दोनों ही चुप रहे । सहसा राजलक्ष्मी बोली, " राजपुत्र एकाएक मर गया, पर माँने मुझे फिर बेंचनेका षड्यत्र रचा—"

" इस बार किसके हाथ ? "

" एक दूसरे राजकुमारके,—तुम्हारे उन्हीं मित्र-रत्नके साथ—जिनके साथ साथ शिकार करनेके लिए जाते हुए—क्या हुआ, याद नहीं है ? "

" शायद नही । बहुत पुरानी बात है न । पर उसके बाद ? "

राजलक्ष्मीने कहा, "यह षड्यत्र चला नही । मै बोली, 'माँ तुम घर जाओ।' माँने कहा, 'हजार रुपये जो ले चुकी हूँ।' कहा, 'वह रुपया लेकर तुम देश चली जाओ । दलालीका रुपया चाहे जैसे होगा मै चुका दूँगी। आज रातकी गाड़ीसे ही तुम बिदा न होगी माँ, तो कल सबेरे ही मै अपनेको बेचकर गगा-माताके पानीमें डुबा दूँगी । मुझे तो तुम जानती हो माँ, झूठा डर नहीं दिखा रही हूँ ।' माँ बिदा हो गई । उन्हींकी जुबानी मेरी मौतकी खबर सुनकर

तुमने दुःख प्रकट करते हुए कहा था, 'आह! बेचारी मर गई।' यह कहकर वह खुद ही कुछ हँसी और बोली, "सच होती तो तुम्हारे मुँहसे निकलती हुई यह 'आह' ही मेरे लिए बहुत थी, पर अब जिस दिन सचमुच मरूँगी, उस दिन दो बूँद आँसू जरूर गिराना। कहना कि संसारमें अनेक वर-वधुओंने अनेक मालायें बदली हैं, उनके प्रेमसे ससार पवित्र, —परिपूर्ण हो रहा है, पर तुम्हारी कुलटा राजलक्ष्मीने अपनी नौ वर्षकी उम्रमें उस किशोर वरको एक मनसे जितना ज्यादा प्यार किया था, इस संसारमें उतना ज्यादा प्यार कभी किसीने किसीको नही किया।—कहो कि मेरे कानोमे उस वक्त यह बात कहोगे? मैं मरकर भी सुन सकूँगी।"

"यह क्या, तुम तो रो रही हो?"

उसने आँखोके आँसू आँचलसे पोछकर कहा, "तुम क्या सोचते हो कि इस निरुपाय बच्चीपर उसके आत्मीय स्वजनोंने जितना अत्याचार किया है, उसे अन्तर्यामी भगवान देख नही सके?—इसका न्याय वे नही करेगे?—आँखे बद किये रहेगे?"

कहा, "सोचता तो हूँ कि आँखे बन्द किये रहना उचित नही है, पर उनकी बाते तुम लोग ही अच्छी तरह जानती हो, मेरे जैसे पाखण्डीका परामर्श वे कभी नही लेते।"

राजलक्ष्मीने कहा, "मजाक!" पर दूसरे ही क्षण गम्भीर होकर कहा, "अच्छा, लोग कहते हैं कि स्त्री और पुरुषका धर्म एक न होनेसे काम नहीं चलता, पर धर्म-कर्ममे तो मेरा और तुम्हारा संपर्क साँप और नेवले जैसा है। फिर भी हम लोगोंका कैसे चलता है?"

"साँप-नेवलेकी तरह ही चलता है। इस जमानेमें जानसे मार डालनेमें बड़ी झझट है, इसलिए एक व्यक्ति दूसरेका वध नहीं करता, निर्भय होकर बिदा कर देता है,—तब जब कि यह आशका होती है कि उसकी धर्म-साधनामे विघ्न पड रहा है।"

"उसके बाद क्या होता है?"

हँसकर कहा, "उसके बाद वह खुद ही रोते रोते वापस आता है, दाँतोमें तिनका दबा कर कहता है कि मुझे बहुत सजा मिल चुकी है, इस जीवनमे अब इतनी बड़ी भूल नहीं करूँगा, गया मेरा जप-तप, गुरु-पुरोहित,—

मुझे क्षमा करो।"

राजलक्ष्मी भी हँसी, बोली, "पर क्षमा मिल तो जाती है?"

"हाँ, मिल जाती है। पर तुम्हारी कहानीका क्या हुआ?"

राजलक्ष्मीने कहा, "कहती हूँ।" क्षण-भरतक मेरी ओर निष्पलक नेत्रोंसे देखकर कहा, "माँ देश चली गई। उन दिनों मुझे एक बूढ़ा उस्ताद गाना-बजाना सिखाता था। वह बगाली था। किसी जमानेमें संन्यासी था, पर इस्तीफा देकर फिर ससारी हो गया था। उसके घरमे मुसलमान स्त्री थी, वह मुझे नाच सिखाने आती थी। मैं उसे बाबा कहती थी, मुझे सचमुच वह बहुत प्यार करता था। रोकर कहा, 'बाबा, तुम मेरी रक्षा करो, यह सब अब मुझसे न होगा।' वह गरीब आदमी था, एकाएक साहस न कर सका। मैंने कहा कि मेरे पास बहुत रुपया है, उससे काफी दिनोंतक चल जायगा। फिर भाग्यमें जो बदा होगा, वह होगा। पर अब चलो, भाग चलें। इसके बाद उसके साथ कितनी जगह घूमी,—इलाहाबाद, लखनऊ, दिल्ली, आगरा, जयपुर, मथुरा,—अन्तमे इस पटनामें आकर आश्रय लिया। आधा रुपया एक महाजनकी गद्दीमें जमा करा दिया और आधे रुपयेसे एक मनिहारी और कपड़ेकी दुकान खोल ली। मकान खरीदकर बकूको तलाश किया, उसे लाकर स्कूलमें भर्ती करा दिया और जीविकाके लिए जो कुछ करती थी, वह तो तुमने खुद अपनी आँखोंसे देखा है।"

उसकी कहानी सुनकर कुछ देरतक स्तब्ध रहा, फिर बोला, "तुम कहती हो इसलिए अविश्वास नहीं होता, पर और कोई कहता तो समझता कि सिर्फ एक मनगढन्त झूठी कहानी सुन रहा हूँ।"

राजलक्ष्मीने कहा, "मैं शायद झूठ नही बोल सकती?"

कहा, "शायद बोल सकती हो, पर मेरा विश्वास है कि मुझसे आजतक नहीं बोली।"

"यह विश्वास क्यों है?"

"क्यों? तुम्हे डर है कि झूठी प्रवंचना करनेके कारण पीछे कहीं देवता रुष्ट न हो जायँ और तुम्हे दड देनेके लिए कहीं मेरा अकल्याण न कर बैठें।"

"मेरे मनकी बात तुमने कैसे जान ली?"

"मेरे मनकी बात भी तो तुम जान लेती हो?"

" मै जान सकती हूँ, क्योंकि यह मेरी रात-दिनकी भावना है, पर तुम्हारे तो वह नही है ।"

" अगर हो तो खुश होओगी ?"

राजलक्ष्मीने सिर हिलाकर कहा, " नही होऊँगी। मै तुम्हारी दासी हूँ, दासीको इससे ज्यादा मत समझना, मै यही चाहती हूँ ।"

उत्तरमे कहा, " तुम उस युगकी मनुष्य हो,—वही हजार वर्ष पुराने संस्कार हैं !"

राजलक्ष्मीने कहा, "मै ऐसी ही हो सकूँ और हमेशा ऐसी ही रहूँ ।" यह कहकर क्षण-भर मेरी ओर देखा फिर कहा, " तुम सोचते हो कि इस युगकी औरतें मैने नही देखी हैं ? बहुत देखी हैं । बल्कि तुम्हीने नही देखी हैं और देखी भी हैं तो बाहरसे । इनमेसे किसीके साथ मुझे बदल लो तो देखूँ कि तुम कैसे रह सकते हो ? अभी मुझसे मजाक करते हुए कहा था कि दाँतोंमे तिनका दबा कर आई थी, तब तुम दस हाथ दूरसे दाँतोंमे तिनका दबाए आओगे ।"

"पर जब इसकी मीमासा हो ही नही सकती, तब झगडा करनेसे क्या फायदा ? सिर्फ यही कह सकता हूँ कि उनके बारेमे तुमने अत्यंत अविचार किया है ।"

राजलक्ष्मीने कहा, " अविचार अगर किया हो तो भी कह सकती हूँ कि अत्यत अविचार नही किया । ओ गुसाई, मैं भी बहुत घूमी हूँ, बहुत देखा है । तुम लोग जहाँ अन्धे हो, वहाँ भी हमारी दस जोड़ी आँखे खुली हुई हैं ।"

" पर जो कुछ देखा है रगीन चश्मेसे देखा है, इसीलिए सब गलत देखा है । दस जौडी भी व्यर्थ हैं ।"

राजलक्ष्मीने हँसते हुए कहा, " क्या कहूँ, मेरे हाथ-पैर बँधे हुए हैं, नहीं तो ऐसे आड़े हाथो लेती कि जन्म-भर न भूलते । पर जाने दो, जब मैं उस युगकी तरह तुम्हारी दासी होकर ही रहती हूँ, तब तुम्हारी सेवा ही मेरे लिए सबसे बड़ा काम है । पर तुम्हे मै अपने बारेमे जरा भी नही सोचने दूँगी । ससारमे तुम्हारे लिए बहुत काम हैं, अबसे वे ही करने होगे । इस अभागिनीके पीछे तुम्हारा काफी वक्त तथा और भी बहुत कुछ नष्ट हो गया है, अब मैं और नष्ट नहीं करने दूँगी ।"

कहा, " इसीलिए तो मैं जितनी जल्दी हो सके उसी पुरानी नौकरीपर

जाकर हाजिर हो जाना चाहता हूँ।"

राजलक्ष्मीने कहा, " नौकरी मैं तुम्हे नही करने दूँगी।"

" पर मनिहारीकी दुकान भी मै नहीं चला सकूँगा।"

" क्यों नहीं चला सकोगे ?"

" पहला कारण तो यह है कि चीजोंका दाम मुझे याद नही रहता, दूसरे दाम लेना और फौरन ही हिसाब करके बाकी पैसे लौटा देना तो और भी असभव है। दुकान तो उठ ही जायगी, अगर खरीददारके साथ लाठी न चल जाय तो गनीमत है।"

" तो एक कपड़ेकी दुकान करो।"

" इससे अच्छा है कि जंगली शेर-भालूकी एक दुकान करा दो, मेरे लिए उसे चलाना ज्यादा आसान होगा।"

राजलक्ष्मी हँस पडी। बोली, " मन लगाकर इतनी आराधना करनेके बाद भी अन्तमे भगवानने मुझे एक ऐसा अकर्मण्य मनुष्य दिया जिसके द्वारा संसारका इतना-सा भी काम नही हो सकता !"

कहा, " आराधनामे त्रुटि थी। उसे सुधारनेका वक्त है, अब भी तुम्हे कर्मठ आदमी मिल सकता है—काफी सुदर, स्वस्थ, लम्बा-चौड़ा जवान; जिसे न कोई हरा सकेगा और न ठग ही सकेगा, जिसपर कामका भार देकर निश्चिन्त, हाथमे रुपया पैसा सौपकर निर्भय हुआ जा सकेगा। जिसकी खबर-दारी नही करनी होगी, भीड़मे जिसे खो देनेकी व्याकुलता नही, जिसे सजा-कर तृप्ति, भोजन कराकर आनन्द,—'हाँ' के अलावा जो 'ना' बोलना ही नही जानता—"

राजलक्ष्मी चुपचाप मेरे मुँहकी तरफ देख रही थी, अकस्मात् उसके सारे शरीरमे काँटे उठ आये। मैंने कहा, " अरे यह क्या ?"

" नही, कुछ नही।"

" काँप जो उठीं !"

राजलक्ष्मीने कहा, " मुँहज़बानी ही तुमने जो तस्वीर खींची है, उसका अगर आधा भी सत्य हो तो शायद मै मारे डरके ही मर जाऊँगी।"

" पर मेरे जैसे अकर्मण्य आदमीको लेकर तुम क्या करोगी ?"

राजलक्ष्मीने हँसी दबाकर कहा, " करूँगी और क्या। भगवानको कोसूँगी

और हमेशा जलती-भुनती रहकर मरूँगी। इस जन्ममें और तो कुछ आँखोंसे दिखाई नही देता।"

"बल्कि इससे अच्छा तो यही है कि तुम मुझे मुरारीपुरके अखाड़ेमें भेज दो।"

"उन्हींका तुम कौन-सा उपकार करोगे?"

"उनके फूल तोड़ दिया करूँगा और देवताका प्रसाद पाकर जितने दिन जिंदा हूँ पड़ा रहूँगा। इसके बाद वे उसी बकुलके तले मेरी समाधि बना देंगे। पद्मा किसी दिन शामको दीपक जला जायगी,—जिस दिन वह भूल जायगी उस दिन दीप न जलेगा। सुबहके फूल तोड़कर उसके पाससे कमललता जब निकलेगी तो कभी एक मुट्ठी मल्लिकाके फूल बिखेर देगी और कभी कुंदके फूल। यदि कभी कोई परिचित रास्ता भूलकर आजायगा तो उसे समाधि दिखाकर कहेगी, यहाँ हमारे नये गुसाईं रहते हैं,—यही जो जरा ऊँची जगह है, जहाँ मल्लिकाके सूखे और कुंदके ताजे फूलोंके साथ मिलकर झरे हुए बकुलके फूल छाये हुए हैं,—यहीं।"

राजलक्ष्मीकी आँखोंमे आँसू भर आये, पूछा, "और वह परिचित व्यक्ति तब क्या करेगा?"

मैंने कहा, "यह मै नही जानता। हो सकता है कि बहुत-सा रुपया खर्च कर मंदिर बनवा जाये—"

राजलक्ष्मीने कहा, "नही, ऐसा न होगा। वह उस बकुलके तलेको छोड़कर कही न जायगा। पेडकी हर डालपर पक्षी कलरव करेंगे, गाना गायेंगे, लड़ेंगे,—सैकड़ो सूखे पत्ते, सूखी हुई डाले गिरायेंगे,—उन सबको साफ करनेका भार उसपर रहेगा। सुबह चुनकर और साफकर फूलोंकी माला गूँथेगा, रातको सबके सो जानेपर उन्हे वैष्णव कवियोंके गीत सुनायेगा, फिर वक्त आनेपर कमललता दीदीको बुलाकर कहेगा, हमे एकत्र करके समाधि देना, कहीं अंतर न रहने पाये, अलग अलग न पहचाने जाये। और यह लो रुपये, इनसे मंदिर बनवा देना, राधाकृष्णकी मूर्ति प्रतिष्ठित करना, पर कोई नाम मत लिखना, कोई चिह्न मत रखना,—किसीको मालूम न होने पाये कि ये कौन हैं और कहाँसे आये।"

कहा, "लक्ष्मी, तुम्हारी तस्वीर तो हो गई और भी मधुर और भी सुंदर!"

राजलक्ष्मीने कहा, "क्योंकि यह तस्वीर सिर्फ बातोंसे नहीं गढ़ी गई है गुसाईं, यह सत्य जो है। और यहींपर दोनोंमे फर्क है। मैं कर सकूँगी, पर तुमसे नही होगा। तुम्हारे द्वारा अंकित बातोंकी तस्वीर सिर्फ बातें होकर ही रह जायँगीं।"

"कैसे जाना?"

"जानती हूँ। स्वय तुमसे भी ज्यादा जानती हूँ। यह तो मेरी पूजा है, मेरा ध्यान है। पूजा शेष कर किसके पैरोमें जल चढाती हूँ? किसके पैरोंपर फूल देती हूँ? तुम्हारे ही तो।"

नीचेसे रसोईयेकी पुकार आई, "माँ, रतन नही है, चायका पानी तैयार हो गया।"

"आती हूँ।" कह आँखे पोंछकर वह उसी वक्त चली गई।

कुछ देर बाद चायकी प्याली ले आई और उसे मेरे सामने रखकर बोली, "तुम्हे किताबे पढना अच्छा लगता है, तो अबसे वही क्यों नही करते?"

"उससे रुपये तो आयेगे नही?"

"रुपयोंका क्या होगा? रुपया तो हम लोगोके पास बहुत है।"

कुछ रुककर कहा, "ऊपरवाला यह दक्षिणका कमरा तुम्हारे पढनेका कमरा होगा। आनंद देवर किताबे खरीदकर लायेंगे और मैं अपने मनके मुताबिक सजाकर रखूँगी। उसके एक बगलमे मेरा सोनेका कमरा रहेगा, और दूसरी ओर ठाकुरजीका कमरा। बस, इस जन्ममे मेरा यही त्रिभुवन है,—इसके बाहर मेरी दृष्टि कभी जाये ही नही।"

पूछा, "और तुम्हारा रसोईघर? आनंद सन्यासी आदमी है, उधर नजर न रखोगी तो उसे एक दिन भी नही रखा जा सकेगा।—पर उसका पता कैसे मिला? वह कब आयगा?"

राजलक्ष्मीने कहा, "कुशारीजीने पता दिया है, कहा है कि आनद बहुत जल्दी आयेगे। इसके बाद सब मिलकर गगामाटी जायेंगे और वही कुछ दिन रहेगे।"

कहा, "समझ लो कि वहाँ चली ही गई; किन्तु उनके निकट जाते हुए इस बार तुम्हे शर्म नही आयेगी?"

राजलक्ष्मीने कुंठित हास्यसे सिर हिलाकर कहा, "पर उनमेंसे तो कोई

भी यह नहीं जानता कि काशीमें बाल वगैरह कटाकर मैंने स्वाग बनाया था। बाल अब बहुत कुछ बढ़ गये हैं, पता नहीं पड़ सकता कि कभी कटे थे, और फिर मेरे सारे अन्याय और सारी लज्जा दूर करनेके लिए तुम भी तो मेरे साथ हो!"

कुछ ठहरकर बोली, "खबर मिली है कि वह हतभागिनी मालती फिर लौट आई है और साथ लाई है अपने पतिको। उसके लिए एक हार गढ़वा दूँगी।"

कहा, "ठीक है, गढा देना, किंतु वहॉ जाकर फिर अगर सुनदाके पल्ले पड़ जाओ—"

राजलक्ष्मी जल्दीसे बोल उठी, "नही जी नही, अब वह डर नही है, उसका मोह अब दूर हो गया है। बाप रे बाप, ऐसी धर्म-बुद्धि दी कि रात-दिन न तो ऑखोके ऑसू ही रोक सकी, न खाना ही खा सकी और न सो सकी। यही बहुत है कि पागल नही हुई।" फिर उसने हॅसकर कहा, "तुम्हारी लक्ष्मी चाहे जैसी हो, लेकिन अस्थिर मनकी नही है। उसने एक बार जिसे सत्य समझ लिया, फिर उसे उससे कोई डिगा नही सकता।" कुछ क्षण नीरव रहकर फिर बोली, "मेरा सारा मन मानों इस वक्त आनंदमे डूबा हुआ है। हर वक्त ऐसा लगता है कि इस जीवनका सब कुछ मिल गया है, अब मुझे कुछ नही चाहिए। यदि यह भगवानका निर्देश नही, तो और क्या है, बताओ? प्रतिदिन पूजा कर देवताके चरणोमे अपने लिए कुछ कामना नही करती, केवल यही प्रार्थना करती हूॅ कि ऐसा आनद ससारमें सबको मिले। इसीलिए तो आनद देवरको बुला भेजा है कि उसके काममे अबसे थोडी-बहुत सहायता करूॅगी।"

"अच्छी बात है, करो।"

राजलक्ष्मी अपने मनमे जाने क्या सोचने लगी, फिर सहसा कह उठी,—"देखो, इस सुनदाके जैसी अच्छी, निर्लोभ और सत्यवादी और कोई दूसरी औरत मैंने नही देखी, पर जबतक उसकी विद्याकी गरमी न जायगी तबतक वह विद्या किसी काम नही लगेगी।"

"पर सुनदाको विद्याका घमंड तो नही है?"

राजलक्ष्मीने कहा, "नही, दूसरोंकी तरह नही है,—और यह बात

मैंने कही भी नहीं। वह कितने श्लोक, कितनी शास्त्र-कथायें, कितने उपाख्यान जानती है। उसके मुँहसे सुन-सुनकर ही तो मेरी यह धारणा हुई थी कि मैं तुम्हारी कोई नही हूँ, हमारा सम्बन्ध झूठा है,—और विश्वास भी तो यही करना चाहा था,—पर भगवानने मेरी गर्दन पकड कर समझा दिया कि इससे बढकर मिथ्या और कुछ नही है। इसीसे समझ लो कि उसकी विद्यामे कहीं जबरदस्त भूल है। इसीलिए देखती हूँ कि वह किसीको सुखी नही कर सकती, सिर्फ दुःख ही देती है। उसकी जेठानी उससे बहुत बड़ी है। सीधी-सादी है, पढना-लिखना नहीं जानती, पर दिलमे दया-माया भरी हुई है। कितने दुःखी और दरिद्र परिवारोंका वह लुक-छिपकर प्रतिपालन करती है,—किसीको पता भी नही चलता। जुलाहेपरिवारके साथ जो एक सुव्यवस्था हो गई, वह क्या कभी सुनदाके जरिए हो सकती थी? तुम क्या यह सोचते हो कि वह तेज दिखलाकर मकान छोडकर चले जानेके कारण हुई है? कभी नही। यह तो उसकी बडी देवरानीने अपने पतिके पैरो पड और रो-धोकर किया है। सुनदाने सारी दुनियाके सामने अपने बड़े जेठको चोर कहकर छोटा कर दिया,—यही क्या शास्त्र-शिक्षाका सुफल है? उसकी पोथीकी विद्या जब तक मनुष्योके सुख-दुःख, भलाई-बुराई, पाप-पुण्य, लोभ-मोहके साथ सामजस्य नही कर पाती, तब तक पुस्तकोंके पढे हुए कर्तव्य-ज्ञानका फल मनुष्यको बिना कारण छेदेगा, अत्याचार करेगा और तुम्हें बताये देती हूँ, कि ससारमे किसीका भी कल्याण नहीं करेगा।"

ये बाते सुनकर विस्मित हुआ, पूछा, "यह सब तुमने सीखा किससे?"

राजलक्ष्मीने कहा, "क्या मालूम किससे, शायद तुमसे ही। तुम कुछ कहते नही, कुछ माँगते नही, किसीपर जोर नहीं डालते। इसीलिए तुमसे सीखना सिर्फ सीखना नही है, वह तो सत्यरूपमे पाना है। हठात् एक दिन आश्चर्यके साथ सोचना पडता है कि यह सब कहाँसे आया। पर इसे जाने दो, इस बार जाकर बडी कुशारी-गृहिणीसे मित्रता करूँगी और उस दफा उनकी अवहेलना करके जो गलती की है, अबकी बार उसे सुधारूँगी। चलोगे न गगामाटी?"

"किन्तु बर्मा? मेरी नौकरी?"

"फिर वही नौकरी? अभी तो कहा कि मै तुम्हे नौकरी नहीं करने दूँगी।"

" लक्ष्मी, तुम्हारा स्वभाव खूब है। तुम कहतीं कुछ नहीं, चाहतीं कुछ नहीं, किसीपर जोर भी नहीं करतीं,—विशुद्ध वैष्णव-सहनशीलताका नमूना सिर्फ तुम्हारे ही निकट मिलता है ! "

" इसीलिए क्या जिसकी जो इच्छा होगी, उसीका अनुमोदन करना पड़ेगा ? ससारमे क्या और किसीका दुःख-सुख नही है ? तुम्हीं सब कुछ हो ? "

. " ठीक कहती हो, किंतु अभया ? उसने प्लेगका भय नहीं किया, अगर उस दुर्दिनमें आश्रय देकर वह न बचाती तो शायद आज तुम मुझे पातीं ही नही। आज उनका क्या हुआ, यह क्या बिल्कुल ही न सोचूँ ? "

राजलक्ष्मी क्षणभरमे ही करुणा और कृतज्ञतासे विगलित होकर बोली, "तो तुम रहो, आनद देवरको लेकर मै ही बर्मा जाती हूँ, पकडकर उन लोगोंको ले आऊँगी। यहाँ उनके लिए कोई न कोई प्रबन्ध हो ही जायगा।"

"यह हो सकता है, किन्तु वह बहुत अभिमानिनी है, मै न गया तो शायद वह न आयेगी। "

राजलक्ष्मीने कहा, " आयगी। वह समझेगी कि तुम्ही उन लोगोको लेने आये हो। देखना, मेरा कहना गलत नही होगा। "

" पर मुझे छोड़कर जा तो सकोगी ? "

राजलक्ष्मी पहले तो चुप रही, फिर अनिश्चित कठमे धीरेसे बोली, " इसीका तो मुझे डर है। शायद नही जा सकूँगी। पर इससे पहले चलो न थोड़े दिनों तक गंगामाटीमे चलकर रहे। "

" वहाँ क्या तुम्हे कोई विशेष काम है ? "

" थोडा-सा है। कुशारीजीको खबर मिली है कि पासका पोडामाटी गाँव बिकनेवाला है। सोचती हूँ कि वह खरीद लूँ। और उस मकानको भी अच्छी तरहसे तैयार कराऊँ जिससे तुम्हे रहनेमे कष्ट न हो। उस दफा देखा कि कमरेके अभावमे तुम्हे बडा कष्ट होता था। "

" कमरेके अभावकी वजहसे कष्ट नही होता था, कष्ट तो दूसरे कारणसे होता था। "

राजलक्ष्मीने जान-बूझकर ही इस बातपर कोई ध्यान नहीं दिया। कहा, " मैंने देखा है कि वहाँ तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा रहता है। तुम्हें शहरमें ज्यादा दिनो तक रखनेका साहस नहीं होता, इसीलिए तो जल्दीसे हटा ले जाना चाहती हूँ। "

"पर इस भगुर शरीरके लिए अगर तुम क्षण क्षण इतनी उद्विग्न रहोगी तो मनको शान्ति नही मिलेगी, लक्ष्मी।"

राजलक्ष्मीने कहा, "यह उपदेश बहुत कामका है, पर यह मुझे न देकर यदि खुद ही जरा सावधान रहो, तो शायद थोडी-सी शान्ति पा सकूँ।" सुनकर चुप रहा क्योकि, इस बारेमे तर्क करना सिर्फ निष्फल ही नही, अप्रीतिकर भी होता है। स्वय उसका अपना स्वास्थ्य अटूट है, पर जिसको यह सौभाग्य प्राप्त नहीं है बिना कारण भी वह बीमार हो सकता है, यह बात वह किसी तरह भी नही समझेगी। कहा, "शहरमे मै कभी नही रहना चाहता। उस समय गगामाटी मुझे अच्छी ही लगी थी। यह बात तुम आज भूल गई हो लक्ष्मी कि, मै वहाँसे अपनी इच्छासे चला भी नही आया था।"

"नहीं जी नही, भूली नही हूँ, सारी जिन्दगी नही भूलूँगी—" यह कहकर वह जरा हँसी। बोली, "उस बार तुम्हे ऐसा लगता था मानो किसी अनजान जगहमे आ गये हो, पर इस बार जाकर देखोगे कि उसकी आकृति-प्रकृति ऐसी बदल गई है कि उसे अपना समझनेमे तुम्हे जरा भी अडचन न होगी। और सिर्फ घर-बार और रहनेकी जगह ही नही, इस बार जाकर मै बदलूँगी स्वय अपनेको और सबसे ज्यादा तोड-मोडकर नये सिरसे गढूँगी तुम्हे,—अपने नये गुसाईजीको, जिसे कमललता दीदी फिर पथ-विपथमे घूमनेका साथी बनानेका दावा पेश न कर सके।"

"शायद यही सब सोच-समझकर स्थिर किया है?"

राजलक्ष्मीने हँसते हुए कहा, "हाँ। तुम्हे क्या बिना मूल्य यो ही ले लूँगी;—उसका ऋण नही चुकाऊँगी? और जानेके पहले, मै भी तुम्हारे जीवनमें सचमुच ही आई थी, इस आनेके चिह्नको न छोड़ जाऊँगी? ऐसी ही निष्फल चली जाऊँगी? नही, यह किसी भी तरह न होने दूँगी।"

उसके मुँहकी ओर देकखर श्रद्धा और स्नेहसे हृदय परिपूर्ण हो गया। मन ही मन सोचा, हृदयका विनिमय नर-नारीकी अत्यत साधारण घटना है,—ससारमें नित्य ही घटती रहती है,—विराम नहीं, विशेषत्व नही। फिर भी यह दान और प्रतिग्रह ही व्यक्ति-विशेषके जीवनका अवलबन कर ऐसे विचित्र विस्मय और सौन्दर्यसे उद्भासित हो उठता है कि उसकी महिमा युग-युगान्त तक मनुष्यके हृदयको अभिषिक्त करती रहकर भी समाप्त नही होना चाहती।

यही वह अक्षय सपत्ति है जो मनुष्यको बृहत् करती है, शक्तिशाली बनाती है और अकल्पित कल्याणद्वारा नया बना देती है। पूछा, "तुम बॅकूका क्या करोगी ?"

राजलक्ष्मीने कहा, "वह अब मुझे नहीं चाहता। सोचता है कि यह आफत दूर हो जाय तो अच्छा है।"

"किन्तु वह तो तुम्हारा नजदीकका अपना है, उसे तुमने बचपनसे ही पाल-पोसकर आदमी जो बनाया है ?"

"यह आदमी बनानेका सबध ही रहेगा, और कुछ नही। वह मेरा नजदीकका अपना नही है।"

"क्यो नही है ? अस्वीकार कैसे करोगी ?"

"अस्वीकार करनेकी इच्छा मेरी भी न थी," फिर क्षण-भर तक चुप रहनेके बाद बोली, "मेरी सब बाते तुम भी नही जानते। मेरे विवाहकी कहानी सुनी थी ?"

"लोगोंकी जुबानी सुनी थी। पर उस वक्त मै देशमे न था।"

"हॉ, नहीं थे। दुःखका ऐसा इतिहास और नही है, ऐसी निष्ठुरता भी शायद कही नही हुई। पिता मॉको कभी नही ले गये, मैने भी उन्हे कभी नहीं देखा। हम दोनों बहिनें मामाके यहॉ ही बडी हुई, बचपनमे ज्वरकी वजहसे हमारा चेहरा कैसा हो गया था, याद है ?"

"है।"

"तो सुनो। बिना अपराध उस दडके परिमाणको सुनकर तुम्हारे जैसे निष्ठुर आदमीको भी दया आ जायगी। बुखार आता था, पर मौत नही आती थी। मामा खुद भी नाना तकलीफोसे शय्यागत हो रहे थे। हठात् खबर मिली कि दत्तका ब्राह्मण रसोइया हमारी ही जातिका है, मामाकी तरह ही असल कुलीन है। उम्र साठके करीब है। हम दोनो बहिनोंको एक साथ ही उसके हाथों सौंपा जायगा। सबने कहा कि इस सुयोगको खो देनेपर इनका कुॅवारापन नही उतर सकेगा। उसने सौ रुपये मॉगे, मामाने थोक दर लगाई पचास रुपये। एक ही आसनपर, एक साथ और फिर मेहनत कम। वह उतरा पचहत्तर रुपयेपर, बोला, 'महाशय, दो दो भानजियोको कुलीनके हाथ सौंपेगे और एक जोड़ा बकरीके दाम भी न देगे ?' भोर-रात्रिमें लग्न थी, दीदी तो जागी थीं किंतु मैं पोटली जैसी उठाकर लाई गई और उत्सर्ग कर दी गई! सुबहसे

ही बाकी पच्चीस रुपयोंके लिए झगड़ा शुरू हो गया। मामाने कहा, ‘ बाकी पच्चीस रुपये उधार रहे, अग्नि-सस्कार-क्रिया होने दो।’ वह बोला, ‘ मैं इतना बेवकूफ नहीं हूँ, इन सब मामलोंमे उधार-बुधारका काम नहीं।’ आखिर वह लापता हो गया। शायद उसने सोचा कि मामा कहींसे न कहीसे रुपये लाकर देगे और काम पूरा करेगे। एक दिन हुआ, दो दिन हुए, माँने रोना-धोना शुरू किया, मुहल्लेके लोग हँसने लगे, मामाने जाकर दत्तके यहाँ जाकर शिकायत की, किन्तु वर फिर नही आया। उसके गाँवमे खोज की गई, वहाँ भी वह नहीं मिला। हमे देखकर कोई कहता कलमुँही, कोई कहता करम-फूटी,—शर्मके मारे दीदी घरसे बाहर नही होती थीं। उस घरसे छह महीने बाद उन्हे बाहर किया गया श्मशानके लिए ! और कोई छह महीने बाद कलकत्तेकी किसी होटलसे समाचार आया कि वहाँ खाना पकाते पकाते वर महोदय भी बुखारसे मर गये। इस तरह ब्याह पूरा नही हुआ। ”

कहा, “ पचीस रुपयेमे दूल्हा खरीदनेसे यही होता है ! ”

राजलक्ष्मीने कहा, “ उसे तो मेरे हिस्सेके पचीस रुपये मिल भी गये, पर तुम्हे क्या मिला था ?—सिर्फ एक करोदोंकी माला। वह भी खरीदनी नहीं पडी, वनसे तोड लाई थी। ”

कहा, “ जिसके दाम न लगे उसे अमूल्य कहते हैं। और कोई दूसरा आदमी तो दिखाओ जिसे मेरी तरह अमूल्य धन मिला हो ? ”

“ बताओ कि यह क्या तुम्हारे मनकी सच्ची बात है ? ”

“ पता नहीं चला ? ”

“ नही जी नही, नही चला, सचमुच ही नही चला। ” पर कहते कहते ही वह हँस पडी, बोली, “ पता सिर्फ तब चलता है जब तुम सोते हो,—तुम्हारे चेहरेकी ओर देखकर। पर इस बातको जाने दो। हम दोनो बहिनों जैसा दण्ड इस देशकी सैकडों लड़कियोंको भोगना पड़ता है। और कही तो शायद कुत्ते-बिल्लियोंकी भी इतनी दुर्गति करनेमे मनुष्यका हृदय काँपता है। ” यह कह क्षणभर तक देखते रहनेके बाद बोली, “ शायद तुम सोचते होगे कि मेरी शिकायतमे अत्युक्ति है, ऐसे दृष्टान्त भला कितने मिलते हैं ? उत्तरमे यदि कहती कि यह एक हो तो भी सारे देशके लिए कलक है तो मेरा जवाब काफी हो जाता, पर मैं यह न कहूँगी। मै कहती हूँ कि बहुत

होते हैं। चलोगे मेरे साथ उन विधवाओंके पास जिन्हे मै थोड़ी-बहुत सहायता करती हूँ ? वे सबकी सब गवाही देंगीं कि उनके घरके लोगोंने उनके भी हाथ-पैर बॉधकर ऐसे ही पानीमें फेक दिया था। ”

कहा, “ शायद इसी कारण उनके लिए इतनी दयामाया है ? ”

राजलक्ष्मीने कहा, “ तुम्हे भी होती अगर ऑखे खोलकर हमारा दुख देखते। अबसे मै ही एक एक कर तुमको सब दिखाऊँगी। ”

“ मैं नही देखूँगा,—ऑखे बन्द किये रहूँगा। ”

“ नही रह सकोगे, मै अपने कामका भार एक दिन तुमपर ही डाल जाऊँगी। सब भूल जाओगे, पर यह कभी न भूल सकोगे। ” यह कह वह कुछ देर मौन रहकर अकस्मात् अपनी पहली कहानीके सिलसिलेमे कहने लगी, “ ऐसा अत्याचार तो होगा ही। जिस देशमे लडकीकी शादी न होनेपर धर्म जाता है, जाति जाती है, शर्मसे समाजमे मुँह नही दिखाया जा सकता,—गँवार, गूँगी, अधी, रोगी,–किसीकी भी रिहाई नही,—लोग वहॉ एकको छोडकर दूसरेकी ही रक्षा करते हैं, इसके अलावा उस देशमे मनुष्योके लिए दूसरा उपाय ही क्या है, बताओ ? उस दिन सब मिलकर यदि हम दोनो बहिनोंकी बलि दे न देते तो दीदी शायद मरती नही और मै इस जन्ममे इस तरह शायद तुम्हे भी न पाती, पर मनमे तुम ही हमेशा इसी तरह प्रभु बनकर रहते। और, यही क्यों ? मुझे तुम टाल नही पाते, जहॉ भी होते,—चाहे जितने दिन हो जाते, तुम्हे खुद आकर ले ही जाना पडता। ”

कुछ जवाब देनेकी सोच रहा था, हठात् नीचेसे एक किशोर-कठकी पुकार आई, “ मौसी ? ”

आश्चर्यसे पूछा, “ यह कौन है ? ”

“ उस मकानकी मॅझली बहूका लडका है, ” कहकर उसने इशारेसे पासका मकान दिखा दिया और जवाब दिया, “ क्षितीश, ऊपर आओ बेटा। ” दूसरे ही क्षण एक सोलह-सत्रह वर्षके सुश्री बलिष्ठ किशोरने कमरेमे प्रवेश किया। मुझे देखकर पहले तो वह सकुचित हुआ, फिर नमस्कर करके अपनी मौसीसे बोला, “आपके नाम मौसी, बारह रुपया चदा लिखा गया है।”

“ लिख लो बेटा, पर होशियारीसे तैरना, कोई दुर्घटना न हो। ”

“ नहीं, कोई डर नहीं मौसी। ”

राजलक्ष्मीने अलमारी खोलकर उसके हाथमें रुपये दिये, लड़का द्रुतवेगसे सीढ़ी परसे उतरते उतरते हठात् खड़ा होकर बोला, " मॉने कहा है कि छोटे मामा परसों सुबह आकर सारा ' एस्टीमेट ' बना देंगे । " और तेजीके साथ चला गया ।

प्रश्न किया, " किस बातका एस्टीमेट ? "

" मकानकी मरम्मत नहीं करना होगी ? तीसरी मजिलका जो कमरा उन्होंने आधा बनवा कर डाल दिया है, उसे पूरा नहीं करना होगा ? "

" यह तो होगा, पर इतने आदमियोंसे तुमने पहचान कैसे कर ली ? "

" वाह, वे सब तो पासके मकानके ही आदमी हैं । पर अब नहीं, जाती हूँ—तुम्हारा खाना तैयार करनेका वक्त हो गया । " यह कह कर वह उठी और नीचे चली गई ।

१३

एक दिन सुबह स्वामी आनन्द आ पहुँचे । रतनको यह पता न था कि उन्हे आनेका निमत्रण दिया गया है, उदास चेहरेसे उसने आकर खबर दी, " बाबू, गगामाटीका वह साधु आ पहुँचा है । बलिहारी है, खोज-खाजकर पता लगा ही लिया । "

रतन सभी साधु-सज्जनोको सदेहकी दृष्टिसे देखता है। राजलक्ष्मीके गुरुदेवको तो वह एक ऑख नही देख सकता। बोला, " देखिए, यह इस बार किस मतलबसे आया है । ये धार्मिक लोग रुपये लेनेके अनेक कौशल जानते हैं ! "

हँसकर कहा, " आनन्द बडे आदमीका लडका है, डाक्टरी पास है, उसे अपने लिए रुपयोकी जरूरत नही । "

" हूँ, बड़े आदमीका लडका है ! रुपया रहनेपर क्या कोई इस रास्तेपर आता है ! " इस तरह अपना मुदृढ अभिमत व्यक्त कर वह चला गया । रतनको असली आपत्ति यहींपर है । मॉंके रुपये कोई ले जाय, इसका वह जबरदस्त विरोधी है । हॉ, उसकी अपनी बात अलग है । "

वज्रानन्दने आकर मुझे नमस्कार किया, कहा, " और एक बार आगया दादा । कुशल तो है ? दीदी कहाँ हैं ? "

" शायद पूजा करने बैठी हैं, निश्चय ही उन्हे खबर नही मिली है । "

" तो खुद ही जाकर संवाद दे दूँ। पूजा करना भाग थोड़े ही जायगा, अब वे एक बार रसोईघरकी तरफ भी दृष्टिपात करे। पूजाका कमरा किस तरफ है दादा ? और वह नाईका बच्चा कहाँ गया,—जरा चायका पानी चढा दे।"

पूजाका कमरा दिखा दिया। रतनको पुकारते हुए आनन्दने उस ओर प्रस्थान किया।

दो मिनट बाद दोनों ही आकर उपस्थित हुए। आनन्दने कहा, " दीदी, पाँचेक रुपये दे दो, चाय पीकर जरा सियालदा बाजार घूम आऊँ।"

राजलक्ष्मीने कहा, " नजदीक ही एक अच्छा बाजार है आनन्द, उतनी दूर क्यों जाओगे ? और तुम ही क्यों जाओगे ? रतनको जाने दो न !"

" कौन रतन ? उस आदमीका विश्वास नहीं दीदी, मै आया हूँ इसीलिए शायद वह छाँट छाँटकर सडी हुई मछलियाँ खरीद लायेगा, " कहकर हठात् देखा कि रतन दरवाजेपर खडा है, तब जरा जीभ दबाकर कहा, " रतन, बुरा न मानना भाई, मैंने समझा था कि तुम उधर चले गये हो, पुकारनेपर उत्तर नहीं मिला था न।"

राजलक्ष्मी हँसने लगी, मुझसे भी बिना हँसे न रहा गया। रतनकी भौंहें नहीं चढी, उसने गम्भीर आवाजमें कहा, " मैं बाजार जा रहा हूँ माँ, किशनने चायका पानी चढ़ा दिया है।" और वह चला गया। राजलक्ष्मीने कहा, " शायद रतनकी आनन्दसे नहीं बनती ?"

आनंदने कहा, " हाँ, पर मै उसे दोष नहीं दे सकता दीदी। वह आपका हितैषी है—ऐरे-गैरोंको नही घुसने देना चाहता। पर आज उससे मेल कर लेना होगा, नही तो खाना अच्छा नही मिलेगा। बहुत दिनोंका भूखा हूँ।"

राजलक्ष्मीने जल्दीसे बरामदेमे जाकर कहा, "रतन, और कुछ रुपये ले जा भाई, क्योकि एक बडी-सी रुई मछली लानी होगी।" लौटकर कहा, " मुँह हाथ धो लो भाई, मै चाय तैयार कर लाती हूँ।" यह कह वह नीचे चली गई।"

आनंदने कहा, " दादा, एकाएक तलबी क्यों हुई ?"

" इसकी कैफियत क्या मैं दूँगा आनद ?"

आनदने हँसते हुए कहा, " देखता हूँ कि दादाका अब भी वही भाव है—नाराज़गी दूर नही हुई है। फिर कहीं लापता होजानेका इरादा तो नही है ? उस दफा गगामाटीमे कैसी झंझटमें डाल दिया था। इधर सारे देशके

लोगोंका निमंत्रण और उधर मकानका मालिक लापता ! बीचमे मैं,—नया आदमी—इधर दौड़ूँ, उधर दौड़ूँ, दीदी पैर फैलाकर रोने बैठ गई, रतनने लोगोको भगानेका उद्योग किया,—कैसी विपत्ति थी ! वाह दादा, आप खूब हैं ! ”

मै भी हँस पडा, बोला, “ अबकी बार नाराजगी दूर हो गई है। डरो मत । ”

आनदने कहा, “ पर भरोसा तो नहीं होता । आप जैसे निःसग, एकाकी लोगोंसे मै डरता हूँ और अकमर सोचता हूँ कि आपने अपनेको ससारमे क्यों बँधने दिया । ”

मन ही मन कहा, तकदीर ! और मुँहसे कहा, “ देखता हूँ कि मुझे भूले नही हो, बीच बीचमें याद करते थे ? ”

आनदने कहा, “ नही दादा, आपको भूलना भी मुश्किल है और समझना भी कठिन है, मोह दूर करना तो और भी कठिन है। अगर विश्वास न हो तो कहिए, दीदीको बुलाकर गवाही दे दूँ । आपसे सिर्फ दो-तीन दिनका ही तो परिचय है, पर उस दिन दीदीके साथ सुरमे सुर मिलाकर मै भी जो रोने नही बैठ गया सो सिर्फ इसलिए कि यह सन्यासी धर्मके बिलकुल खिलाफ है । ”

बोला, “ वह शायद दीदीकी खातिर । उनके अनुरोधसे ही तो इतनी दूर आये हो ? ”

आनदने कहा, “ बिलकुल झूठ नही है दादा । उनका अनुरोध तो सिर्फ अनुरोध नही है, वह तो मानो माँकी पुकार है, पैर अपने आप चलना शुरू कर देते हैं । न जाने कितने घरोंमे आश्रय लेता हूँ, पर ठीक ऐसा तो कहीं नहीं देखता। सुना है कि आप भी तो बहुत घूमे हैं, आपने भी कही कोई इनके ऐसी और देखी है ? ”

कहा, “ बहुत-सीं । ”

राजलक्ष्मीने प्रवेश किया । कमरेमे घुसते ही उसने मेरी बात सुन ली थी, चायकी प्याली आनदके निकट रखकर मुझसे पूछा, “ बहुत-सीं क्या जी ? ”

आनद शायद कुछ विपद्ग्रस्त हो गया, मैने कहा, “ तुम्हारे गुणोंकी बाते । इन्होंने सदेह जाहिर किया था, इसीलिए मैने जोरसे उसका प्रतिवाद किया है । ”

आनंद चायकी प्याली मुँहसे लगा रहा था, हँसीकी वजहसे थोड़ी-सी चाय जमीनपर गिर पड़ी। राजलक्ष्मी भी हँस पड़ी।

आनंदने कहा, " दादा, आपकी उपस्थित-बुद्धि अद्भुत है। यह ठीक उल्टी बात क्षण-भरमें आपके दिमागमें कैसे आ गई ? "

राजलक्ष्मीने कहा, " इसमें आश्चर्य क्या है आनंद ? अपने मनकी बात दबाते दबाते और कहानियाँ गढ़कर सुनाते सुनाते इस विद्यामे ये पूरी तरह महामहोपाध्याय हो गये हैं। "

कहा, " तो तुम मेरा विश्वास नहीं करतीं ? "

" जरा भी नही। "

आनदने हँसकर कहा, " गढ़कर कहनेकी विद्यामे आप भी कम नही है दीदी। तत्काल ही जवाब दे दिया, ' जरा भी नही '। "

राजलक्ष्मी भी हँस पडी। बोली, " जल-भुनकर सीखना पडा है भाई। पर अब तुम देर मत करो, चाय पीकर नहा लो। यह अच्छी तरह जानती हूँ कि कल ट्रेनमे तुम्हारा भोजन नही हुआ। इनके मुँहसे मेरी मुख्याति सुननेके लिए तो तुम्हारा सारा दिन भी कम होगा। " यह कहकर वह चली गई।

आनदने कहा, " आप दोनों जैसे दो व्यक्ति ससारमे विरल है। भगवानने अद्भुत जोड मिलाकर आप लोगोको दुनियामे भेजा है। "

" उसका नमूना देख लिया न ? "

" नमूना तो उस पहले ही दिन साँईथिया स्टेशनके पेड-तले देख लिया था। इसके बाद और कोई कभी नजर नही आया। "

" आहा ! ये बाते यदि तुम उनके सामने ही कहते आनद ! "

आनद कामका आदमी है, काम करनेका उद्यम और शक्ति उसमे विपुल है। उसको निकट पाकर राजलक्ष्मीके आनंदकी सीमा नहीं। रात-दिन खानेकी तैयारियाँ तो प्रायः भयकी सीमातक पहुँच गई। दोनोंमे लगातार कितने परामर्श होते रहे, उन सबको मै नही जानता। कानमे सिर्फ यह भनक पडी कि गगामाटीमें एक लडकोंके लिए और एक लडकियोंके लिए स्कूल खोला जायगा। वहाँ काफी गरीब ओर नीच जातिके लोगोका वास है और शायद वे ही उपलक्ष्य है। सुना कि चिकित्साका भी प्रबन्ध किया जायगा। इन सब विषयोंकी मुझमे तनिक भी पटुता नही। परोपकारकी इच्छा है पर शक्ति

नहीं। यह सोचते ही कि कहीं कुछ खडा करना या बनाना पड़ेगा, मेरा श्रान्त मन 'आज नही, कल' कह कहकर दिन टालना चाहता है। अपने नये उद्योगमे बीच बीचमे आनन्द मुझे घसीटने आता, पर राजलक्ष्मी हँसते हुए बाधा देकर कहती, "इन्हे मत लपेटो आनन्द, तुम्हारे सब संकल्प पगु हो जायेंगे।"

सुननेपर प्रतिवाद करना ही पडता। कहता, "अभी उस दिन तो कहा कि मेरा बहुत काम है और अब मुझे बहुत कुछ करना होगा!"

राजलक्ष्मीने हाथ जोड़कर कहा, "मेरी गलती हुई गुसाई, अब ऐसी बात कभी जबानपर नही लाऊँगी।"

"तब क्या किसी दिन कुछ भी नहीं करूँगा?"

"क्यों नही करोगे? यदि बीमार पडकर डरके मारे मुझे अधमरा न कर डालो, तो इससे ही मै तुम्हारे निकट चिरकृतज्ञ रहूँगी।"

आनन्दने कहा, "दीदी, इस तरह तो आप सचमुच ही इन्हें अकर्मण्य बना देगी।"

राजलक्ष्मीने कहा, "मुझे नही बनाना पडेगा भाई, जिस विधाताने इनकी सृष्टि की है उसीने इसकी व्यवस्था कर दी है,—कही भी त्रुटि नहीं रहने दी है।"

आनन्द हँसने लगा। राजलक्ष्मीने कहा, "और फिर वह जलमुँहा ज्योतिषी ऐसा डर दिला गया है कि इनके मकानसे बाहर पैर रखते ही मेरी छाती धक् धक् करने लगती है—जब तक लौटते नही तब तक किसी भी काममे मन नही लगा सकती।"

"इस बीच ज्योतिषी कहाँ मिल गया? क्या कहा उसने?"

इसका उत्तर मैंने दिया, कहा, "मेरा हाथ देखकर वह बोला कि बहुत बडा विपद्-योग है—जीवन-मरणकी समस्या!"

"दीदी, इन सब बातोपर आप विश्वास करती हैं?"

मैंने कहा, "हाँ करती हैं, जरूर करती हैं। तुम्हारी दीदी कहती है कि क्या विपद्-योग नामकी कोई बात ही दुनियामे नहीं है? क्या कभी किसीपर आफत नही आती?"

आनन्दने हँसकर कहा, "आ सकती है, पर हाथ देखकर कोई कैसे बता सकता है दीदी?"

राजलक्ष्मीने कहा, "यह तो नहीं जानती भाई, पर मुझे यह भरोसा जरूर है कि जो मेरे जैसी भाग्यवती है, उसे भगवान् इतने बडे दुःखमे नहीं डुबायेंगे।"

क्षण-भर तक स्तब्धताके साथ उसके मुँहकी ओर देखकर आनन्दने दूसरी बात छेड़ दी।

इसी बीच मकानकी लिखा-पढी, बन्दोबस्त और व्यवस्थाका काम चलने लगा, ढेरकी ढेर ईंटे, काठ, चूना, सुरकी, दरवाजे, खिडकी वगैरह आ पड़ी, पुराने घरको राजलक्ष्मीने नया बनानेका आयोजन किया।

उस दिन शामको आनंदने कहा, "चलिए दादा, जरा घूम आयें।"

आजकल मेरे बाहर जानेके प्रस्तावपर राजलक्ष्मी अनिच्छा जाहिर किया करती है। बोली, "घूमकर लौटते लौटते रात्रि हो जायगी आनद, ठड नही लगेगी?"

आनदने कहा, "गरमीसे तो लोग मरे जा रहे है दीदी, ठड कहाँ है?"

आज मेरी तबियत भी बहुत अच्छी न थी। कहा, "इसमें शक नहीं कि ठंड लगनेका डर नही, पर आज उठनेकी भी वैसी इच्छा नही हो रही है, आनंद।"

आनदने कहा, "यह जडता है। शामके वक्त कमरेमे बैठे रहनेसे अनिच्छा और भी बढ जायगी—चलिए, उठिए।"

राजलक्ष्मीने इसका समाधान करनेके लिए कहा, "इससे अच्छा एक दूसरा काम करें न आनद। परसो क्षितीश मुझे एक अच्छा हारमोनियम खरीद कर दे गया है, अब तक उसे देखनेका वक्त ही नही मिला। मैं भगवानका नाम लेती हूँ, तुम बैठकर सुनो—शाम कट जायगी।" यह कह उसने रतनको पुकारकर बक्स लानेके लिए कह दिया।

आनन्दने विस्मयसे पूछा, "भगवानका नाम माने क्या गीत दीदी?"

राजलक्ष्मीने सिर हिलाकर 'हाँ' की। "दीदीको यह विद्या भी आती है क्या?"

"बहुत साधारण-सी।" फिर मुझे दिखाकर कहा, "बचपनमे इन्होंने ही अभ्यास कराया था।"

आनन्दने खुश होकर कहा, "दादा तो छिपे हुए रुस्तम हैं, बाहरसे

पहचाननेका कोई उपाय ही नही।"

उसका मन्तव्य सुन राजलक्ष्मी हँसने लगी, पर मै सरल मनसे साथ न दे सका। क्योंकि आनन्द कुछ भी नहीं समझेगा और मेरे इकारको उस्तादके विनय-वाक्य समझ और भी ज्यादा तग करेगा, और अन्तमे शायद नाराज भी हो जायगा। पुत्र-शोकातुर धृतराष्ट्र-विलापका दुर्योधनवाला गाना जानता हूँ, पर राजलक्ष्मीके बाद इस बैठकमे वह कुछ जँचेगा नही।

राजलक्ष्मीने हारमोनियम आनेपर पहले दो-एक भगवानके ऐसे गीत सुनाये जो हर जगह प्रचलित है और फिर वैष्णव-पदावली आरम्भ कर दी। सुनकर ऐसा लगा कि उस दिन मुरारीपुरके अखाडेमे भी शायद इतना अच्छा नहीं सुना था। आनन्द विस्मयसे अभिभूत हो गया, मेरी ओर इशारा कर मुग्ध चित्तसे बोला, "यह सब क्या इन्हीसे सीखा है दीदी ?"

सब क्या एक ही आदमीके पास कोई सीखता है आनन्द ?"

"यह सही है।" इसके बाद उसने मेरी तरफ देखकर कहा, "दादा, अब आपको दया करनी होगी। दीदी कुछ थक गई है।"

"नहीं भाई, मेरी तबीयत अच्छी नही है।"

"तबीयतके लिए मै जिम्मेदार हूँ, क्या अतिथिका अनुरोध नही मानेंगे ?"

"माननेका उपाय जो नही है, तबियत बहुत खराब है।"

राजलक्ष्मी गम्भीर होनेकी चेष्टा कर रही थी पर सफल न हो सकी, हँसीके मारे लौट पोट हो गई। आनन्दने अब मामला समझा, बोला, "दीदी, तो सच बताओ कि आपने किससे इतना सीखा ?"

मैने कहा, "जो रुपयोके परिवर्तनमे विद्या-दान करते हैं उनसे, मुझसे नही भैया। दादा इस विद्याके पाससे भी कभी नही फटका।"

क्षणभर मौन रहकर आनन्दने कहा, "मै भी कुछ थोडा-सा जानता हूँ दीदी, पर ज्यादा सीखनेका वक्त नही मिला। यदि इस बार सुयोग मिला तो आपका शिष्यत्व स्वीकार कर अपनी शिक्षाको सम्पूर्ण कर लूँगा। पर आज क्या यही रुक जायेंगी, और कुछ नही सुनायेंगी ?"

राजलक्ष्मीने कहा, "अब तो वक्त नहीं है भाई, तुम लोगोका खाना जो तैयार करना है।"

आनदने निःश्वास छोडकर कहा, "यह जानता हूँ कि ससारमे जिनके ऊपर

भार है उनके पास वक्त कम है। पर उम्रमें मैं छोटा हूँ, आपका छोटा भाई। मुझे सिखाना ही होगा। अपरिचित स्थानमे जब अकेला वक्त कटना नहीं चाहेगा, तब आपकी इस दयाका स्मरण करूँगा।"

राजलक्ष्मीने स्नेहसे विगलित होकर कहा, "तुम डाक्टर हो, विदेशमें अपने इस स्वास्थ्यहीन दादाके प्रति दृष्टि रखना भाई, मै जितना भी जानती हूँ उतना तुम्हे प्यारसे सिखाऊँगी।"

"पर इसके अलावा क्या आपको और कोई फिक्र नहीं है दीदी?"

राजलक्ष्मी चुप रही। आनदने मुझे उद्देश्य कर कहा, "दादा जैसा भाग्य सहसा नजर नही आता।"

मैंने इसका उत्तर दिया, "और ऐसा अकर्मण्य व्यक्ति ही क्या जल्दी नजर आता है आनंद? ऐसोंकी नकेल पकडनेके लिए भगवान् मजबूत आदमी भी दे देता है, नही तो वे बीच समुद्रमे ही डूब जायॅ—किसी तरह घाट तक पहुँच ही न पायें। इसी तरह ससारमे सामंजस्यकी रक्षा होती है भैया, मेरी बाते मिलाकर देखना, प्रमाण मिल जायगा।"

राजलक्ष्मी भी मुहूर्त-भर निःशब्द देखती रही, फिर उठ गई। उसे बहुत काम है।

इन कुछ दिनोंके अंदर ही मकानका काम शुरू हो गया, चीज-वस्तको एक कमरेमे बदकर राजलक्ष्मी यात्राकी तैयारी करने लगी। मकानका भार बूढे तुलसीदासपर रहा।

जानेके दिन राजलक्ष्मीने मेरे हाथमे एक पोस्टकार्ड देकर कहा, "मेरी चार पन्नेकी चिट्ठीका यह जवाब आया है—पढकर देख लो।" और वह चली गई।

दो तीन लाइनोमे कमललताने लिखा है—

"सुखसे ही हूँ बहन, जिनकी सेवामे अपनेको निवेदन कर दिया है, मुझे अच्छा रखनेका भार भी उन्हींपर है। यही प्रार्थना करती हूँ कि तुम लोग कुशल रहो। बडे गुसाईजी अपनी आनंदमयीके लिए श्रद्धा प्रगट करते हैं।

—इति श्री-श्रीराधाकृष्णचरणाश्रिता, कमललता।"

उसने मेरे नामका उल्लेख भी नहीं किया है। पर इन कई अक्षरोंकी आड़मे उसकी न जाने कितनी बाते छुपी रह गई। खोजने लगा कि चिट्ठीपर

एक बूँद आँसूका दाग भी क्या कहीं नहीं पड़ा है ? पर कोई भी चिह्न नजर नहीं आया।

चिट्ठीको हाथमे लेकर चुप बैठा रहा। खिड़कीके बाहर धूपसे तपा हुआ नीलाभ आकाश है, पड़ौसीके घरके दो नारियलके वृक्षोके पत्तोंकी फॉकसे उसका कुछ अश दिखाई देता है। वहॉ अकस्मात् ही दो चेहरे पास ही पास मानों तैर आये, एक मेरी राजलक्ष्मीका—कल्याणकी प्रतिमा, दूसरा कमललताका, अपरिस्फुट, अनजान जैसे कोई स्वप्नमे देखी हुई छवि।

रतनने आकर ध्यान भग कर दिया। बोला, "स्नानका वक्त हो गया है बाबू, मॉने कहा है।"

स्नानका समय भी नहीं बीत जाना चाहिए !

फिर एक दिन सुबह हम गगामाटी जा पहुँचे। उस बार आनद अनाहूत अतिथि था, पर इस बार आमन्त्रित बान्धव। मकानमे भीड़ नहीं समाती, गॉवके आत्मीय और अनात्मीय न जाने कितने लोग हमे देखने आये हैं, सभीके चेहरोंपर प्रसन्न हँसी और कुशल-प्रश्न हैं। राजलक्ष्मीने कुशारीजीकी पत्नीको प्रणाम किया। सुनन्दा रसोईके काममे लगी थी, बाहर निकल आई और हम दोनोंको प्रणाम करके बोली, "दादा, आपका शरीर तो वैसा अच्छा दिखाई नही देता !"

राजलक्ष्मीने कहा, "अच्छा कब दिखता है बहन ? मुझसे तो नही हुआ, अब शायद तुम लोग अच्छा कर सको,—इसी आशासे यहाँ ले आई हूँ।"

मेरे विगत दिनोंकी बीमारीकी बात शायद बडी 'बहूको' याद आ गई, उन्होने स्नेहार्द्र कण्ठसे दिलासा देते हुए कहा,—"डरकी कोई बात नही है बेटी, इस देशकी हवा-पानीसे दो दिनमे ही ये ठीक हो जायंगे।" मेरी समझमे नहीं आया कि मुझे क्या हुआ है और किस लिए इतनी दुश्चिन्ता है !

इसके बाद नाना प्रकारके कामोंका आयोजन पूरे उद्यमके साथ शुरू हो गया। पोडामाटीको खरीदनेकी बातचीतसे शुरू करके शिशु-विद्यालयकी प्रतिष्ठाके लिए स्थानकी खोज तक किसी भी काममे किसीको जरा भी आलस्य नही।

सिर्फ मै अकेला ही मनमे कोई उत्साह अनुभव नहीं करता। या तो यह

मेरा स्वभाव ही है, या फिर कुछ और ही है जो दृष्टिके अगोचर मेरी समस्त प्राण-शक्तिका धीरे धीरे मूलोच्छेदन कर रहा है। एक सुभीता यह हो गया है कि मेरी उदासीनतासे कोई विस्मित नही होता, मानों मुझसे और किसी बातकी प्रत्याशा करना ही असंगत है। मै दुर्बल हूँ, अस्वस्थ हूँ, मै कभी हूँ और कभी नही हूँ। फिर भी कोई बीमारी नही है, खाता-पीता और रहता हूँ। अपनी डाक्टरी विद्याद्वारा ज्यो ही कभी आनन्द हिलाने डुलानेकी कोशिश करता है त्यों ही राजलक्ष्मी सस्नेह उलहनेके रूपमे बाधा देते हुए कहती है, "उन्हे दिक करनेका काम नहीं भाई, न जाने क्यासे क्या हो जाय। तब हमे ही तो भोगना पडेगा!"

आनन्द कहता, "आपको सावधान किये देता हूँ कि जो व्यवस्था की है उससे भोगनेकी मात्रा बढेगी ही, कम नही होगी दीदी।"

राजलक्ष्मी सहज ही स्वीकार करके कहती, "यह तो मै जानती हूँ आनन्द, कि भगवानने मेरे जन्म-कालमे ही यह दुःख कपालमे लिख दिया है।"

इसके बाद और तर्क नही किया जा सकता।

कभी किताबे पढते हुए दिन कट जाता है, कभी अपनी विगत कहानीको लिखनेमे, और कभी सूने मैदानोमे अकेले घूमते घूमते। एक बातसे निश्चिन्त हूँ कि कर्मकी प्रेरणा मुझमें नही है। लड-झगडकर उछल-कूद मचाकर ससारमे दस आदमियोके सिरपर चढ बैठनेकी शक्ति भी नहीं और सकल्प भी नही। सहज ही जो मिल जाता है, उसे ही यथेष्ट मान लेता हूँ। मकान-घर, रुपया-पैसा, जमीन-जायदाद, मान-सम्मान, ये सब मेरे लिए छायामय हैं। दूसरोकी देखादेखी अपनी जडताको यदि कभी कर्तव्य-बुद्धिकी ताडनासे सचेत करना चाहता हूँ तो देखता हूँ कि थोडी ही देरमें वह फिर ऑखे बद किये ऊँघ रही है,—सैकडो धक्के देनेपर भी हिलना-डुलना नहीं चाहती। देखता हूँ कि सिर्फ एक विषयमे तन्द्रातुर मन कलरवसे तरगित हो उठता है और वह है मुरारीपुरके दस दिनोकी स्मृतिका आलोडन। मानो कानोंमे सुनाई पड रहा है, वैष्णवी कमललताका सस्नेह अनुरोध—'नये गुसाई, यह कर दो न भाई!—अरे जाओ, सब नष्ट कर दिया! मेरी गलती हुई जो तुमसे काम करनेके लिए कहा, अब उठो। जलमुँही पद्मा कहाँ गई, जरा पानी चढ़ा देती, तुम्हारा चाय पीनेका समय हो गया है गुसाई।'

उन दिनों वह खुद चायके पात्र धोकर रखती थी, इस डरसे कि कही टूट न जायँ। उनका प्रयोजन खत्म हो गया है, तथापि क्या मालूम कि फिर कभी काममे आनेकी आशासे उसने अब भी उन्हे यत्नपूर्वक रख छोड़ा है या नही। जानता हूँ कि वह भागूँ भागूँ कर रही है। हेतु नही जानता, तो भी मनमे सदेह नही है कि मुरारीपुरके आश्रममे उसके दिन हररोज सक्षिप्त होते जा रहे हैं। एक दिन अकस्मात् शायद, यही खबर मिलेगी। यह कल्पना करते ही ऑखोंमे ऑसू आ जाते हैं कि वह निराश्रय, निःसबल पथ-पथपर भिक्षा मॉगती हुई घूम रही है। भूला-भटका मन सान्त्वनाकी आशामें राजलक्ष्मीकी ओर देखता है, जो सबकी सकल शुभचिन्ताओंके अविश्राम कर्ममे नियुक्त है—मानो उसके दोनो हाथोकी दसो अँगुलियोसे कल्याण अजस्रधारासे बह रहा है। सुप्रसन्न मुँहपर शान्ति और सतोषकी स्निग्ध छाया पड रही है। करुणा और ममतासे हृदयकी यमुना किनारेतक पूर्ण है—निरविच्छिन्न प्रेमकी सर्वव्यापी महिमाके साथ वह मेरे हृदयमे जिस आसन-पर प्रतिष्ठित है, नही जानता कि उसकी तुलना किससे की जाय।

विदुषी सुनन्दाके दुर्निवार प्रभावने कुछ वक्तके लिए उसे जो विभ्रान्त कर दिया था, उसके दुःसह परितापसे उसने अपनी पुरानी सत्ता फिरसे पा ली है। एक बात आज भी वह मेरे कानो कानोमे कहती है कि "तुम भी कम नहीं हो जी, कम नही हो! भला यह कौन जानता था कि तुम्हारे चले जानेके पथपर ही मेरा सर्वस्व पलक मारते ही दौड पडेगा। ऊः! वह कैसी भयकर बात थी! सोचनेपर भी डर लगता है कि मेरे वे दिन कटे कैसे थे। धडकन बद होकर मर नही गई, यही आश्चर्य है।" मै उत्तर नही दे पाता हूँ सिर्फ चुपचाप देखता रहता हूँ।

अपने बारेमे अब उसकी गलती पकडनेकी गुजाइश नही है। सौ कामोंके बीच भी सौ दफा चुपचाप आकर देख जाती है। कभी एकाएक आकर नजदीक बैठ जाती है और हाथकी किताब हटाते हुए कहती है, "ऑखे बद करके जरा सो जाओ न, मै सिरपर हाथ फेरे देती हूँ। इतना पढनेपर ऑखोंमे दर्द जो होने लगेगा!"

आनद आकर बाहरसे ही कहता है, "एक बात पूछनी है, आ सकता हूँ?"

राजलक्ष्मी कहती है, " आ सकते हो। तुम्हे आनेकी कहॉ मनाई है आनद ? "

आनद कमरेमे घुसकर आश्चर्यसे कहता है, " इस असमयमे क्या आप इन्हें सुला रही हैं दीदी ? "

राजलक्ष्मी हॅसकर जवाब देती है, " तुम्हारा क्या नुकसान हुआ ? नहीं सोनेपर भी तो ये तुम्हारी पाठशालाके बछडोंको चराने नहीं जायेंगे ! "

" देखता हूँ कि दीदी इन्हे मिट्टी कर देगी। "

" नहीं तो खुद जो मिट्टी हुई जाती हूँ, बेफिक्रीसे कोई काम-काज ही नहीं कर पाती। "

" आप दोनो ही क्रमशः पागल हो जायेगे, " कहकर आनद बाहर चला जाता है।

स्कूल बनवानेके काममे आनदको सॉस लेनेकी भी फुर्सत नहीं है, और सपत्ति खरीदनेके हगामेमे राजलक्ष्मी भी पूरी तरह डूबी हुई है। इसी समय कलकत्तेके मकानसे घूमती हुई, बहुतसे पोष्टआफिसोकी मुहरोंको पीठपर लिये हुए, बहुत देरमे, नवीनकी साघातिक चिट्ठी आ पहॅुची,—गौहर मृत्युशय्यापर है। सिर्फ मेरी ही राह देखता हुआ अब भी जी रहा है। यह खबर मुझे शूल जैसी चुभी। यह नही जानता कि बहिनके मकानसे वह कब लौटा। वह इतना ज्यादा पीडित है, यह भी नहीं सुना—सुननेकी विशेष चेष्टा भी नही की और आज एकदम शेष सवाद आ गया। प्रायः छह दिन पहलेकी चिट्ठी है, इसलिए अब वह जिन्दा है या नहीं—यही कौन जानता है ? तार द्वारा खबर पानेकी व्यवस्था इस देशमे नही है और उस देशमे भी नही। इसलिए इसकी चिन्ता वृथा है। चिट्ठी पढकर राजलक्ष्मीने सिरपर हाथ रखकर पूछा, " तुम्हे क्या जाना पडेगा ? "

" हॉ। "

" तो चलो, मै भी साथ चलॅू। "

" यह कही हो सकता है ? इस आफतके समय तुम कहॉं जाओगी ? " यह उसने खुद ही समझ लिया कि प्रस्ताव असगत है, मुरारीपुरके अखाडेकी बात भी फिर वह जबानपर न ला सकी। बोली, " रतनको कलसे बुखार है, साथमे कौन जायगा ? आनदसे कहूँ ? "

" नहीं ! वह मेरे बिस्तर उठानेवाला आदमी नहीं है "

" तो फिर साथमे किशन जाय । "

" भले जाय, पर जरूरत नहीं है । "

" जाकर रोज चिट्ठी दोगे, बोलो ? "

" समय मिला तो दूँगा । "

" नहीं, यह नहीं सुनूँगी । एक दिन चिट्ठी न मिलनेपर मै खुद आ जाऊँगी, चाहे तुम कितने ही नाराज क्यों न हो । "

अगत्या राजी होना पडा, और हररोज सवाद देनेकी प्रतिज्ञा करके उसी दिन चल पडा । देखा कि दुश्चिन्तासे राजलक्ष्मीका मुँह पीला पड़ गया है, उसने आखे पोछकर अन्तिम बार सावधान करते हुए कहा, " वादा करो कि शरीरकी अवहेलना नही करोगे ? "

" नहीं, नही करूँगा । "

" कहो कि लौटनेमे एक दिनकी भी देरी नही करोगे ? "

" नही, सो भी नही करूँगा । "

अन्तमें बैलगाडी रेलवे स्टेशनकी तरफ चल दी ।

आषाढका महीना था । तीसरे प्रहर गौहरके मकानके सदर दरवाजेपर जा पहुँचा । मेरी आवाज सुनकर, नवीन बाहर आया और पछाड खाकर पैरोके पास गिर पडा । जो डर था वही हुआ । उस दीर्घकाय बलिष्ठ पुरुषके प्रबल-कण्ठके उस छाती फाडनेवाले क्रदनमे शोककी एक नई मूर्ति देखी । वह गम्भीर थी, उतनी ही बडी और उतनी ही सत्य । गौहरकी माँ नही, बहन नही, कन्या नही, पत्नी नही । उस दिन इस सगीहीन मनुष्यको अश्रुओंकी माला पहनाकर बिदा करनेवाला कोई न था; तो भी ऐसा मालूम होता है कि उसे सज्जाहीन, भूषणहीन, कगाल वेशमे नही जाना पडा, उसकी लोकान्तर-यात्राके पथके लिए शेष पाथेय अकेले नवीनने ही दोनों हाथ भरकर उड़ेल दिया है ।

बहुत देर बाद जब वह उठकर बैठ गया तब पूछा, " गौहर कब मरा नवीन ! "

" परसों । कल सुबह ही हमने उन्हें दफनाया है । "

" कहाँ दफनाया ? "

" नदीके किनारे, आमके बगीचेमें। और यह उन्हींने कहा था। ममेरी बहनके मकानसे बुखार लेकर लौटे और वह बुखार फिर नहीं गया।"

" इलाज हुआ था ?"

" यहाँ जो कुछ हो सकता है सब हुआ, पर किसीसे भी कुछ लाभ न हुआ। बाबू खुद ही सब जान गये थे।"

" अखाड़ेके बडे गुसाईंजी आते थे ?"

नवीनने कहा, " कभी कभी। नवद्वीपसे उनके गुरुदेव आये हैं, इसीलिए रोज आनेका वक्त नही मिलता था।" और एक व्यक्तिके बारेमें पूछते हुए शर्म आने लगी, तो भी सकोच दूर कर प्रश्न किया, " वहाँसे और कोई नहीं आया नवीन ?"

नवीनने कहा, " हाँ, कमललता आई थी।"

" कब आई थी ?"

नवीनने कहा, " हर-रोज। अतिम तीन दिनोंमे तो न उन्होंने खाया और न सोया, बाबूका बिछौना छोडकर एकबार भी नही उठीं।"

और कोई प्रश्न नही किया, चुप हो रहा। नवीनने पूछा, " अब कहाँ जायेंगे, अखाड़ेमें ?"

" हाँ।"

" जरा ठहरिए" कहकर वह भीतर गया और एक टीनका बक्स बाहर निकाल लाया। उसे मुझे देते हुए बोला, " आपको देनेके लिए कह गये हैं।"

" क्या है इसमें नवीन ?"

" खोलकर देखिए," कहकर उसने मेरे हाथमे चाबी दे दी। खोलकर देखा कि उसकी कविताकी कापियाँ रस्सीसे बँधी हुई हैं। ऊपर लिखा है, " श्रीकान्त, रामायण खत्म करनेका वक्त नही रहा। बडे गुसाईंजीको दे देना, वे इसे मठमे रख देंगे, जिससे नष्ट न होने पावे।" दूसरी छोटी-सी पोटली सूती लाल कपड़ेकी है। खोलकर देखा कि नाना मूल्यके एक बडल नोट हैं, और उनपर लिखा है, " भाई श्रीकान्त, शायद मै नही बचूँगा। पता नहीं कि तुमसे मुलाकात होगी या नहीं। अगर नहीं हुई तो नवीनके हाथों यह बक्स दे जाता हूँ, इसे ले लेना। ये रुपये तुम्हे दे जा रहा हूँ। यदि

कमललताके काममें आये तो दे देना। अगर न ले तो जो इच्छा हो सो करना। अल्लाह तुम्हारा भला करे।—गौहर। ”

दानका गर्व नही, अनुनय-विनय भी नहीं। मृत्यु आसन्न जानकर सिर्फ थोड़ेसे शब्दोंमें बाल्य-बन्धुकी शुभ कामना कर अपना शेष निवेदन रख गया है। भय नहीं, क्षोभ नहीं, उच्छ्वसित हाय-हायसे उसने मृत्युका प्रतिवाद नहीं किया। वह कवि था, मुसलमान फकीर-वंशका रक्त उसकी शिराओंमें था—शात मनसे यह शेष रचना अपने बाल्य-बंधुके लिए लिख गया है। अब तक मेरी ऑखोंके ऑसू बाहर नहीं निकले थे, पर अब उन्होंने निषेध नहीं माना, वे बड़ी बडी बूँदोंमें ऑखोंसे निकलकर ढुलक पड़े।

आषाढका दीर्घ दिन उस वक्त समाप्तिकी ओर था। सारे पश्चिम आकाशमे काले मेघोका एक स्तर ऊपर उठ रहा था। उसके ही किसी एक सकीर्ण छिद्रपथसे अस्तोन्मुख सूर्यकी रश्मियॉ लाल होकर आ पडीं प्राचीरसे सलग्न शुष्क-प्राय जामुनके पेडके सिरपर। इसीकी शाखाके सहारे गौहरकी माधवी और मालती लताओके कुज बने थे। उस दिन सिर्फ कलियाँ थीं, मुझे उनमेंसे ही कुछ उपहार देनेकी उसने इच्छा की थी। लेकिन चींटियोंके डरसे नहीं दे सका था। आज उनमेसे गुच्छेके गुच्छे फूल हैं, जिनमेसे कुछ तो नीचे झड गये हैं और कुछ हवासे उड़कर ईर्द-गिर्द बिखर गये हैं। उन्हींमेंसे कुछ उठा लिये,—बाल्यबधुके स्वहस्तोंका शेषदान समझकर। नवीनने कहा, “ चलिए, आपको पहुँचा आऊँ। ”

कहा, “ नवीन जरा बाहरका कमरा तो खोलो, देखूँगा। ”

नवीनने कमरा खोल दिया। आज भी चौकीपर एक ओर बिछौना लिपटा हुआ रखा है, एक छोटी पेसिल और कुछ फटे कागजोंके टुकडे भी हैं। इसी कमरेमें गौहरने अपनी स्वरचित कविता वदिनी सीताके दुखकी कहानी गाकर सुनाई थी। इस कमरेमें न जाने कितनी बार आया हूँ, कितने दिनों तक खाया-पीया और सोया हूँ और उपद्रव कर गया हूँ। उस दिन हँसते हुए जिन्होंने सब कुछ सहन किया था, अब उनमेंसे कोई भी जीवित नहीं है। आज अपना सारा आना जाना समाप्त करके बाहर निकल आया।

रास्तेमें नवीनके मुँहसे सुना कि गौहर ऐसी ही एक नोटोंकी छोटी पोटली उसके लड़कोंको भी दे गया है। बाकी जो संपत्ति बची है, वह उसके ममेरे

भाई-बहनोंको मिलेगी, और उसके पिताद्वारा निर्मित मसजिदके रक्षणा-वेक्षणके लिए रहेगी।

आश्रममे पहुँचकर देखा कि बहुत भीड है। गुरुदेवके साथ बहुतसे शिष्य और शिष्याएँ आई हैं। खासी मजलिस जमी है, और हाव-भावसे उनके शीघ्र बिदा होनेके लक्षण भी दिखाई नहीं दिये। अनुमान किया कि वैष्णव-सेवा आदि कार्य विधिके अनुसार ही चल रहे हैं।

मुझे देखकर द्वारिकादासने अभ्यर्थना की। मेरे आगमनका हेतु वे जानते थे। गौहरके लिए दुःख जाहिर किया, पर उनके मुँहपर न जाने कैसा विव्रत, उद्‌भ्रान्त भाव था, जो पहले कभी नहीं देखा। अन्दाज किया कि शायद इतने दिनोंसे वैष्णवोंकी परिचर्याके कारण वे क्लान्त और विपर्यस्त हो गये है, निश्चिन्त होकर बातचीत करनेका वक्त उनके पास नही है।

खबर मिलते ही पद्मा आई, उसके मुँहपर भी आज हँसी नहीं, ऐसी सकुचित-सी, मानों भाग जाये तो बचे।

पूछा, "कमललता दीदी इस वक्त बहुत व्यस्त हैं, क्यों पद्मा?"

"नही, दीदीको बुला दूँ?" कहकर वह चली गई। यह सब आज इतना अप्रत्याशित और अप्रासंगिक लगा कि मन ही मन शंकित हो उठा। कुछ देर बाद ही कमललताने आकर नमस्कार किया। कहा, "आओ गुसाई, मेरे कमरेमे चलकर बैठो।"

अपने बिछौने इत्यादि स्टेशनपर ही छोडकर सिर्फ बैग साथमे लाया था, और गौहरका वह बक्स मेरे नौकरके सिरपर था। कमललताके कमरेमे आकर, उसे उसके हाथमे देते हुए बोला, "जरा सावधानीसे रख दो, बक्समे बहुत रुपये हैं।"

कमललताने कहा, "मालूम है।" इसके बाद उसे खाटके नीचे रखकर पूछा, "शायद तुमने अभी तक चाय नहीं पी है?"

"नही।"

"कब आये?"

"शामको।"

"जाती हूँ, तैयार कर लाऊँ," कहकर वह नौकरको साथ लेकर चल दी और पद्मा भी हाथ मुँह धोनेके लिए पानी देकर चली गई, खड़ी नहीं रही।

फिर ख्याल हुआ कि बात क्या है ?

थोड़ी देर बाद कमललता चाय ले आई, साथमे कुछ फल-फूल, मिठाई और उस वक्तका देवताका प्रसाद। बहुत देरसे भूखा था, फौरन ही बैठ गया।

कुछ क्षण पश्चात् ही देवताकी सान्ध्य-आरतीके शंख और घंटेकी आवाज सुनाई पड़ी। पूछा, " अरे, तुम नहीं गई ? "

" नहीं, मना है। "

" मना है तुम्हें ? इसके मानी ? "

कमललताने म्लान हँसी हँसकर कहा, " मनाके माने है मना गुसाई। अर्थात् देवताके कमरेमे मेरा जाना निषिद्ध है। "

आहार करनेमे रुचि न रही, पूछा " किसने मना किया ? "

" बड़े गुसाईजीके गुरुदेवने। और उनके साथ जो आये हैं, उन्होंने। "

" वे क्या कहते हैं ? "

" कहते हैं कि मैं अपवित्र हूँ, मेरी सेवासे देवता कलुषित हो जायँगे। "

" तुम अपवित्र हो ! " विद्युत् वेगसे पूछा, " गौहरकी वजहसे ही सन्देह हुआ है क्या ? "

" हाँ, इसीलिए। "

कुछ भी नही जानता था, तो भी बिना किसी संशयके कह उठा, " यह झूठ है—यह असम्भव है ! "

" असम्भव क्यों है गुसाई ? "

" यह तो नहीं बतला सकता कमललता, पर इससे बढ़कर और कोई बात मिथ्या नहीं। ऐसा लगता है कि मनुष्य-समाजमें अपने मृत्यु-पथ-यात्री बन्धुकी एकान्त सेवाका ऐसा ही शेष पुरस्कार दिया जाता है ! "

उसकी ऑखोंमे ऑसू आ गये। बोली, " अब मुझे दुख नहीं है। देवता अन्तर्यामी हैं, उनके निकट तो डर नहीं था, डर था सिर्फ तुमसे। आज मैं निर्भय होकर जी गई गुसाई। "

" ससारके इतने आदमियोंके बीच तुम्हें सिर्फ मुझसे डर था ! और किसीसे नहीं ? "

" नहीं, और किसीसे नहीं, सिर्फ तुमसे था। "

इसके बाद दोनों ही स्तब्ध रहे। एक बार पूछा, " बड़े गुसाईजी क्या कहते हैं ? "

कमललताने कहा, " उनके लिए तो और कोई उपाय नहीं है। नही तो फिर कोई भी वैष्णव इस मठमे नहीं आयेगा।" कुछ देर बाद कहा, "अब यहॉ रहना नहीं हो सकता। यह तो जानती थी कि यहॉसे एक दिन मुझे जाना होगा, पर यही नही सोचा था कि इस तरह जाना होगा गुसाई। केवल पद्माके बारेमें सोचनेसे दुख होता है। लडकी है, उसका कही भी कोई नहीं है। बड़े गुसाईजीको यह नवद्वीपमें पड़ी हुई मिली थी। अपनी दीदीके चले जानेपर वह बहुत रोयेगी। यदि हो सके तो जरा उसका ख्याल रखना। यहॉ न रहना चाहे तो मेरे नामसे राजूको दे देना—वह जो अच्छा समझेगी अवश्य करेगी।"

फिर कुछ क्षण चुपचाप कटे। पूछा, " इन रुपयोंका क्या होगा ? न लोगी ?"

" नहीं। मै भिखारिणी हूँ, रुपयोंका क्या करूँगी—बताओ ?"

" तो भी यदि कभी किसी काममे आये—"

कमललताने इस बार हॅसकर कहा, " मेरे पास भी तो एक दिन बहुत रुपया था, वह किस काम आया ? फिर भी, अगर कभी ज़रूरत पड़ी तो तुम किस लिए हो ? तब तुमसे मॉग लूँगी। दूसरेके रुपये क्यों लेने लगी ?"

सोच न सका कि इस बातका क्या जवाब दूँ, सिर्फ उसके मुँहकी ओर देखता रहा।

उसने फिर कहा, " नहीं गुसाई, मुझे रुपये नही चाहिए। जिसके श्रीचरणोमे स्वयको समर्पण कर दिया है, वे मुझे नहीं छोड़ेगे। कही भी जाऊँ, वे सारे अभाव पूर्ण कर देगे। मेरे लिए चिन्ता फिक्र न करो।"

पद्माने कमरेमें आकर कहा, " नये गुसाईके लिए क्या इसी कमरेमे प्रसाद ले आऊँ दीदी ?"

" हॉ, यहीं ले आओ। नौकरको दिया ?"

" हॉ, दे दिया।"

तो भी पद्मा नही गई, क्षणभरतक इधर उधर करके बोली, " तुम नही खाओगी दीदी ?"

" खाऊँगी री जलमुँही, खाऊँगी। जब तू है, तब बिना खाये दीदीकी रिहाई है ?"

पद्मा चली गई।

सुबह उठनेपर कमललता दिखाई नही पडी, पद्माकी जुबानी मालूम हुआ कि वह शामको आती है। दिनपर कहाँ रहती है, कोई नहीं जानता। तो भी मै निश्चिन्त नही हो सका, रातकी बाते याद करके डर होने लगा कि कहीं वह चली न गई हो और अब मुलाकात ही न हो!

बडे-गुसाईजीके कमरेमें गया। सामने उन कापियोंको रख कर बोला, "गौहरकी रामायण है। उसकी इच्छा थी कि यह मठमें रहे।"

द्वारिकादासने हाथ फैलाकर रामायण ले ली, बोले, "यही होगा नये गुसाई। जहाँ मठके और सब ग्रंथ रहते हैं, वही उन्हींके साथ इसे भी रख दूँगा।"

कोई दो मिनटतक चुप रहकर कहा, "उसके संबधमे कमललतापर लगाये गये अपवादपर तुम विश्वास करते हो गुसाई?"

द्वारिकादासने मुँह ऊपर उठाकर कहा, "मै? जरा भी नहीं।"

"तब भी उसे चला जाना पड़ रहा है?"

"मुझे भी जाना होगा गुसाई। निर्दोषीको दूर करके यदि खुद बना रहूँ, तो फिर मिथ्या ही इस पथपर आया और मिथ्या ही उनका नाम इतने दिनों तक लिया।"

"तब फिर उसे ही क्यो जाना पड़ेगा? मठके कर्त्ता तो तुम हो, तुम तो उसे रख सकते हो?"

द्वारिकादास 'गुरु! गुरु! गुरु!' कहकर मुँह नीचा किये बैठे रहे। समझा कि इसके अलावा गुरुका और आदेश नहीं है।

"आज मैं जा रहा हूँ गुसाई," कहकर कमरेसे बाहर निकलते समय उन्होने मुँह ऊपर उठाकर मेरी ताका। देखा कि उनकी आँखोंसे आँसू गिर रहे हैं। उन्होने मुझे हाथ उठाकर नमस्कार किया और मैं प्रतिनमस्कार करके चला आया।

अपराह्ण बेला क्रमशः सध्यामें परिणत हो गई, सध्या उत्तीर्ण होकर रात आई, किन्तु कमललता नजर नहीं आई। नवीनका आदमी मुझे स्टेशनपर पहुँचानेके लिए आ पहुँचा। सिरपर बैग रखे किशन जल्दी मचा कर कह रहा है—अब वक्त नही है—पर कमललता नहीं लौटी। पद्माका विश्वास था कि थोड़ी देर बाद ही वह आयेगी, पर मेरा सन्देह क्रमशः विश्वास बन गया कि वह नहीं

आयेगी और शेष विदाईकी कठोर परीक्षासे विमुख होकर वह पूर्वाह्नमें ही भाग गई है, दूसरा वस्त्र भी साथ नहीं लिया है। कल उसने भिक्षुणी वैरागिणी बताकर जो आत्मपरिचय दिया था, वह परिचय ही आज अक्षुण्ण रखा।

जानेके वक्त पद्मा रोने लगी। उसे अपना पता देते हुए कहा, "दीदीने तुमसे मुझे चिट्ठी लिखते रहनेके लिए कहा है,—तुम्हारी जो इच्छा हो वह मुझे लिखकर भेजना पद्मा।"

"पर मैं तो अच्छी तरह लिखना नहीं जानती, गुसाईं।"

"तुम जो लिखोगी मैं वही पढ़ लूँगा।"

"दीदीसे मिलकर नहीं जाओगे?"

"फिर मुलाकात होगी पद्मा, अब तो मै जाता हूँ" कहकर बाहर निकल पड़ा।

१४

आँखें जिसे सारे रास्ते अन्धकारमे भी खोज रही थीं, उससे मुलाकात हुई रेलवे स्टेशनपर। वह लोगोंकी भीड़से दूर खडी थी, मुझे देख नजदीक आकर बोली, "एक टिकिट खरीद देना होगा गुसाईं—"

"तब क्या सचमुच ही सबको छोडकर चल दीं?"

"इसके अलावा और तो कोई उपाय नहीं है।"

"कष्ट नहीं होता कमललता?"

"यह बात क्यों पूछते हो गुसाईं, सब तो जानते हो।"

"कहाँ जाओगी?"

वृन्दावन जाऊँगी। पर इतनी दूरका टिकिट नहीं चाहिए। तुम पासकी ही किसी जगहका खरीद दो।"

"मतलब यह कि मेरा ऋण जितना भी कम हो उतना अच्छा। इसके बाद दूसरोंसे भिक्षा माँगना शुरू कर दोगी, जबतक कि पथ शेष नहीं होगा। यही तो?"

"भिक्षा क्या यह पहली बार ही शुरू होगी गुसाईं? क्या कभी और नहीं माँगी?"

चुप रहा। उसने मेरी ओर आँखें फिराकर कहा, "तो वृन्दावनका टिकिट ही खरीद दो।"

" तो चलो एक साथ ही चलें ? "

" तुम्हारा भी क्या यही रास्ता है ? "

कहा, " नहीं, यही तो नहीं है—तो भी जितनी दूरतक है, उतनी ही दूरतक सही। "

गाड़ी आनेपर दोनों उसमें बैठ गये। पासकी बेंचपर मैने अपने हाथोंसे ही उसका बिछौना बिछा दिया।

कमललता व्यस्त हो उठी, " यह क्या कर रहे हो गुसाई ? "

" वह कर रहा हूँ जो कभी किसीके लिए नहीं किया—हमेशा याद रखनेके लिए। "

" सचमुच ही क्या याद रखना चाहते हो ? "

" सचमुच ही याद रखना चाहता हूँ कमललता। तुम्हारे अलावा यह बात और कोई नहीं जानेगा। "

" पर मुझे तो दोष लगेगा गुसाई ? "

" नहीं, कोई दोष नही लगेगा—तुम मजेसे बैठो। "

कमललता बैठी, पर बडे सकोचके साथ। कितने गॉव, कितने नगर, और कितने प्रान्तरोंको पार करती हुई ट्रेन चल रही थी। नज़दीक बैठकर वह धीरे धीरे अपने जीवनकी अनेक कहानियाँ सुनाने लगी। जगह जगह घूमनेकी कहानियॉ, मथुरा, वृन्दावन, गोवरधन, राधाकुण्ड-निवासकी बातें, अनेक तीर्थ-भ्रमणोंकी कथायें और अन्तमे द्वारिकादासके आश्रयमें मुरारिपुर आश्रममें आनेकी बात। मुझे उस वक्त उस व्यक्तिकी विदाके वक्तकी बाते याद आ गई। कहा, " जानती हो कमललता, बडे गुसाई तुम्हारे कलकपर विश्वास नही करते ? "

" नहीं करते ? "

" कतई नहीं। मेरे आनेके वक्त उनकी ऑखोंसे ऑंसू गिरने लगे, बोले—' निर्दोषीको दूर करके यदि मै यहॉ खुद बना रहा नये गुसाई, तो उनका नाम लेना मिथ्या है और मिथ्या है मेरा इस पथपर आना। ' मठमे वे भी न रहेगे कमललता, और तव ऐसा निष्पाप मधुर आश्रम टूटकर बिलकुल नष्ट हो जायगा। "

" नहीं, नहीं नष्ट होगा, भगवान् एक न एक रास्ता अवश्य दिखा देगे। "

" अगर कभी तुम्हारी पुकार हो, तो फिर वहाँ लौटकर जाओगी ? "

" नहीं । "

" यदि वे पश्चात्ताप करके तुमको लौटाया चाहे ? "

" तो भी नहीं । "

" पर अब तुमसे कहाँ मुलाकात होगी ? "

इस प्रश्नका उसने उत्तर नहीं दिया, चुप रही । काफी वक्त खामोशीमे कट गया, पुकारा, " कमललता ? " उत्तर नहीं मिला, देखा कि गाड़ीके एक कोनेमे सिर रखकर उसने ऑखे बन्द कर ली हैं । यह सोचकर कि सारे दिनकी थकानसे सो गई है, जगानेकी इच्छा नही हुई । उसके बाद फिर, मैं खुद कब सो गया, यह पता नहीं, हठात् कानोंमे आवाज आई, "नये गुसाई ?"

देखा कि वह मेरे शरीरको हिलाकर पुकार रही है। बोली, " उठो, तुम्हारी साईथियाकी ट्रेन खडी है । "

जल्दीसे उठ बैठा, पासके डिब्बेमे किशनसिह था, पुकारनेके साथ ही उसने आकर बैग उतार दिया। बिछौना बॉधते वक्त देखा कि जिन दो चादरोंसे उसकी शय्या बनाई थी, उसने उनको पहलेसे ही तहकर मेरी बेंचपर एक ओर रख दिया है। कहा, " यह जरा-सा भी तुमने लौटा दिया—नही लिया ? "

" न जाने कितनी बार चढ़ना-उतरना पडे, यह बोझा कौन उठायेगा ? "

" दूसरा वस्त्र भी साथ नही लाइ, वह भी क्या बोझा होता ? एक दो वस्त्र निकालकर दूॅ ? "

" तुम भी खूब हो ! तुम्हारे कपड़े भिखारिणीके शरीरपर कैसे फबेगे ? "

" खैर, कपडे अच्छे नही लगेगे, पर भिखारीको भी खाना तो पडता है ? पहुॅचनेमे और भी दो दिन लगेगे, ट्रेनमे क्या खाओगी ? जो खानेकी चीजे मेरे पास हैं, उन्हे भी क्या फेक जाऊॅ,—तुम नही छुओगी ? "

कमललताने इस बार हॅसकर कहा, " अरे वाह, गुस्सा हो गये ! अजी उन्हे छुऊॅगी, छुऊॅगी। रहने दो उन्हे, तुम्हारे चले जानेके बाद मै पेटभरके खा लूॅगी । "

वक्त खत्म हो रहा था, मेरे उतरनेके वक्त बोली," जरा ठहरो तो गुसाई, कोई है नहीं—आज छिपकर तुम्हें एक बार प्रणाम कर लूॅ " यह कहकर, उसने झुककर मेरे पैरोंकी धूल ले ली।

उतरकर प्लेटफार्मपर खड़ा हो गया। उस वक्त रात समाप्त नहीं हुई थी, नीचे और ऊपर अंधकारके स्तरोंमे बॅटवारा शुरू हो गया था, आकाशके एक प्रांतमे कृष्णा त्रयोदशीका क्षीण शीर्ण शशि और दूसरे प्रान्तमे ऊषाकी आगमनी। उस दिनकी बात याद आ गई जिस दिन ऐसे ही वक्त देवताके लिए फूल तोड़ने जानेके लिए उसका साथी हुआ था। और आज ?

सीटी बजाकर और हरे रंगकी लालटैन हिलाकर गार्ड साहबने यात्राका संकेत किया। कमललताने खिड़कीसे हाथ बढ़ाकर प्रथम बार मेरा हाथ पकड़ लिया। उसके कंठमे विनतीका जो सुर था वह कैसे समझाऊँ ? बोली, " तुमसे कभी कुछ नही मॉगा है, आज एक बात रखोगे ? "

" हॉ रक्खूँगा " कहकर उसकी ओर देखने लगा।

कहनेमे उसे एक क्षणकी देर हुई, बोली, " जानती हूँ कि मैं तुम्हारे कितने आदरकी हूँ। आज विश्वासपूर्वक उनके पाद-पद्मोंमे मुझे सौंपकर तुम निश्चिन्त होओ, निर्भय होओ। मेरे लिए सोच सोचकर अब तुम अपना मन खराब मत करना गुसाइं, तुम्हारे निकट मेरी यही प्रार्थना है। "

ट्रेन चल दी। उसका वही हाथ अपने हाथमे लिये कुछ दूर अग्रसर होते होते कहा, " कमललता, तुम्हे मैने उन्हीको सौंपा, वे ही तुम्हारा भार लें। तुम्हारा पथ, तुम्हारी साधना निरापद हो—अपनी कहकर अब मैं तुम्हारा असम्मान नही करूँगा। "

हाथ छोड़ दिया, गाड़ी दूरसे दूर होने लगी, गवाक्षपथसे देखा, उसके झुके हुए मुँहपर स्टेशनकी प्रकाश-माला कई बार आकर पड़ी और फिर अन्धकारमे मिल गई। सिर्फ यही मालूम हुआ कि हाथ उठाकर मानों वह मुझे शेष नमस्कार कर रही है।

समाप्त